

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वती

ध्यान-विज्ञान

ध्यान-विज्ञान

•

प्रवचन :

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

•

संकलन :

सौ. सपना चिराग शाह

प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सत्साहित्य प्रकाशन (पब्लिकेशन) ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालावार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055
मो. : 9619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. : 9837219460

●

प्रथम संस्करण : 500
आराधन दिवस
19 नवम्बर 2021

●

मूल्य : ₹ 150/-

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम
वाराणसी - 221001
मो. : 9415624020, 9004039136

प्रकाशकीय

सनातन सिद्धान्तमें ध्यानका अत्यधिक महत्त्व है। कोई भी कार्य ध्यानपूर्वक न किया जाय तो उसका परिणाम अपेक्षित नहीं आता। प्रमाद (असावधानी) से किये गये कार्यके सामने सामान्यतः सुना ही जाता है-'तुम्हारा ध्यान किधर है? भूमिका तो ध्यानपूर्वक पढ़ो!'

ध्यान शब्दका अर्थ है-चिन्तनकी धारा! चिन्तन किसका? क्यों? कैसे? किसके ध्यान-चिन्तनसे हमको सुख मिलता है और किससे दुःख? क्या कोई ऐसी भी ध्यान-विधि है जिससे हमें अमृतत्व प्राप्त हो?

परमपूज्य महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी द्वारा मुम्बईके तेजपाल हॉलमें 'ध्यान का विज्ञान' विषय पर प्रवचन हुए। परमपूज्य महाराजश्रीने वेद-उपनिषदों, पुराण-इतिहासों, सूत्र-दर्शनों-संहिताओं तथा विभिन्न सम्प्रदायोंमें वर्णित-प्रचलित ध्यान-विधाओंका सारगर्भित व रोचक दिग्दर्शन कराया।

आप देखेंगे कि योगमें, कर्मकाण्डमें और ज्ञानमें मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र, सोपाधिक-निरुपाधिकादि ध्यानके अनेक रूप हैं-सभी पर महाराजश्रीने इस ग्रन्थमें दृष्टिपात किया है।

शोधार्थियों-साधकों के लिए यह संकलन संग्रहणीय बन पड़ा है, आप अवश्य लाभ लें।

स्पूलसे कैसेट्स, कैसेट्ससे सीडी, सीडीसे सॉफ्टकॉपी तककी दुरूह यात्रा इन प्रवचनोंने की है। इन्हें संरक्षित-सुरक्षित रखनेवालों पर महाराजश्रीकी कृपा बनी रहे। महाराजश्रीकी कृपाका एक स्वरूप ही दीखता है बड़ौदा निवासी श्रीसुरेन्द्र भाई ज्योत्सना बहनकी पुत्रवधू सपना चिराग शाहके संकलन-लेखनमें। 'आनन्द कथामृत', 'श्रीआनन्द-वृन्दावनचम्पू'के पश्चात् 'ध्यान-विज्ञान' रूपी तृतीय पुष्प महाराजश्रीके चरणकमलोंमें... **त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये..**की भावनासे अर्पित किया जा रहा है।

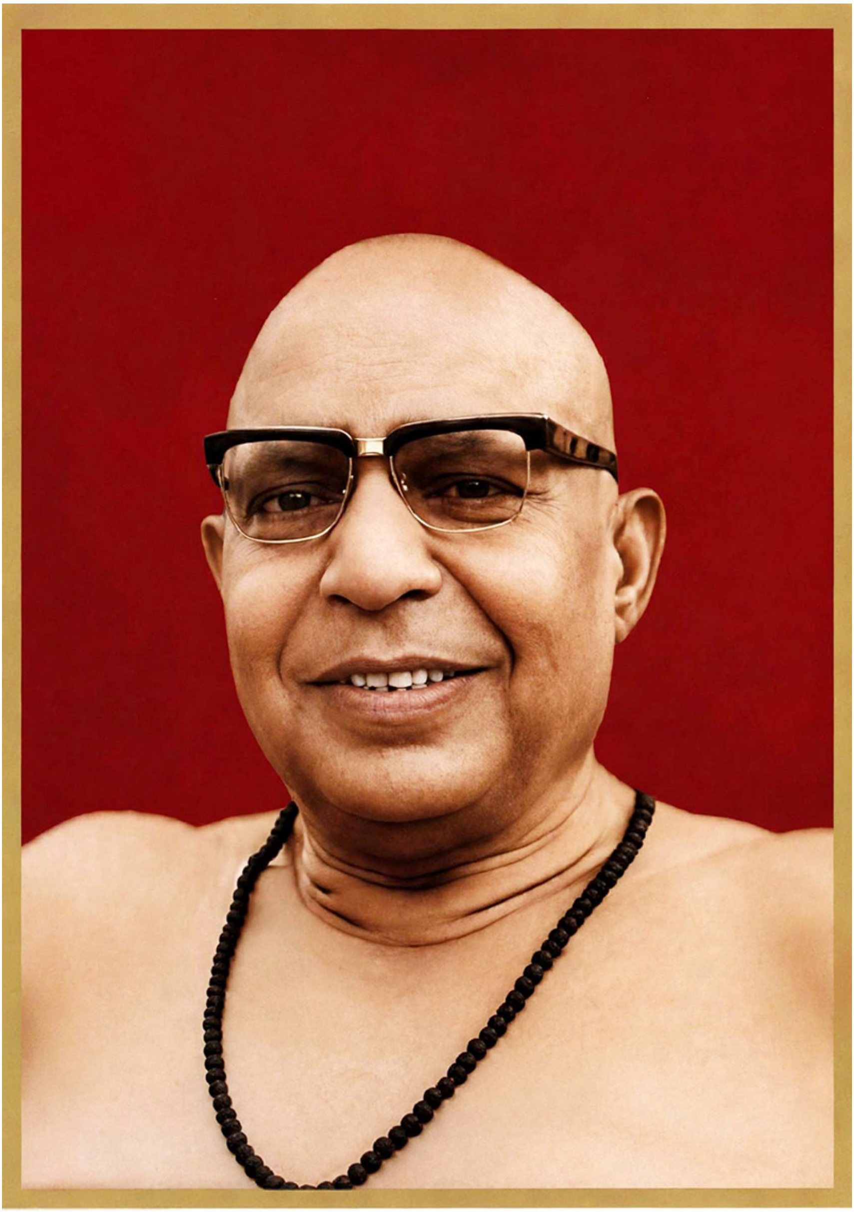
संकलन-लेखनकी श्रमसाध्य सेवाके संग-संग शाह परिवारने इस ग्रन्थके प्रकाशनमें आर्थिक योगदान भी प्रदान किया है-एतदर्थ शुभेच्छा है कि महाराजश्रीके चरणारविन्दोंमें इनकी मति, रति, गति बनी रहे।

-ट्रस्टी

सत्साहित्य प्रकाशन (पब्लिकेशन) ट्रस्ट

मुम्बई / वृन्दावन

अनुक्रमणिका



स्वामीश्री अखण्डानन्दजी सरस्वती

ध्यान-विज्ञान

रसमयी-भूमिका (पूर्वपीठिका)

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

वृन्दावनमें एक महात्मा थे। वह महात्मा राम-कृष्णके चरित्रका विभाग बतानेके लिए एक कथा सुनाते थे। राम श्रुति-सेतु पालक हैं-'मर्यादा पुरुषोत्तम' और श्रीकृष्ण 'लीला-पुरुषोत्तम' हैं। वैसे तो राम भी लीला पुरुषोत्तम हैं अपने स्थान पर और श्रीकृष्ण भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं अपने स्थान पर; क्योंकि उनके नित्यकर्मका जो वर्णन आता है कि हररोज ब्रह्म मूहूर्तमें स्नान करना, और सन्ध्या-वन्दन करना, अग्निहोत्र करना-यह तो मर्यादाका ही पालन है। श्रीकृष्णके साथ रसिया गानेवालोंने अपना-अपना तरह-तरहका आख्यान, मनोभाव जोड़ दिया है, भगवान् तो भगवान् ही हैं।

अब एक वेदान्तकी बात सुनाते हैं। और यह बात कच्चे वेदान्तियोंको मालूम नहीं है, पक्के वेदान्तियोंको मालूम है। जो लोग 'विचारचन्द्रोदय' आदि छोटे-मोटे ग्रन्थ पढ़कर और व्याख्यान-कहानी सुनकर वेदान्ती बन जाते हैं उनकी समझमें यह बात नहीं आती है।

घड़ा टूट जाता है तब मिट्टी बन जाता है कि घड़ा, घड़ा रहते हुएं भी मिट्टी होता है ? आप देखें, ख्याल करें। परब्रह्म परमात्मा निखिल सृष्टिका अभिन्न-निमित्तोपादानकारण है। इसलिये, प्रपञ्च ज्यों-का-त्यों बना रहता है और तत्त्वज्ञके लिये वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। बच्चा घड़ेको पहचानता है और जानकार माटीको

पहचानता है। घड़ा फोड़नेके बाद वह माटी होता हो या जेवर तोड़नेके बाद वह सोना होता हो-ऐसा नहीं है।

एकबार एक आश्रममें दो पार्टी बन गयी। आपसमें शास्त्रार्थ होने लगा। मेरे पास आये कि महाराज घड़ा फूटेगा तब माटी होगा कि घड़ा-घड़ा रहते भी माटी है। यह संसार नष्ट हो जाने पर, मर जाने पर ब्रह्म होता है या महाप्रलयमें ब्रह्म होता है यह अज्ञानीकी, कच्चे वेदान्तीकी बात है। पक्के वेदान्तमें यह ज्यों-का-त्यों, चाहे जितनी आकृति दीखे, और जितने नाम रहे-तत्त्वज्ञकी दृष्टिमें यह सब ब्रह्म स्वरूप ही है। तो, अब यह बात क्यों कह रहा हूँ ? असलमें आकृतियाँ भी नित्य होती हैं। सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, जल, अग्नि, वायुकी आकृतियाँ नित्य होती हैं। वेदान्ती लोग इनके लिये 'प्रवाही नित्य' शब्दका प्रयोग करते हैं। 'कूटस्थ नित्य' शब्दका प्रयोग नहीं करते हैं। वेदान्त दो तरहका नित्य मानता है-एक 'कूटस्थ नित्य' और एक 'प्रवाह नित्य'। ये आकृतियाँ प्रवाह नित्य होती हैं, जैसे मनुष्यसे मनुष्य पैदा होता जाता है। वही दो आँख, वही दो कान, वही नाक तो इसको 'प्रवाह नित्य' कहते हैं। यह जो गोलोक हैं, साकेत लोक हैं इनकी भी आकृतियाँ नित्य हैं। गोलोक भी नित्य होता है, साकेतलोक भी नित्य होता है, कैलाशलोक भी नित्य होता है, वैकुण्ठलोक भी नित्य होता है। उसमें अन्तर क्या है, कि अद्वैत-वेदान्ती जैसा 'कूटस्थ नित्य' मानते हैं वैसा उसको भक्त लोग नहीं मानते हैं। भक्त लोग भी उसको नव-नवायमान, नित्य-नूतन मानते हैं। नयी-नयी चमक, नयी-नयी दमक, नयी-नयी झलक, नयी-नयी फलक बनती रहती है। कहीं नित्य ग्रीष्म है तो कहीं नित्य शीत भी है-हेमन्त है, तो कहीं नित्य वसन्त है, तो कहीं नित्य शरद है, तो कहीं नित्य बाललीला है, तो कहीं नित्य रासलीला है, तो कहीं नित्य सख्यलीला है। इसको भक्तलोग नित्य ही मानते हैं।

एक दिनकी बात है कि साकेत लोकमें कौशल्याजीकी इच्छा हुई कि चलें गोलोकमें यशोदा मैयासे मिल आवें। और गोलोकमें यशोदा मैयाके मनमें इच्छा हुई कि साकेतमें चलें तो कौशल्या मैयासे मिल आवें। दोनोंने दासियोंके साथ अपने-अपने लालाको सँभाला और चल पड़ीं। रास्तेमें ही दोनोंकी भेंट हुई। वह तो दिव्य लोक! बड़ा सुन्दर दृश्य! वहाँका तट, वहाँकी हरियाली, वहाँका सरोवर बड़ा दिव्य! बड़ा दिव्य उद्यान था, जब दोनोंकी भेंट हो गयी तो वहीं बैठ गयीं। दोनोंमें परस्पर बातचीत होने लगी। कौशल्याजी अपने पुत्रकी बात सुनावें। यशोदा मैया अपने पुत्रकी बात सुनावें। और दोनों पुत्र हैं-साँवरे-साँवरे। श्रीकृष्ण भगवान् जरा ज्यादा साँवरे हैं और श्रीरामचन्द्र कुछ हल्के साँवरे हैं। दोनों देखनेमें एक सरीखे हैं, दोनों मिल गये आपसमें, तो खेलने लगे। और, माताएँ तो बस अपने पुत्रोंकी चर्चामें तन्मय हो गयीं, डूब गयीं, मशगूल हो गयीं। अब अँधेरा हो गया। वहाँ भी सूर्य उदय-अस्त होता है। बोलीं-अरे! दशरथजीके सन्ध्या-वन्दनका, भोजनका समय हो गया..अरे! उधर नन्दबाबाके सन्ध्या-वन्दनका, भोजनका समय हो गया। ये दोनों सन्ध्या-वन्दन करते थे।

अब जल्दी-जल्दी दोनोंने अपने बच्चोंको लिया तो कृष्णको राम समझकर कौशल्याने गोदमें उठा लिया और रामको कृष्ण समझकर यशोदा मैयाने गोदमें उठा लिया। दोनों ढीठ हैं महाराज! कौन परायी माँ है, कौन अपनी माँ है-दोनों पहचानते ही नहीं, भोले-भाले! लेकिन जब घर गये तो उधर दशरथजी सन्ध्या-वन्दन करके भोजन करनेके लिये बैठे! लीपा-पोता हुआ पवित्र स्थान! आप जानते हैं कि गायके गोबरसे जो स्थान लीप दिया जाता है, उसपर यह आणविक शक्ति प्रभाव नहीं करती है। यह आजकलका जो अणु बम है उसके विकिरणका दुष्प्रभाव गायके

गोबरसे लीपे हुए स्थान पर नहीं पड़ता है। और, गायका दूध पीनेवाले मनुष्यों पर भी इसका प्रभाव कम पड़ता है, तो वहाँ तो गायके गोबरसे लीपा हुआ लकड़ीका पाटा और जल रखा हुआ। उधर नन्दबाबा भी भगवान्‌को भोग लगाकर भोजन करनेके लिये तैयार। इधर दशरथजीने बुलाया, आओ! बेटा! राम, तुम भी बैठ जाओ। अब अन्धेरा, महाराज, तो उन्होंने न हाथ-धोया, न पाँव धोया कुछ नहीं, ज्यों-के-त्यों...उनको तो कोई संस्कार ही नहीं....। आजकल तो हम देखते हैं, बड़े लोगोंके घरमें जूतेका ऐसा प्रवेश हो गया है कि रसोई घरमें भी जूता जाता है, खानेके समय भी रहता है! बल्कि यहाँ जसलोक अस्पतालमें मथुरादासजी एकबार ले गये थे, तो हमको बताया कि डाक्टर भी इस कमरेमें अपना जूता पहनकर नहीं जा सकता। उनको भी अपना जूता उतारना पड़ता है। क्योंकि सड़कपर चलते समय कौन जाने क्या-क्या उसमें लगा होगा। वह रोगीके शरीरमें चला जाय। लेकिन यहाँ तो खाने-पीनेमें भी जूता जाने लगा!

अब श्रीकृष्ण भगवान्‌ने न हाथ धोया, न पाँव धोया ऐसे ही बिना नहाये-धोये, बिना कपड़ा बदले जाकर दशरथजीकी गोदमें बैठ गये! और उनकी थालीमें-से उठाकर खाने लगे और उनके मुँहमें भी डालने लगे, अपने मुँहमें डालने लगे! तो, दशरथजीने कहा कि एक ही दिनमें रामका स्वभाव कैसे बदल गया ? और उधर श्रीरामचन्द्र भगवान् गये जब तब नन्दबाबा भोजन करनेके लिए बैठे थे और बुलाया कि आओ...भोजन करो...तो, उन्होंने पहले हाथ-पाँव धोया और फिर खड़े होकर हाथ जोड़कर देखने लगे कि एक थालीमें-से कैसे खावें ? तो, बोले कि हमारे लिये तो अलग पाटा लगवाओ, तो अलग थालीमें ले लेंगे, अलग भोजन करेंगे...। तो, नन्दबाबाने कहा कि देखो, रामकी संगतिका कैसा असर पड़ा कि

एक दिनमें ही हमारा बेटा इतना धर्मात्मा हो गया ? फिर जब भोजन आया तो रामचन्द्र भगवान्‌ने भोग लगाया भगवान्‌को, हाथ जोड़ा प्रेमसे भगवान्‌को और बादमें खाया-पीया। अब इधर नन्द-नन्दन जो हैं, वह दशरथजीका मुँह खींचने लगे, उनके नाकमें उँगली नाखने लगे! खाते-खाते इधर-उधर दौड़ने लगे, नाचने लगे...तो दशरथजीने कहा कि यह कैसे हो गया ? जरा गौरसे तो देखो! यहाँ कौशल्या मैयाने देखा, वहाँ यशोदा मैयाने देखा तो पता चला कि यह तो बदल गये हैं।

अब आप इस कथामें यह मत देखो कि यह कथा किस शास्त्रमें, या किस पुराणमें लिखी हुई है ? यह जो कथा होती है, वह कोई-न-कोई अभिप्राय समझानेके लिए होती है। तो, कथा शब्दका अर्थ 'कथनं कथा'-कहानी होता है। परन्तु वेदमें कथा शब्द 'कथम्'से बनता है। जैसे 'तथा यथा' 'सर्वथा' शब्द बनते हैं ऐसे यह 'थल्' प्रत्यय जो है यह 'कथम्'के अर्थमें वेदमें होता है। और, ऋग्वेदमें तो बीसों बार इसका प्रयोग है। तो, कथा माने संस्कृतमें है-'क्यों' ऐसा क्यों हुआ ? यह जो अभी रामके स्वभावका, कृष्णके स्वभावका वर्णन किया तो यह आप ढूँढ़ने न जायँ कि वह कौन-सी तारीख थी, जिसमें दोनोंकी अदला-बदली हो गयी थी, और कौन-सा दिन था, और कौन-सा स्थान था ? यह सब तो थीसिस (Thesis) लिखनेवालों पर छोड़ दो, वह कुछ-न-कुछ उल्टा-पुल्टा निकाल लेंगे। जो चीज अबतक न कही गयी हो वह जो कह दे उसकी थीसिस सबसे बढ़िया! न उनको इतिहासकी, पुराणकी या वेद-शास्त्रकी पद्धति मालूम, न उनको तात्पर्य-वृत्ति मालूम, न उनको लक्षणा मालूम, न उनको गौणी मालूम, शास्त्रमें किस ढंगसे क्या बात बतायी है, यह तो उनको मालूम नहीं। आजकलके ढंगसे पुराने जमानेकी पुस्तक

निकालकर उसमें-से कुछ-न-कुछ अर्थ निकाल लेते हैं। पुराने जमानेकी पुस्तक जब पुराने जमानेके ढंगसे पढ़ी जायेगी तब समझमें आवेगी। आजके जमानेके अनुसार पढ़नेसे तो समझमें आवेगी नहीं। तो, यह जो कथा है वह राम और कृष्णके स्वभावमें जो भेद है, एक अहीरके बालकमें और एक धर्मात्मा राजाके बालककी रहनीमें क्या अन्तर होता है, और लीला पुरुषोत्तममें और मर्यादा पुरुषोत्तमके स्वभावमें, चरित्रमें और रहनीमें क्या अन्तर होता है ? यह बतानेके लिये कथा है। इससे यह समझना चाहिए कि कृष्ण कितने नटखट हैं और भगवान् रामचन्द्र कितने मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। बाल्यावस्थासे ही यह प्रकट हो जाता है। अब इसमें कहो कि श्रेष्ठ कौन है ? तो यह झगड़ा बिलकुल खड़ा नहीं करना चाहिए। क्योंकि प्रेमकी लीलामें नटखटपना ज्यादा चलता है। प्रेममें कुछ अशुद्ध होता ही नहीं। प्रेममें सब शुद्ध ही होता है।

एक 'प्रेमपत्तनम्' नामकी पुस्तक है संस्कृतमें। तो वहाँ प्रेमनगरके संविधान, माने क्या कानून होते हैं प्रेमनगरमें, तो वह लोकसे तो बिलकुल विलक्षण ही होते हैं। वहाँ अपने प्रियतमको छकानेके लिये, हँसानेके लिये, उनको थोड़ा परेशान करनेके लिये झूठ भी चलता है। वहाँ झूठ बोलना, जूठा खाना भी चलता है। वहाँ धर्म-अधर्मका विचार भी शिथिल हो जाता है। तो, प्रेमनगरके कानून दूसरे होते हैं और धर्मनगरके कानून दूसरे होते हैं। कानूनका फर्क बतानेके लिये यह लीला है।

अब आपको एक लीला सुनाते हैं। जब सेतु (पुल) बन रहा था समुद्र पर, यह पुल बनाना रामका ही काम है। जिससे चेतन जीव जो लंकामें फँसा हुआ है वह भगवान्‌के पास आ जाय, उसके लिये वह जीव उपाय नहीं करता है, स्वयं भगवान् ही

उपाय करते हैं। अनुग्रहधर्मकी, शरणागतिधर्मकी, प्रपत्तिधर्मकी यही विशेषता है कि स्वयं भगवान् ही उपाय करते हैं। उपाय भी वही हैं और उपेय भी वही हैं। अब भगवान् रामचन्द्र इसके लिए पुल बना रहे थे कि लंकारूपी प्रवृत्तिमें घिरे हुए, छिपे हुए बिचारे जो चेतन हैं, जीव हैं उनसे मिलनेके लिये, वे आकर हमसे मिलें कि न मिलें हम जाकर उनसे मिलें–इसके लिए पुल बनानेका काम स्वयं भगवान् ही करते हैं। उन्हींके ऊपर यह सारा जिम्मा है।

पुल बन रहा था। हिमालयका एक शिखर था गोवर्धन, हनुमान्‌जी उसको वहाँसे लेकर सेतुमें लगानेके लिये ले जा रहे थे। इतनेंमें घोषणा हो गयी कि सेतु तैयार हो गया–अब पर्वत लानेकी जरूरत नहीं है। ऐसे तो व्रजमें नित्य गोवर्धन हैं। और इसके साथ यह कथा भी जुड़ी हुई है। व्रजमें यमुना नित्य हैं, गिरिराज नित्य हैं, वृन्दावन नित्य हैं। यह तो सब नित्य लीला है। वहाँ अनित्यका तो कोई काम नहीं है। हनुमान्‌जी गोवर्धनजी ला रहे थे और घोषणा आ गयी कि अब पर्वत लानेकी आवश्यकता नहीं है। तो, हनुमान्‌जी गिरिराजको रखने लग गये वहीं। गिरिराज–बोले कि हमको रामके कामके लिए तुम ले जा रहे थे और यहाँ बीच रास्तेमें हमको छोड़ देना यह कौन–सा न्याय है महाराज? गुरुदेव जब स्वयं अपने हाथसे उठावें और भगवान्‌की सेवामें न लगाकर बीचमें ही छोड़ दें, तो यह कौन–सा न्याय है ? आप तो हमारे साथ बड़ा भारी अन्याय कर रहे हो। हम तो यहाँ नहीं उतरेंगे। अब हनुमान्‌जी गिरिराजको लेकर खड़े हो गये और संदेश भेजा भगवान् रामके पास कि गिरिराजके साथ क्या बर्ताव किया जाय ? श्रीरामचन्द्र भगवान्‌ने कहा अभी तो तुम गिरिराजको (गोवर्धनको) वहीं स्थापित कर दो व्रजमें माने अभी तो तुम उठाये हुए हो और मेरे पास ला रहे हो, एकदिन ऐसा आवेगा कि

मैं ही स्वयं आऊँगा और अपने हाथ पर उसे उठाऊँगा। मैं उठाकर उद्धार करूँगा गोवर्धनका, और अपने कैङ्कर्यमें स्वयं लूँगा, उनके झरनेमें स्नान करूँगा। उनके फूलसे शृंगार करूँगा। उनके पेड़का फल खाऊँगा। उनकी गुफामें छिपूँगा। और, जिसको तुमने स्वीकार कर लिया उसको तो हम स्वीकार करेंगे ही करेंगे। एकबार गुरुने जिसको स्वीकार कर लिया, भगवान् उनको स्वीकार करनेके लिए बाध्य होते हैं। अब इसमें देखो, क्या बात निकली ? अब यह कथा कब हुई ? इसका इतिहास ढूँढनेकी आवश्यकता नहीं है। इसमें सबसे बढ़िया बात यह कही गयी है कि राम और कृष्ण दोनों दो नहीं हैं बिलकुल एक हैं। इसमें यह बात भी कही गयी है कि एकबार गुरुदेव जिसको स्वीकार कर लेते हैं, भगवान्‌को उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। असलमें इसीका नाम पुराण है।

इतिहासमें और पुराणमें क्या अन्तर होता है ? इस बातको बहुत कम लोग जानते हैं। इसीलिए खुचर निकालते हैं पुराणोंकी कथाओंमें। हम श्रीमद्भागवत पढ़ते थे काशीमें पण्डित श्रीभूपनारायणजी मिश्रसे, तो एकदिन स्वामी योगानन्दजी महाराजके पास गये। योगानन्दजीने कहा कि जिस पण्डितसे तुम पढ़ते हो उसको जाकर पूछना कि इतिहास और पुराणमें क्या अन्तर होता है ? मैंने जाकर पूछा कि हमारे स्वामी योगानन्दजी हैं। स्वामी योगानन्दजीसे हमने गृहस्थाश्रममें सत्रह-अठारह वर्षकी आयुमें श्रीकृष्ण-मन्त्रकी दीक्षा ली थी। पहले, उन्होंने चौबीस लाख गायत्री जपका अनुष्ठान करवा लिया, तब उन्होंने श्रीकृष्ण-मन्त्रकी वेधवती दीक्षा दी थी। वेधवती दीक्षा, जिसमें सिरपर हाथ रखकर 108 बार उन्होंने स्वयं जप किया और भगवान् की पूजा की। उन्हींको सबकुछ करना पड़ा, हमको तो कुछ करना नहीं पड़ा। अब मैंने पूछा पण्डितजीसे कि हमारे स्वामीजीने यह प्रश्न

किया है। पण्डितजी तो बड़े भारी निपुण थे। उनको तो टीका-टिप्पणी सहित सारा भागवत कण्ठस्थ था। बड़े ही विलक्षण थे। चौरानबे (94) वर्षकी उम्रमें उनका शरीर पूरा हुआ। अब उन्होंने बताया कि इतिहास बाह्य घटनाओंकी प्रधानतासे होता है। बाहर क्या हो रहा है यह उसमें लिखा रहता है और पुराण आन्तर आशय प्रधान होते हैं। पुराणकी कथाके भीतर कुछ आशय होता है। आन्तरिक आशयको प्रकट करनेके लिए पुराण लिखे जाते हैं। 'इतिहास' माने 'इति ह आस' यह घटना ऐसे घटित हुई थी। और, पुराण माने 'पुराणि उज्जीवयति'-जो हमारे अन्तःकरणको जगा देता है। अन्तःकरणमें एक आशयकी स्थापना करता है, उसका नाम पुराण होता है। यह जो रामकथा, कृष्णकथा है, उसका ऐतिहासिक पद्धतिसे अनुसन्धान कीजिये। और भौगोलिक दृष्टिसे उन घटनाओंका स्थान कि कहाँ चीर- हरण किया था, कहाँ कालियदमन किया था, और कहाँ रासलीला की थी। आप भौगोलिक रूपसे इसका अनुसन्धान कीजिये और माटी ले-लेकर परीक्षा कीजिये कि यह पाँच हजार वर्ष पहलेका है कि नहीं, कि पाँच करोड़ वर्ष पहलेका है कि नहीं है? यह अनुसन्धान आप भले करते रहो; लेकिन यह जो कथा हमारे अन्तःकरणको जगानेवाली है, इतिहास छूट जायेगा, इतिहास भूल जायेगा, इतिहास बदल जायेगा, इतिहासमें फेरफार हो जायेगा। अभी आप इतिहासकी बात करते हैं, किसीसे गाँधीजीका इतिहास लिखवाओ न! विनोबाभावेसे एक इतिहास लिखवा दो। अब चर्चिल मर गया; लेकिन उससे भी एक लिखवा देते। अपने करपात्रीजी महाराजसे गाँधीजीका एक चरित्र लिखवा दो। इन्होंने गाँधीजीको देखा था। लेकिन विनोबाजी दूसरा लिखेंगे, धर्माधिकारी दूसरा लिखेंगे, घनश्यामदास बिड़ला दूसरा लिखेंगे। तो इतिहासमें प्रत्येक व्यक्ति

अपनी दृष्टि जोड़कर अपनी ओरसे कल्पना करके, यह अच्छा है कि बुरा है, वह लिखता है। पुराण जो होते हैं ये व्यक्तिगत सत्य नहीं होते हैं। ये शाश्वत सत्य होते हैं। यह अध्यात्मसे, अधिदैवसे, शाश्वत सत्यसे मिला करके तब लिखे जाते हैं।

अब देखो, आपको एक छोटी-सी कथा सुनाते हैं। हमारे वृन्दावनमें एक महात्मा थे। उनका नाम सीताराम बाबा था। तबला बजाते थे। और अपना चिमटा बजाकर नाचते थे, कीर्तन करते थे। हमारे सामनेकी बात है।

रतनारे नैना बाँके, ये मुनिसंग बालक काके।

खूब गाते थे। बड़े रामभक्त थे और अच्छे साधु थे। एकदिन उन्होंने कथा सुनायी। वे बोले कि जब मैं पहले-पहल वृन्दावनमें आया, तो हमको गाना-बजाना तो आता ही था, तबला तो हम बजाते ही थे। वृन्दावनमें रासमण्डलीमें जब मिल गया तो समाजियोंके साथ बैठकर तबला बजाने लगा और राधा-कृष्णकी प्रेममयी लीला देखते-देखते मन हमारा बिलकुल इधर खिंच गया। धनुषबाण वालेसे मन हट गया और बाँसुरीवाले पर मन खिंच गया। 'गायन्तं हि स्त्रियः कामयन्ते'-गानेवालेकी ओर स्त्री-मनोवृत्ति, ललित मनोवृत्ति जो है वह ज्यादा आकृष्ट होती है। यह सूक्ति वल्लभाचार्यजीने उद्धृत की है। अब उनका भी मन स्त्रीका मन! वह शरीर देखनेसे अलग होता है। अब जब आकृष्ट हो गया तो लग गये दो-तीन वर्ष तक बस रासमें....रासमें....रासमें लगे रहे। सीताराम बाबाने बताया कि एक रात हमको आया सपना। सपना आया तो हमको एक बन्दर आकर कहने लगा कि चलो भगवान् रामचन्द्र तुमको याद कर रहे हैं। आप दरबारमें चलो। अब मैं दरबारमें गया तो भगवान् रामचन्द्रने पूछा कि क्यों रे...तू तो मेरा भक्त था, मेरा दास था, यह चरवाहेके चक्करमें कैसे

आगया ? मैं तो डरके मारे थर-थर काँपने लगा; परन्तु हिम्मत बाँधकर बोला-कि महाराज किसीका सेवक हो, किसीकी पत्नी हो, सहेली हो और उसको कोई अहीर, कोई गुण्डा अपहरण करके ले जाय तो मालिकका क्या कर्त्तव्य होता है ? मालिकका भी कर्त्तव्य होता है कि वह उसको दूसरेके हाथसे छुड़ा ले। महाराज! आपने छुड़ाया क्यों नहीं? हम तो यहाँ व्रजमें विचरण करनेके लिए आये थे तो आपने हमें छुड़ाया क्यों नहीं ? अब तो महाराज, भगवान् श्रीरामचन्द्रने कहा कि बुलाओ कृष्णको। अब कृष्ण काली कमली कन्धे पर रखकर हाथमें लठिया लिये जैसे चरवाहेका रूप होता है वैसे आये। जुहार किया रामचन्द्रको... अन्नदाता घणी खम्मा! भगवान् रामचन्द्रने कहा कि हम तुमसे खुश होकर चौरासी कोसके व्रजकी जागीर देते हैं। रामचन्द्र तो चक्रवर्ती राजा हैं, तो उन्होंने चौरासी कोसकी व्रजकी जागीर देकर कहा कि वहाँ गाय चराओ, दूध पीओ, दण्ड बैठक करो, खुश रहो, मस्त रहो, हँसो-खेलो; परन्तु हमारे आदमीका तुम अपहरण कर लेते हो, यह तो बहुत बुरा है। सीतारामबाबा बताते थे कि भगवान् श्रीकृष्णने हमारा गला पकड़ा और ले जाकर रामचन्द्रके चरणोंमें डाला। और वह फिर रामभक्त हो गये। वह बढ़िया-बढ़िया वाल्मीकि रामायणकी कथा सुनाते थे। हमको तो उन्होंने अपना सपना सुनाया था।

जैसे हिन्दीमें सीतापति एक पद होता है, ऐसे संस्कृत भाषामें 'सीतायाःपतिः' एक पद है। शब्दरत्नके मूलमें ही यह बात कही गयी है, 'सीतायाःपतये' एक शब्द है, समस्त पद। इसमें षष्ठीका लोप नहीं हुआ, नहीं तो पाणिनीय व्याकरण लग जाता तो- 'सीतायाः पत्ये नमः' होता। तो, 'सीतायाः पतये नमः'का अर्थ है विवाहित होनेके पहले ही राम, सीताके पति हैं। ऐसे तो विवाहके

बाद पति होता है, लेकिन यह विवाह होनेके पूर्व भी सीताके ही पति हैं। उनके पतित्वमें कभी अन्तर नहीं पड़ता है।

अब थोड़ी बात वेदान्तकी सुनावें। यह जो हमारे वृन्दावनी लोग हैं वह अपने प्राइवेट भगवान्‌को, माने जो नित्य निकुञ्ज बिहारी हैं, वह उनके प्राइवेट ही हैं। वृन्दावनी लोग उनको तत्त्वरूप नहीं मानते। वह तो इनको व्यक्तिरूप ही मानते हैं। यहाँ नित्य निकुञ्जके साथ एक 'निभृत' नित्य निकुञ्ज ऐसे लगा हुआ है। श्रीराधारानीके साथ विहार करते हैं। वहाँ किसी सखीका भी प्रवेश नहीं है। मान नहीं, भ्रम नहीं, विरह नहीं...बल्कि महावाणीमें तो ऐसे लिखा है कि ब्रह्मके परे शून्य, शून्यसे परे महाशून्य, महाशून्यसे परे वृन्दावन धाम। ब्रह्म तत्त्व है। शून्य तत्त्व है। जैसे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु यह सब तत्त्व होते हैं न, वैसे ब्रह्म भी जगत्‌का एक मूलभूत तत्त्व है। और यह जो निभृत नित्य निकुञ्ज विहारी भगवान् हैं वह तत्त्वरूप नहीं हैं वह तो नित्य हैं, ज्यों-के-त्यों। वहाँ की पीकदानी भी नित्य है, वह लता निकुञ्ज भी नित्य है, भूमि भी नित्य है। तो, वृन्दावनी लोग अपने भगवान्‌को तत्त्वरूप कहनेमें संकोच करते हैं, बुरा मानते हैं। बल्कि, गौड़ेश्वर सम्प्रदायके किसी-किसी ग्रन्थमें तो इसीको अपराध माना है। हमारे भगवान्‌को यदि परमार्थरूप या तत्त्वरूप कहोगे तो अपराध लगेगा। प्रपञ्चको मिथ्या कहना भी अपराध है और भगवान्‌को परमार्थरूप कहना भी अपराध है। यह आपको जानकारीके लिए सुनाया कि ऐसे-ऐसे सम्प्रदाय हैं।

अब इनकी वेदसे, उपनिषद्‌से संगति बैठना बड़ा मुश्किल है। बड़ी खींच-तान करके फिर संगति लगायी जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजके जो राम है वह *'राम ब्रह्म परमारथ रूपा'*- यह ब्रह्म है। यहाँ वेद-वेदान्तकी संगति लगानेमें, ब्रह्मसूत्र और उपनिषद्‌की संगति लगानेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी।

राम ब्रह्म परमारथ-रूपा।
अबिगत अलख अनादि अनूपा।।

अयो.का. 93.4

यह तो साक्षात् ब्रह्म ही है। ब्रह्मके परे पारब्रह्म और पारब्रह्मके परे शून्य ही, यह जो अवैदिक सम्प्रदाय है-अब नाम लेकर क्या बतावें ? 'कथापि खलु पापानां अलं अश्रेयसे यथा'-पापियोंकी चर्चा भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उससे भी अमंगल होता है। कहते हैं-'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'-पिण्डमें ऊपरकी ओर चेतना ज्यादा होती है, आँखमें, कानमें, नाकमें। तो ऐसे ही ब्रह्माण्डमें ऊपरकी ओर चेतना ज्यादा होती है। और हम लोगोंका जो ईश्वर है वह आँखमें, कानमें, सिरमें, दिलमें, दिमागमें, हाथमें, पाँवमें, 'आकाशो सर्वगतश्चनित्यः सर्वत्र परिपूर्णत्वेन' यह हम लोगोंका ईश्वर है और अवैदिकोंका जो ईश्वर है वह जरा-जीववत होता है-'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'।

'राम ब्रह्म परमारथ रूपा'-ब्रह्म कहते ही निरतिशय बृहत्त्व आ जाता है। देशका आश्रय है, देशके आश्रित नहीं है। एक स्थानमें नहीं है, स्थान उसमें कल्पित है। एक कालमें नहीं है, वह कालाश्रित नहीं है, कालाश्रय है। इसी तरह वह वस्तु-आश्रित नहीं है, वस्त्वाश्रय है। और उसकी बृहत्तामें देश, काल, वस्तु अपनी सत्ता खो बैठते हैं। इसीसे गोस्वामीजीने कुछ छोड़ा नहीं।

'नेति नेति जेहि वेद निरूपा'-बृहदारण्यक उपनिषद्में छः जगह पर नेति-नेति आया है। यहाँ गोस्वामीजीने साथ-साथ मिला दिया कि *'नेति नेति जेहि वेद निरूपा'*-वेद जिसको नेति-नेतिके द्वारा इतर सर्वका वाचक है 'इति' शब्द। परमात्माके अतिरिक्त जितना कुछ है वह सबइति है। और नेति माने उसका निषेध है- *'नेति नेति जेहि वेद निरूपा'*। (बा. का. 144.3) ऐसे हैं यह परमेश्वर।

'ग्यान अखंड एक सीताबर'। (उ. का. 78.2) यह भगवान्‌से मिलता है। भागवतमें जो द्वैतरहित ज्ञान है-

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।

(श्रीमद्भा. 1.2.11)

'यत् अद्वयं ज्ञानम्। अद्वयं ज्ञातृज्ञेयरहितं शुद्धं ज्ञानम्।' जिसमें अल्पज्ञ-सर्वज्ञ रूप ज्ञाता नहीं होता और जिसमें अल्प-सर्वरूप ज्ञेय नहीं होता। 'अद्वयं ज्ञानम्, केवलं ज्ञानम्, शुद्धं ज्ञानम्, व्याक्तिः यत्र ज्ञातापि न भवति, ज्ञेयम् अपि न भवति। एतादृक् अद्वयं ज्ञानम्। ब्रह्मेति परमात्मेति, भगवान् इति शब्द्यते।' इसको परमात्मा बोलते हैं।

ग्यान अखण्ड एक सीताबर। (उ. का. 78.2)
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा।।

(बा. का. 116.3)

जगत्‌के बारेमें केवल 'है' बोल सकते हैं सत्-अस्ति और जीवके बारेमें अधिक-से-अधिक बोल सकते हो तो-अस्ति और चेतति 'चित्'। यह चित् शब्द दोनों तरहसे बन सकता है। 'चिनोति इति चित्'। 'चिनोति विषयसम्बन्धीनि ज्ञानानि-इति चित्'। यह घड़ा है, कपड़ा है, यह स्त्री है, पुरुष है-इस ज्ञानको इकट्ठा करके जो अपने भीतर रखे उसका नाम होता है चित्त। वह हृदयका वाचक होता है। हरति इति हृद्, विषयोंके ज्ञानका हरण करे। और यहाँ चित् अधिक-से-अधिक जीवके लिये अस्ति और चेतति बोल सकते हैं। परन्तु आनन्द शब्द जो है, ऐसा आनन्द जिसमें दुःखका लेश भी न हो। किसी कालमें, किसी देशमें, किसी वस्तुके रूपमें किसी आकारमें जहाँ दुःखका सम्बन्ध न हो उसको आनन्द बोलते हैं।

तो, राम क्या है ? अस्ति, भाति प्रियरूप, सच्चिदानन्दघन

है। अब 'दिनेश' कहनेका अर्थ क्या है ?-दिनेश माने सूर्य। प्रकाशस्वरूप है। परन्तु यह सूर्यके पीछे रात लगी रहती है। एक ओरसे सूर्य चलता है तो दूसरी ओरसे रात चलती है। यह सच्चिदानन्द जो जीव है-उस जीवके सच्चिदानन्दरूपमें रात लगी रहती है। कभी उसको अपना जीना मालूम पड़ता है, कभी उसको डर लगता है कि मैं मर जाऊँगा। कभी होशमें आता है, कभी बेहोश हो जाता है। कभी सुखी हो जाता है, कभी दुःखी हो जाता है। तो, मोहकी रात जो है वह जीवका पीछा करती है। यहाँ तक कि जो जीवन्मुक्त महात्मा-पुरुष होते हैं, उनमें भी तत्त्वज्ञानके पूर्व मोह निशा रहती है। अच्छा, तत्त्वज्ञानका प्राग्-अभाव उनमें रहता है, परन्तु परमात्मामें तत्त्वज्ञानका प्राग् अभाव नहीं होता। यह परमात्माका जीवनमुक्तसे वैलक्षण्य है। और, सिद्धान्तलेशमें ऐसे मतोंका भी उल्लेख है कि तत्त्वज्ञान होनेके बाद भी अविद्या लेश रहता है। परन्तु परब्रह्म परमात्मा राममें न तो तत्त्वज्ञानका प्रागभाव है और न तो तत्त्वज्ञानके अनन्तर अविद्यालेश है। इसलिए, जीवन्मुक्त पुरुषकी अपेक्षा भी उनमें विलक्षणता है। '*नहिं तहँ मोह-निसा लवलेसा*'-मोह निशाके लवमात्रका भी लेश, जैसे किसी पत्तेपर चम्पाका फूल रख दे, तो चम्पाका फूल हटा लेने पर भी उस पत्तेमें चम्पाके गन्धका लेश रहता है। वैसे अविद्या निवृत्त होने पर अविद्याका जो लेश, गन्ध है, वह भी परब्रह्म परमात्मामें नहीं है।

अब एक दूसरी बात देखो। '*नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा*'में गोस्वामीजीने कह दिया कि यह सारी दुनिया मोह है। '*मोह मूल परमारथु नाहीं।*' यह जो योगा करने जाते हैं लोग, वह योगा क्या है ? कि बोले वह 'मोह मूल' है-माने इसके मूलमें मोह है। संस्कृतमें तो योग शब्द है, लेकिन उसको 'योगा' ऐसा ही कुछ बोलते है न ?

'वियोग'में रोते हैं, हाय-हाय भगवान् बिछुड़ गये...छाती पीटते हैं, बड़े जोरसे चिल्लाते हैं, जैसे भगवान् बड़ी दूर हों। अपनी आवाज ही नहीं पहुँचती हो। एक आदमी टेलीफोन पर बातकर रहा था, जोर-जोरसे तो, उसकी पत्नीने पूछा कि क्या कर रहे हो ? तो बोला कि कलकत्ते बात कर रहा हूँ। अब पत्नीने कहा कि मुँह जबानी बातकर रहे हो या टेलीफोनसे कर रहे हो ? तो, यह जो ईश्वरके लिये बड़े जोरसे चिल्लाते हैं, कि हम जोरसे बोलेंगे तब हमारी आवाज उन तक पहुँचेगी। वह कहीं इतनी दूर नहीं है।

मुसलमानोंके मजहबका जहाँ वर्णन है भविष्यपुराणमें, उसमें लिङ्गच्छेदी, शिखाहीनः, उच्चालापी-वह खतना करवाता है, चोटी नहीं रखता है और उच्चालापी-जोरसे पुकारता है 'अल्लाह हू अकबर'। ऐसे इस्लामका वर्णन है। यह हमारे जो भगवान् हैं, उनसे मिलना नहीं है, मिले हुए हैं। उनका कभी वियोग नहीं होता। वह स्वरूप ही है। भोक्ता-भोग्यका भाव उनके साथ नहीं होता। अच्छा-बुरा उनके साथ नहीं होता। रामायणमें तो-

जनम मरनु जहँ लगि जगजालू।
संपति बिपति करमु अरु कालू।।
धरनि धामु धनु पुर परिवारू।
सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू।।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं।
मोह मूल परमारथु नाहीं।।

(अयो. का. 92-3,4)

धरम-करम, स्वर्ग-नरक सब उसमें है। यह सब क्या है कि *'मोह-मूल परमारथ नाहीं'*-यह सब मोह-मूलक है, परमार्थमें नहीं है। तो, 'राम सच्चिदानन्द दिनेसा। 'नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा'-जब उनमें मोहलेश ही नहीं है तो मोहका अंकुर, मोहका कार्य यह

जो प्रपञ्च है वह उसमें कैसे होगा ? भगवान् रामचन्द्र निष्प्रपञ्च ब्रह्म हैं।

अच्छा, अब थोड़ी-सी और बात सुनाते हैं। रामचन्द्र भगवान्‌को निशाना लगानेके लिए दुबारा नहीं देखना पड़ता है। 'द्विश्शरं नाभिसन्धत्ते'-धनुष पर बाण लिया और यह नहीं कि निशाना ठीक नहीं हुआ तो दुबारा निशाना ठीक करें। अगर एक करोड़ बार रावणके कन्धे पर फिरसे दस सिर उग आते हैं तो, एक करोड़ बार वह उसको एक ही बारमें काटते हैं। यह नहीं कि जरा देख लें कि निशाना ठीक सधा कि नहीं सधा।

द्विश्शरं नाभिसन्धत्ते द्विःस्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते।।

(वाल्मीकिरामायण)

अरे! द्वैत तो उनको पसन्द ही नहीं है। कोई आश्रित आया तो उसको दो बार नहीं बसाते। एक बार बसा दिया तो बसा दिया। एक संकल्प। नैयायिक लोग मानते हैं कि यह जो सृष्टि है वह ईश्वरका एक संकल्प है। वह बार-बार नहीं संकल्प करते कि यह बूढ़े हो जाय, यह बीमार हो जायँ, उनका रुपया चला जाय, इस ब्रह्माण्डका प्रलय हो जाय। ऐसे एक-एक आदमीके बारेमें ईश्वर संकल्प करता रहे तो वह महापागल होगा। आप देखो, कितना विक्षेप उनको होगा ? करोड़ों-अरबों आदमीके बारेमें अरबों बार अगर वह संकल्प करे तो हर समय अरबों-अरबों संकल्प उनके चित्तमें घूमते रहें। इसलिए नैयायिक लोग मानते हैं कि केवल एक संकल्पसे ही सृष्टि, स्थिति, प्रलय सब कुछ करता है। उनको दुबारा संकल्प करनेकी जरूरत नहीं पड़ती है। जिसको अपने आश्रयमें लिया उसको फिर दुबारा कुछ लेना कि देना, कि बसाना कुछ नहीं करना पड़ता है।

द्विः स्थापयति नाश्रितान् द्विर्ददाति न चार्थिभ्यः।

माँगनेवालोंको ऐसा नहीं छोड़ देता कि उनको दुबारा देना पड़े। एक ही बारमें इतना दे देता है, इतना दे देता है कि दुबारा देना ही न पड़े। ऐसा नहीं कि बीस रुपया निकालकर रख दिया और एक रुपया रोज निकालकर दे दिया तो बीस दिन तक रोज देते रहे। ऐसे नहीं।

एक बार मैं अहमदाबादमें रहा था। वहाँ एक तमाशा मैंने देखा कि जेबमें-से पाँच हजार रुपया निकालते थे। निकालकर पहले सौ-सौ रुपयेके नोट अलग किये, फिर दस-दस रुपयेके नोट निकालकर अलग किये, फिर पाँच-पाँच रुपये निकालकर अलग किया। फिर एक रुपयेके दो नोट, उसको भी जरा अँगूठेसे दबाते थे कि वह मालूम पड़े कि दो रुपया है....वह कहीं लेनेवाला एक न समझ ले कि एक रुपया ही है, इसलिए उसको जरा अँगूठेसे दबाते थे और दिखाते थे...।

'द्विर्ददाति न चार्थिभ्यः'-भगवान् रामचन्द्र जिसको एक बार देते हैं, देकर निहाल कर देते हैं कि दो बार देनेकी जरूरत ही न पड़े। 'द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते'-एक बार जो बात मुँहसे निकल गयी सो, निकल गयी। बात बदलती नहीं है। 'रामो द्विर्नाभिभाषते'-रामचन्द्रकी विशेषता यह है कि उनको दो पसन्द ही नहीं है। वह स्वयं एक है और उनका सब कुछ एक है, अद्वितीय है। किसीको उनकी शरणागति भी दो बार नहीं करनी पड़ती है-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

(वाल्मीकिरामायण)

यह नहीं कि पहले माटी खा ली फिर मना कर दिया यह तो मथुराका धर्म है! मैयाने पूछा कि, क्यों रे, माटी खायी ?

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः।

–भागवत (10.4.34)

तब बोले–'नाहं भक्षितवानम्ब' मैया! मैंने कहाँ माटी खायी? बदल गये! भगवान् रामचन्द्र 'द्विर्नाभिभाषते' एकबार बात मुँहसे निकली तो निकली, यह रामकी बात है। तो, 'सकृदेव प्रपन्नाय'–केवल एक बार, केवल एक बार शरणमें होना।

हमारे जो श्रीवैष्णव सम्प्रदाय हैं वह प्रपत्ति और शरणागतिमें भेद मानते हैं। प्रपत्तिमें कुछ उपाय भाव शेष रहता है और शरणागतिमें उपायभाव किञ्चित् भी शेष नहीं रहता है। दोनों शब्दका अर्थ यह होता है कि पाँवका जो ऊपरी हिस्सा है, पंजा जिसको कहते हैं उसको संस्कृत भाषामें 'प्रपद' बोलते हैं और निचला हिस्सा है उसको 'तल' बोलते हैं। 'किशोरीजी के अरुनारे दो तलवा'–तो तलवा जो है वह तल है। 'पादतल'। जब शरणागत साधक अपने दोनों हाथसे भगवान्के चरणारविन्दको ऊपरसे पकड़ लेता है, माने, खुद पकड़ता है तब वह प्रपन्न होता है। 'प्रपद'से 'प्रपत्ति' होती है। और, जब भगवान् रामचन्द्र अपने पाँवसे उनके हाथको खुद दबा लेते हैं कि अब नहीं छोड़ेंगे। तब वह शरणागति होती है। 'मर्कट प्रपत्ति'में, बन्दरियाका बच्चा अपनी माँ–को पकड़े रखता है, छोड़ता नहीं है। यह 'प्रपत्ति' है और बिल्ली अपने बच्चेको अपने मुँहसे उठाती है। उन दाँतोंसे जिससे वह चूहेको चबा जाती है, उन्हीं दाँतोंसे अपने नन्हें–से बच्चेको उठाती है और बिल्लीके दाँत बिलकुल बच्चेको लगते नहीं हैं। खूब सँभालकर रखती है। यह मार्जर शरणागति है। शरणागतिके दो भेद हैं–मर्कट शरणागति और मार्जर शरणागति। यह उन्हीं लोगोंने जो कहा है वैसा मैं बोल रहा हूँ। हमारी अपनी कोई बात नहीं है। शरणागतिके दोनों भेद आचार्योंने बताये हैं।

'सकृदेव प्रपन्नाय'का भी अर्थ करते हैं। इसमें प्रपन्नको शरणागत होना पड़ता है।

हमारी माँ एक आचार्यके पास गयी। वह बोले–अच्छा आ गयी तुम ? माँने तो पहले कभी उन आचार्यको देखा नहीं था, वह तो दर्शन करने गयी थी। महात्माने पूछा–आ गयी तुम ? हम तो देखो, वेदी बनाकर सब सामग्री लेकर तैयार बैठे हैं कि आज तुम्हें प्रपन्न करना है। माँ तो हमारी कुछ जानती नहीं थी। उन्होंने बताया कि रात्रिके समय मैं भगवान्‌का अनुसन्धान कर रहा था। शेषशय्या पर भगवान् शयन कर रहे थे, और उसी समय तुम अस्त-व्यस्त, दीन-हीन दशामें आकर खड़ी हो गयी। मैं पहचानता हूँ, वही हो तुम! नारायणने श्रीलक्ष्मीकी ओर मुस्कुराकर देखा और इशारा किया कि इस चेतनका उद्धार होना चाहिए। तब श्रीलक्ष्मीजीने श्रीरामानुजाचार्यकी ओर देखा, और श्रीरामानुजाचार्यने हमको आज्ञा दी कि यह चेतन आज तुम्हारे पास आवे तो इसका उद्धार करना। तो तुरन्त वेदी पर हवन करके उनको प्रपन्न कर दिया। मैं जबतक गिरिराजसे लौटकर आया तबतक तो उनके शंख-चक्र लग गया था। वह प्रपन्न हो गयीं। क्योंकि; उन्होंने आचार्यके द्वारा शरणागति ली।

शरणागति कैसे होती है ? यह वेदान्तदेशिकका मत बताया प्रपत्तिका। वह बताते हैं कि जीव जब अपनी ओरसे प्रयास करता है, तब भगवान्‌के शरणागत होता है। उसको थोड़ा यत्न करना पड़ता है। आचार्यकी उपसत्ति करनी पड़ती है। आचार्यके द्वारा स्वीकृति लेनी पड़ती है। भगवान्‌के शरणागत होना पड़ता है। यह आचार्य वेदान्तदेशिकका मत है।

लोकाचार्य महाराज कहते हैं कि नहीं, आचार्यकी जो शरणागति है, हमारे दस पीढ़ी पहले जो आचार्य हुए, उनके सामने

भगवान् प्रगट हुए और वरदान दे दिया कि तुम हमारे प्रपन्न हुए हो, शरणागत हुए हो तो तुम्हारी परम्परामें जो कोई आवेगा वह हमारा शरणागत होता जायेगा–यह लोकाचार्यका मत है। इसीको वर्गल और पिंगल सम्प्रदायके नामसे बोलते हैं। एक वेदान्तदेशिकके अनुयायी हैं और एक लोकाचार्यके अनुयायी हैं। उत्तरभारतमें अधिकांश लोकाचार्यके अनुयायी रहते हैं और दक्षिण भारतमें अधिकांश वेदान्तदेशिकके अनुयायी रहते हैं। वहाँ क्रियायोग भी पूरा होता है और उत्तर भारतमें क्रियायोग पूरा नहीं होता।

'सकृदेव प्रपन्नाय'–केवल एकबार, केवल एक बार भगवान्‌की शरणमें आजाओ। प्रपन्न हो जाओ। और उसका रूप क्या है ? उसमें होम आदिकी चर्चा नहीं है। एक ही बात है केवल, 'तवास्मीति च याचते' केवल यह याचना कि 'मैं तुम्हारा हूँ'। इसीसे वल्लभाचार्यजीने सम्बन्ध बनाया। उसमें 'श्रीकृष्ण तवास्मि'–बस, ब्रह्मसम्बन्धका इतना ही रूप है। हे कृष्ण–'मैं तुम्हारा हूँ'। 'तवास्मीति च याचते'–यह याचना, अहं–त्वम्–अहम् नहीं। सो, तैं ताहि तोहि नहिं भेदा–ऐसा नहीं। 'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई'–ऐसा नहीं। 'तवास्मीति च याचते–'मैं तुम्हारा हूँ'–ऐसी याचना करें।

भगवान् रामचन्द्र बोलते हैं कि 'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।' वह शरणमें आनेवाला प्राणी चाहे कोई भी होय। पशु हो, पक्षी हो, वृक्ष हो, लता हो, पापी–से–पापी हो, नीच–से–नीच हो, अधम–से–अधम हो–'सर्वभूतेभ्यः'। सम्पूर्ण प्राणियोंको मैं अभय दान करता हूँ। अर्थ एक और है–सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता, सारी सृष्टिमें। 'सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान करता हूँ, सबको यानि

नीच-से-नीच और हीन-से-हीनको अभयदान करता हूँ और सबसे निर्भय बना देता हूँ।' 'एतद् व्रतं मम'-जैसे एक वैष्णव एकादशी व्रतका नियम लेता है और फिर उसको तोड़ता नहीं है कि हमारा तो यह व्रत है, यह प्रतिज्ञा है। वैसे भगवान्ने यह प्रतिज्ञा ले रखी है कि एकबार शरणमें आ जाय तो उसको सबसे निर्भय कर देते हैं और सबको निर्भय कर देते हैं-जो भी शरणमें आते हैं-यह भगवान्का व्रत है।

अब आप दूसरा देखो। जबतक रावण मालिक था लंकामें, तबतक लंकामें विभीषण भी पूरे शरणागत नहीं थे। वह तो हनुमान्जीने जाकर उनको उत्साहित किया। बादमें-

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर।।

(सुन्दरकाण्ड 45.0)

विभीषण फिर शरणागत हुए। जो लंकामें रहता था, उनको रावणके शरणागत होकर रहना पड़ता था। तो लंका रावणके शरणागत थी, भगवान्के नहीं। लेकिन, जब रावण मर गया और शरणागत विभीषण लंकाके राजा हो गये तो लंकाके किसी राक्षसको, किसी राक्षसीको, किसी जीवको अलगसे भगवान्की शरणमें नहीं जाना पड़ा। यह भागवत निष्ठा है। 'भागवताभिमान' इसको बोलते हैं। शत्रुघ्नजी, भरतकी सेवा करते हैं, उनको अलगसे रामकी शरणमें जानेकी आवश्यकता नहीं हैं। अब जब विभीषण लंकाके राजा हुए तो लंकाकी जितनी प्रजा थी वहाँ तो-

गीध अधम खग आमिष भोगी।
गति दीन्ही जो जाचत जोगी।।

अरण्य. का. 33.1

गीध, अधम, खग, आमिष भोगीकी भी कोई परवा नहीं।

वहाँ तो धनुषबाण हाथमें लिये स्वयं भगवान्ने समूची लंका अपनी शरणमें ले ली, विभीषणकी शरणागतिसे। आचार्यकी शरणागतिसे अनुयायीकी शरणागति–यह लोकाचार्यका मत है। और स्वयं शरणागत होना चाहिए–यह वेदान्तदेशिकका मत है।

अब एक छोटी–सी बात आपको सुनाते हैं। जब भगवान् श्रीरामचन्द्र वनमें गये, श्रीसीताजी और लक्ष्मणके साथ, तब यमुना पारकर गये। अब यमुना पार कर गये तो यही ख्याल आया कि हमारे एक भक्त तुलसीदासजी महाराज यहीं राजापुरमें होनेवाले हैं। तो वह यमुना पार करते–करते उनके किनारे–किनारे राजापुरकी तरफ गये। क्योंकि जहाँ भगवान्का भक्त होनेवाला होता है आगे, उसपर भी भगवान् की कृपा होती है। अभी भक्त हुआ नहीं, भक्तके प्रागभाव भूमिपर भी भगवान्की कृपा होती है। अच्छा, राजापुर गये श्रीरामचन्द्र तो भगवान् श्रीकृष्ण नित्य–निवास करते हैं व्रज–भूमिमें। उन्होंने कहा कि देखो! महाराजाधिराज चक्रवर्ती सम्राट् जो हैं सम्पूर्ण विश्वके सम्राट् वह राजापुर यमुना–किनारे आ गये हैं। तो, चलो उनको व्रजमें ले आवें। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो सारी–की–सारी गौएँ ही हाँककर ले आये। सब ग्वालबाल भी आकर रामचन्द्र भगवान्से मिले। श्रीकृष्ण बोले–महाराज! अभी तो हम गुप्तरूपसे व्रजमें निवास करते हैं। आगे महाराज, हम प्रकट होनेवाले हैं। हमारी लीला व्रजभूमिमें प्रकट होगी, परन्तु इस व्रजभूमि पर लवणासुरका राज्य है। और, लवणासुरको आकर शत्रुघ्न मारेंगे। फिर लवणासुरकी गद्दी पर शत्रुघ्न बैठेंगे और फिर वहाँका राजकाज हमको देखना पड़ेगा, हमको सम्हालना पड़ेगा। तो, जबतक आप इसको पहले प्रसाद नहीं बना देंगे तबतक उसको हम कैसे स्वीकार करेंगे और शत्रुघ्न भी कैसे स्वीकार करेंगे ? तो राजापुरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सीता–राम, लक्ष्मणको ले गये

मथुरा। श्रीरामचन्द्रने कहा कि हम तो वन छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे। तब बताया कि यह वृन्दारण्य छप्पन वनोंका समूह है। मधुवन है, वृन्दावन है...यह सब महावन है। तब जाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रने मथुराको मथुरा बनाया, तुलसीदासजीने कहा–हे तुलसी, यह मथुरा राम है। 'म' पहले है 'रा' बादमें है जैसे, मथुरा–मथुरा बोलो तो राम–राम हो जायेगा। और जिसके मुँहमें 'राम–राम' नहीं उसके मुँहमें बिचला अक्षर 'थू' आ जाता है। तो, भगवान् रामचन्द्रने मधुवनको जाकर पहले पवित्र किया। बोले–हे श्रीकृष्ण! हमने तुमको यह चौरासी कोस दे दिया है। अब जब चाहो तुम प्रकट हुआ करो, जब चाहो गुप्त हुआ करो, जब चाहे गाय चराया करो, जब चाहो नाचा–गाया करो। अहीर लोग तो नाच–गानके बहुत प्रेमी हैं फिर वहाँसे लौटकर यमुनातट आये और फिर चित्रकूटको गये।

कोई–कोई भक्त भी बड़े विलक्षण होते हैं। राजा हरिश्चन्द्रने यह प्रणाली स्थापित की थी कि जब धर्मराज, विष्णु, इन्द्र सब उनके सामने प्रकट हुए, तो राजा हरिश्चन्द्रको कहा कि राजा, तुम दिव्यलोकमें चलो। हरिश्चन्द्रने कहा–कि मैंने जो धर्मपालन किया है वह कोई मेरी व्यक्तिगत सम्पत्तिसे नहीं किया। उसमें मेरी पत्नी, मेरे पुत्र, मेरी प्रजाका सहयोग है। तो, यह धर्म केवल मेरा नहीं था, इसलिये उस धर्मका फल मैं अकेला लेनेके लिए तैयार नहीं हूँ। मैं दिव्यलोकमें नहीं जाऊँगा। यह कथा पुराणोंमें है। अब, भगवान् विष्णुने कहा कि अच्छा, अकेले नहीं जाओगे तो कैसे जाओगे ? तो बोले कि हमारी सारी प्रजा, जिसके प्रेमसे, जिनकी उपस्थितिसे, जिनके सहयोगसे हमको यह धर्मपालनका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है यदि, वे सब दिव्यलोकमें चलें तो मैं दिव्यलोकमें चलनेको तैयार हूँ।

मैंने हरिश्चन्द्रकी जीवनी लिखी है और हरिश्चन्द्रकी ढेर सारी पुस्तकें पढ़ी भी हैं, पुस्तकालयसे मँगवा-मँगवा करके। अब इतनी सारी प्रजा अयोध्याकी, राजा हरिश्चन्द्रके साथ दिव्यलोक कैसे जाय? तो, इसके लिये विमान पर विमान, विमान पर विमान, विमान पर विमान ऐसे विमानोंकी श्रेणी (सीढ़ी) लगा दी गयी। और, सारी प्रजा हरिश्चन्द्रके साथ दिव्यलोकमें गयी।

भगवान् श्रीराम अपनी सारी प्रजाको दिव्यलोकमें ले क्या गये, अयोध्याजीको ही दिव्यलोक बनाकर हमेशाके लिये स्थापित कर दिया। भगवान्‌के धाम नित्य होते हैं। और धामीमें जितनी करुणा होती है, उसकी अपेक्षा धाममें कुछ अधिक करुणा म[illegible]ते हैं।

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।

(श्रीमद्भागवत 1.1.1)

भगवान् श्रीरामचन्द्रने हनुमान्‌जीसे कहा कि, हनुमान्! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। तुम न होते तो समुद्र पार करके लंकामें कौन जाता? जानकीका सन्देश कौन लाता ? जानकीजीसे भी तुमने ही मिलाया और लक्ष्मणजीके प्राण जा रहे थे उस समय लक्ष्मणजीको तुमने बचाया। बीच-बीचमें हमारे वाहन बने, हमारे सारथि बने। युद्धभूमिमें हमारी इतनी बड़ी सहायता की। भरतजीको भी तुम्हींने बचाया, हम तुम्हारे ऋणको कैसे उतारें ? फिर तो भगवान् रामचन्द्रने कहा कि मैं चाहता हूँ कि यह ऋण हमेशाके लिए हमारे ऊपर बना रहे। हमको ऋण उतारनेका कभी कोई मौका ही न आवे!

मय्येव जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणाम् आपत्स्वायाति पात्रताम्।।

वा. रा.

हे हनुमान्‌जी! जो तुमने मेरा उपकार किया है, यह तुम्हारा

उपकार मेरे अन्दर पच जाय। 'मय्येव जीर्णतां यातु'-मेरे शरीरमें ही, मेरे हृदयमें ही यह उपकार जीर्ण हो जाय, पच जाय क्योंकि उपकारके बदले प्रति उपकार करनेका समय तब आता है-'नरः प्रत्युपकाराणाम् आपत्स्वायाति पात्रताम्'-जब सामनेवालेके ऊपर कोई आपत्ति पड़े, कोई रोग होय, कहीं पराजित होने लगे, उसका कोई शत्रु हो तब उसके उपकारके बदलेमें प्रत्युपकार किया जाता है। तो, तुम्हारे जीवनमें कभी कोई ऐसा अवसर ही न आवे, ऐसा मौका ही न आवे कि मैं तुम्हारे उपकारका बदला चुकानेके लिये प्रत्युपकार करूँ। यह भगवान् श्रीरामचन्द्रका वचन है।

प्रति उपकार करौं का तोरा। सु. का. 32.3

अब भगत लोग बड़े विलक्षण होते हैं यह बात सुनाता हूँ। सारी अयोध्या भगवान् रामके साथ, लेकिन हनुमान्जीने कहा कि हम आपके साथ नहीं आयेंगे। अभी यहाँ नीलोबा भक्तका उपाख्यान है, महाराष्ट्रमें। वह चाहते थे कि सन्त तुकारामका हमको दर्शन हो। सन्त तुकारामका शरीर पूरा हो गया था, और चाहते थे कि उनका हमको दर्शन हो। एकदिन वह तुकारामजीका स्मरण-ध्यान कर रहे थे, इसीबीचमें विट्ठल भगवान् उनके सामने आकर खड़े हो गये। विठोबा-पण्ढरीनाथ आ गये! उन्होंने कहा कि तुम क्यों आये हो ? तुमको बुलाने कौन गया था ? क्या प्रह्लाद जैसे संकटमें पड़े थे, और नरसिंह भगवान् खम्भेमें-से फूट पड़े-ऐसे क्या मैं कुछ संकटमें पड़ा था कि तुम मेरी रक्षा करने आये हो ? मैं तुमको नहीं चाहता हूँ। मैं तो सन्त तुकारामको चाहता हूँ, विठोबा-विट्ठलको नहीं चाहता। यह नीलोबा भक्त हुए हैं, उनकी जीवनी चिन्तामणिके अगले फरवरीके अंकमें आनेवाली है। उनकी पूरी भक्तगाथा है उसमें।

श्रीहनुमान्जीने कहा कि भगवन्! मैं दिव्यलोकमें नहीं

जाऊँगा, मैं साकेतधाममें नहीं जाऊँगा, मैं वैकुण्ठमें नहीं जाऊँगा। मैं तो यहीं धरती पर रहूँगा। तो, धरती पर क्यों रहोगे भाई ? भगवान्का सान्निध्य कहीं भक्त छोड़ता है ? प्रेमी तो यही चाहता है कि प्रियतमका सान्निध्य उसको प्राप्त हो। तो फिर तुम क्यों धरती पर रहना चाहते हो ? बोले कि मैं धरती पर तबतक रहूँगा-

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।।

(वाल्मीकि उत्तरका. 108)

जबतक आपकी कथा धरतीपर रहेगी, क्योंकि कथामें जो-जो भगवान्की लीला सुनायी जाती है वही-वही लीला भगवान् करते जाते हैं। तो, हनुमान्जीने कहा कि जबतक आपकी चर्चा, आपकी कथा, आपका कीर्तन, जबतक धरतीपर सुननेको मिलेगा तबतक मैं धरतीपर रहूँगा। यह कथा परम पावन है। रामचन्द्र तो काल विशेषमें प्रगट होते हैं। स्थान विशेषमें रहते हैं, और विशेष-विशेष भक्तोंको दर्शन देते हैं। परन्तु, रामकथा सब स्थानमें रहती है, सब समयमें रहती है और सबके लिये सुलभ है। तो, हनुमान्जीने कहा कि-

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।।

(वाल्मीकि उत्तरका. 108)

मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके तबतक धरती पर रहूँगा, जबतक आपकी कथा सुननेको मिलेगी। भगवान् श्रीरामचन्द्रके अचिन्त्य, अनन्त कल्याणमय गुणोंका आपने श्रवण किया। रूपमाधुरी, गुणमाधुरी, शीलमाधुरी, स्वभावमाधुरी, यह एक-एक चीज ऐसी है, जो हमारी आँखको भगवान् रामचन्द्रमें लगा दे, हमारे कानको रामचन्द्रमें लगा दे, हमारी जीभको रामचन्द्रमें लगा दे, नाकको लगा दे। हमारा हाथ उनकी सेवा करे, पाँव उनकी सेवा करे।

जब ऐसी स्थूल जड़ इन्द्रियोंको भी भगवान् रामचन्द्रमें लगा लेनेका सामर्थ्य है तो हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारा आत्मा भगवान्‌में लग जाय इसमें क्या शंका है ?

वाल्मीकि बीज है। जैसे, बांबी होती है न, बांबीकी मिट्टी, तो उस मिट्टीमें तो बीज होता है। और, तुलसी अंकुर है। बीजमें हरियाली नहीं होती है। बीजमें सब कुछ होता है, परन्तु दिखायी नहीं पड़ता। परन्तु जब वह वल्मीक, वह बांबी, वह दीमककी मिट्टी तुलसीके पौधेके रूपमें आती है, तो उसकी जड़, उसका तना, उसका छिलका, उसका पत्ता, उसकी मंजरी, उसकी सुगन्ध, उसका दर्शन सब लोगोंके लिये कल्याणकारी हो जाता है। तो, वाल्मीकि बीज हैं और तुलसी उनके अंकुर है। अंकुर होनेसे हरियाली भी है, औषधि भी है, पत्ता भी है, तना भी है। दर्शन करो, स्पर्श करो। भगवान्‌ने कहा है कि तुलसीके बिना हम भोजन ही नहीं करेंगे।

एक बात मैंने बाल्यावस्थामें भगवान् रामके बारेमें सुनी थी। सबको मालूम है, जो वाल्मीकि रामायण पढ़ते हैं। उसने हमारे मनको खींचा, ऐसा खींचा....। सबसे पुरानी बात आपके सामने सबसे नयी करके सुना रहा हूँ। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी उसे लिखा है, और वाल्मीकि रामायणमें तो है ही है। वह तो बीज ही है। वह बोलते हैं-

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न रामस्य मुखे दृष्टः स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः।।

उनको बुलाया गया कि तुम्हारा राज्याभिषेक होगा। 'आहूतस्याभिषेकाय' और 'विसृष्टस्यवनाय च' वनमें जानेके लिए भेज दिया गया। बुलाया गया राज्याभिषेकके लिये और भेज दिया गया जंगलमें। परन्तु-'न रामस्यमुखेदृष्टः स्वल्पोप्याकारविभ्रमः'- रामचन्द्र भगवान्‌के मुखपर थोड़ा-सा भी आकारविभ्रम कि राज्यके

नामपर प्रसन्नता आयी हो और वनके नामपर मलीनता आयी हो! स्वल्प भी–थोड़ा–सा भी आकारविभ्रम उनके चेहरे पर, उनके वदन पर नहीं दिखा। गोस्वामी तुलसीदासजीने उसको लिया–

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा।।

हम कहते हैं, मनुष्य चाहे भगवान् रामचन्द्रके स्वरूपको न जाने, उनको जानना तो थोड़ा कठिन है।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे।
बिधि हरि सम्भु नचावनिहारे।।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा।
औरु तुम्हहि को जानन-हारा।।

अयो. का. 127.1

तो, भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान तो बड़ा कठिन है। काकभुशुण्डि सरीखे वक्ताने लोमश ऋषिसे कह दिया–पहले महाराज हमको सगुण साकारका साक्षात्कार हो लेने दो।

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा।
तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा।।

उ. का. 111.4

आप, निर्गुण उपदेश करते हैं, बहुत बढ़िया सिद्धान्त है। लोमश मुनि, कितनी बड़ी आयु, कितना बड़ा अनुभव, क्या सिद्धान्त...परन्तु काकभुशुण्डि अड़ गये। पहले हमको सगुण साकार भगवान्‌का दर्शन हो जाने दो। बिलकुल शास्त्रीय बात है यह कि इष्ट साक्षात्कार पर्यन्त उपासना करके फिर निर्गुण निराकार में प्रवेश करें। जिसके जीवनमें लक्ष्यका ही निश्चय नहीं हुआ कि हमारा लक्ष्य क्या है ? उसका आसन कहाँ लगेगा ? आसन उड़ाकर उसको कहाँ ले जायेगा ? ले जानेके लिये कुछ जगह तो चाहिए न! जिसको अपने

लक्ष्यका ही ज्ञान नहीं कि हमारा लक्ष्य क्या है, उसका जप, तप, मख, पूजा क्या करेगा ? गोस्वामीजी कहते हैं भक्तिमें कोई प्रयास नहीं है।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।
जोग न मख जप तप उपवासा।।
सरल सुभाव न मन कुटिलाई।
जथा लाभ संतोष सदाई।।
मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।।

उ. का. 46.1,2

देखो, भगवान् कहते हैं कि मेरा दास कहलाये और विश्वास करे मनुष्यका। 'मोर दास कहाइ नर आसा'–और, भले ध्यानके नाम पर बैठकर आप मनोराज्य करते हो, उससे भी हमारा कोई अभिप्राय नहीं है। आपके जीवनका एक लक्ष्य होना चाहिए। प्रेम कुटीरमें हम 'ध्यानका विज्ञान'–विज्ञान माने साईंस (Science)। ध्यानका साईंस क्या है ? और, तेजपालमें 'प्रेक्टिकल ध्यान'। थोड़ी–सी अंग्रेजीके शब्द बोल देनेसे बाबू लोग कुछ जल्दी समझेंगे। नहीं तो, 'ध्यानका विज्ञान' कहने पर जल्दी समझमें न आवे। और, 'प्रयोगात्मक ध्यान' या 'क्रियात्मक ध्यान' कहनेसे भी शायद बात समझमें न आवे! तो हम आपको इसके बारेमें सुनानेवाले हैं।

परन्तु आपके जीवनका लक्ष्य क्या है ? आप रामको पाना चाहते हैं कि आप आरामको पाना चाहते हैं ? आप शान्ति चाहते हैं कि आप परमार्थ–परिपूर्ण पर ब्रह्मतत्त्वको पाना चाहते हैं ? असलमें आपका लक्ष्य निश्चित होने पर ही आपका ध्यानका विमान आपको अपने लक्ष्य तक पहुँचायेगा। आप दस हजार रुपया अपने जूतेमें रख लीजिये। और, यहाँ बैठकर कोशिश कर

लीजिये कि हम ध्यान करेंगे। तो, बारम्बार आपकी आँख जूतेकी तरफ जायेगी, भगवान्का ध्यान नहीं लगेगा। क्योंकि, दुनियामें बहुत सारी चीजें-बहुत सारी चीजें हम चाहते हैं और इकट्ठा करके रखते हैं। और, वह हमारे जीवनका लक्ष्य बन गयी हैं। तो, ध्यानके नाम पर थोड़ा समय भले मिल जाय, थोड़ी नींद भले आ जाय, थोड़ी देरके लिये मनोवृत्तियोंकी चञ्चलता भले नष्ट हो जाय। ध्यानमें जो गति आती है, माने ध्यान जो हमको उठाकर एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचाता है। अच्छा, इसको मत मानो। परन्तु, एक जगह जहाँ हम फँसे हुए है वहाँसे छुड़ाकर अपने स्वरूपमें स्थित करता है ऐसे मानो। जहाँ हम देहादिमें फँसे हुए हैं, वहाँसे हमको उठाकर अपने स्वरूपमें स्थित कर देता है। तब ध्यान गतिशील हुआ। हमको मृत्युलोकसे उठाकर, परमार्थलोकमें-परमात्मामें, परमेश्वरमें जोड़ दिया तो ध्यान गतिशील हो गया तो, ध्यान गतिशील कब होता है? जब मनुष्यका लक्ष्य-ध्येय होता है। जहाँ ध्येय-लक्ष्य नहीं है, वहाँ ध्यान बिलकुल जड़तामें छोड़ देता है। तो यह जो हम श्रीवाल्मीकिरामायण सुनते हैं, रामचरितमानस सुनते हैं उसमें यह निश्चय होता है कि हमारे जीवनका लक्ष्य परमात्माकी प्राप्ति है। वही अचिन्त्य, अनन्त, कल्याण गुण-गणोंका आधार है, निलय है, अधिष्ठान है। और उसका शीलस्वभाव, सबमें समता है।

सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।

उ. का. 41.0

गुण-दोष-दृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः।।

भा. 11.19.45

सच्चा गुण वह है, जहाँ गुण-दोषका विभाग ही नहीं रह

जाता। गोस्वामी तुलसीदासजीने ज्यों-का-त्यों भागवतका वचन लेकर रख दिया-

गुन यह उभय न देखिअहि देखिअ सो अबिबेक।

एक तो भगवान् श्रीरामचन्द्र साक्षात् परब्रह्म परमात्मा और उनका अति स्नेही, अतिकृपालु स्वभाव, उनके अचिन्त्य-अनन्त कल्याण गुण, उनकी लीला-पुष्पवाटिका उनकी लीला है और समुद्र पर सेतु बाँधना उनका चरित्र है। और उनका रूप सौदर्य, '*कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी।।*'

यह उनके गुण है। और, जो नीच-से-नीच है, अधम-से-अधम है-

कोमल चित अति दीनदयाला।
कारन बिनु रघुनाथ कृपाला।।
गीध अधम खग आमिष भोगी।
गति दीन्ही जो जाचत जोगी।।

अर. का 33.1

यह उनका स्वभाव है। और, वह किसीको गलती करते हुए देखते हैं, मारीचके भीतर देख रहे हैं-

अन्तर प्रेम तासु पहिचाना।
मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना।।

अर. का. 27.9

यह उनका स्वभाव है और उनका स्वरूप परब्रह्म परमात्मा है। उनकी चर्चा, उनकी कथा, उनका नाम हमारे मुखमें आवे, उनका नाम हमारे कानमें पड़े, वे हमारे जीवनके लक्ष्य बनें।

ध्यान साधन है। साधन होता है साध्यकी प्राप्तिके लिये। जैसे कहीं आपको जाना हो तो मोटरमें बैठते हैं। मोटर साधन है और जहाँ आप पहुँचना चाहते हैं, आपका गन्तव्य है वह साध्य

है। कई लोग सहज स्थितिके अर्थमें भी ध्यान शब्दका प्रयोग करते हैं कि सहज स्थिति भी ध्यान है। तो वह अपनी भाषामें ऐसा बोलेंगे तो हमको क्या आपत्ति है ? लोग अपनी-अपनी भाषामें बोलते हैं।

जहँ जहँ चलौं सोई परिक्रमा, जो जो करौं सो पूजा।

तो, उसको कबीर सहज-स्वाभाविक बोलते हैं। साधो! सहज समाधि भली।-सहज समाधि जो है, वह सबके लिए नहीं होती है। पहले यह जो विकारयुक्त स्थिति, कृत्रिम स्थितिमें हम फँस गये है, इस बनावटी स्थितिमें-से निकालनेके लिए कुछ उपाय करना पड़ता है। यदि, कोई कृत्रिम स्थितिको ही सहज स्थिति मान लें तो गड्ढे-के-गड्ढेमें ही रहेंगे। ऊपर नहीं उठेंगे। इसलिए ध्यान अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये साधनरूप होता है।

ध्यानमें गति है। निर्गतिता ध्यान नहीं बोलते। इसमें गति तीन तरहकी है। एक तो जहाँ हम फँसे हैं, जिस दल-दलमें, जिस कीचड़में हम फँस गये हैं, वहाँसे उठनेकी, निकलनेकी शक्ति आती है, यह ध्यानकी गति है। जैसे हमारे जीवनमें कोई दुराचार है, कोई दुर्भाव है, कोई दुर्गुण है, चञ्चलता है तो उससे बचानेका काम शक्तिशाली होकर ध्यान करता है। अज्ञानसे रक्षण करनेमें ध्यान मदद करता है।

दूसरी बात ध्यानकी यह है कि यदि हमारा कोई लक्ष्य है, जो हम प्राप्त करना चाहते हैं यहाँतक कि रुपये ही प्राप्त करना चाहते हैं, कुर्सी ही प्राप्त करना चाहते हैं, यश ही प्राप्त करना चाहते हैं तो उसका यदि ठीक-ठीक चिन्तन नहीं करेंगे, यह चिन्तनकी धारा जो है जिसमें एक विषयका निश्चितरूपसे चिन्तन। तो, व्यापारी लोग भी सबेरे उठकर आपसमें टेलीफोन करते हैं कि थारी के धारणा है ? थारा के भाव है ? थारा के ध्यान है ? वह भी यदि अपना ध्यान नहीं

बनावेंगे, तो बाजार कौन-सा रूप पकड़ेगा यह मालूम नहीं पड़ेगा। इन सबमें भी ध्यान शब्दका प्रयोग होता है।

अब हमें रामका, कृष्णका, अन्तर्यामीका, निराकारका, ईश्वरका परोक्ष पदार्थका यदि अनुभव प्राप्त करना है, तो सद्गुरुसे, सत्शास्त्रसे उस वस्तुका श्रवण करके और फिर उसमें अपने मनकी धाराको लगाना यह भी ध्यानकी एक पद्धति है।

और, दूसरेको, परोक्षको लक्ष्य न मानना माने साकार है, सगुण है, अन्तर्यामी है, निराकार है, ऐसा है, वैसा है ऐसी कल्पना न करके सम्पूर्ण कल्पनाओंसे निवृत्त होकर अपने स्वरूपमें बैठना यह बैठनेका जो अभ्यास है कि 'तत्रैकतानताध्यानम्' यह भी एक ध्यानकी पद्धति है। इससे हम जो अन्यके साथ बैठे हुए हैं या मिल गये हैं वहाँसे अलग होकर अपने शुद्ध स्वरूपमें बैठ जाते हैं। बल्कि, ध्यानको तो इस प्रकार भी वर्णन किया गया है कि सांख्य-दर्शनवाले कहते हैं कि-'रागोपहतिर्ध्यानम्'-दुनियामें किसीसे भी राग-द्वेष न होने पावे। व्यवहार करते रहो परन्तु राष्ट्रकी सीमा बनाकर भी राग-द्वेष नहीं करना, जातिकी सीमा, सम्प्रदायकी सीमा बनाकर भी राग-द्वेष नहीं करना। अपने हृदयको राग-द्वेषसे मुक्त रखना ध्यान है।

लक्ष्यका चिन्तन ध्यान है, यह योगदर्शनवाले मानते हैं। और, अपने प्रियतम और उनसे सम्बद्ध वस्तुओंका चिन्तन ध्यान है यह भक्तलोग मानते हैं। और मनको निर्विषय कर देना अथवा आत्माकारवृत्तिका प्रवाह करना ध्यान है, यह वेदान्ती लोग मानते हैं। इस तरहसे भिन्न-भिन्न हमारे जो सन्तोंके सम्प्रदाय हैं, शैवोंके सम्प्रदाय हैं, बौद्धों-जैनोंके सम्प्रदाय हैं-सबमें अपने-अपने लक्ष्यके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारसे ध्यान माना जाता है। और यह सब-का-सब वैज्ञानिक है कि कैसा करनेसे क्या होता है

उसकी साधनाका स्वरूप भी निश्चित है और उसका फल भी निश्चित है। आप, ऐसा ध्यान करेंगे तो उसका फल वैसा ही होगा।

ध्यानमें एक गति है, ध्यानमें एक शक्ति है, ध्यानमें लक्ष्य पर पहुँचानेका सामर्थ्य है। यह सब बात हम ध्यानके सम्बन्धमें आपको धीरे-धीरे यहाँ रोज सुनाते रहेंगे। अब कलसे तेजपाल हालमें आपको ध्यानकी चर्चामें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंमें वैसा ध्यान करनेसे वैसा फल क्यों मिलता है यह भी सुनायेंगे। ध्यान प्रयोगात्मक-क्रियात्मक कैसे होता है ? साधन और फलका क्या सम्बन्ध है, यह स्पष्टीकरण करेंगे।

●

प्रवचन : 1

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

'ध्यानका विज्ञान'-विज्ञानको आजकल साईंस (Science) बोलते हैं। तो ध्यानका साईंस क्या है?

'अथातो ध्यानं व्याख्यास्यामः'।

ध्यान शब्दका अर्थ है, चिन्तनकी धारा, संस्कृत भाषामें मूल अर्थ यह है। बल्कि, 'चिन्तनकी धारा' हिन्दी सँवारनेके लिये बोलना पड़ता है। संस्कृतमें तो, 'चिन्ताकी धारा' बोलना होता है, यही चिन्ता है। चिन्तनकी धारामें एक विशेष परिवर्तन आ गया। इसको हम प्रारम्भसे ही समझाते हैं। जैसे किसीको मृत्युका डर लगता है, ईश्वरकृपासे आपमें-से किसीको न लगता हो, तो बहुत अच्छा है। आगे, दुःख आवेगा इसका डर लगता है। अच्छा, हम कहीं ठगे जायेंगे, इसका डर लगता है। यह आपके चिन्तनमें सहज भावसे आ गया है। 'इसने' हमारा बिगाड़ किया है, तो इसको हम नुकसान पहुँचावेंगे। यह चीज बहुत बढ़िया है तो हमको मिल जाय, 'यह चीज' हमारे पास बनी रहे। वर्तमानकालमें हमारे चिन्तनकी धाराका रूप ऐसा हो गया है। दुश्मन मिटाना चाहते हैं, धन पाना चाहते हैं, परिवारको ज्यों-का-त्यों बनाये रखना चाहते हैं। तो, परिवार भी नया-नया आता-जाता है, तो स्वागत तो बहुत करते हैं। परन्तु पुराना छूटता है तो बहुत नाराज होते हैं। ऐसी चिन्तनकी धारा हो गयी है।

पैदा हुए, जवान हुए, इतना काम किया, यह सब वर्तमानमें हमारे चिन्तनकी धारा बनी हुई है। ध्यान माने चिन्तनकी विशेष

धारा। और, उसमें व्यवहार कालमें ही परिवर्तन होना चाहिए। शास्त्रमें इसकी पद्धति यह है कि जैसे मृत्युसे डर लगता है, तो घड़ा रहे तो भी माटी और फूट जाय तो भी माटी। यह पञ्चभूतकी सृष्टि रहे तो भी सत्ता, और यह पञ्चभूतकी सृष्टि न रहे तो भी सत्ता। 'भवाप्ययावनुध्यायेत्'-एक ही वस्तुमें-से उत्पत्ति और उसीमें प्रलय होता है। इसलिए वस्तु ज्यों-की-त्यों रहती है। इसलिये मूलकारणका चिन्तन किया जाय तो, मृत्युका भय मिट जाता है। यह हमारी सांख्यक्रिया है।

अब यह, 'भवाप्ययावनुध्यान' है, जिसमें-से घड़ा निकलता है, उसीमें घड़ा डूबता है। जिसमें-से सृष्टि निकलती है, उसीमें सृष्टि डूबती है। जहाँसे शरीर पैदा हुआ, वहीं शान्त होता है। हम आपको क्या बतावें, अगर इसी तरह हम किसीको समझाने लगें तो और डर जाता है।

एक सज्जन हैं उनकी उम्र इस समय बड़ी है, पचहत्तर-अस्सी वर्षके हो गये हैं। उनके पास धन बहुत है। उनके बच्चे हैं, बच्चोंके भी बच्चे हैं और सब काम करते हैं। देश-विदेशमें बड़ा यश है, ख्याति है। परन्तु वह क्या बोलते हैं इसको अंग्रेजीमें, 'नर्वस' बोलते हैं। वह कहते है कि अब हम मर जायेंगे, तो यदि अब हम उनको यह समझाते हैं कि जहाँसे जन्म हुआ है वहीं मृत्यु होती है। पञ्चभूतमें-से आये हो, पञ्चभूतमें लीन हो जाओगे। तब, मौतसे डरनेका कोई कारण नहीं है। यह तुम्हारे चिन्तनकी धारा जो मृत्युकी ओर मुख कर गयी है, यह गलत है।

चिन्तन करना चाहिए अमृतका, तुम चिन्तन करते हो, मृत्युका, इसलिए तुमको दुःख होता है। परन्तु यह बात यदि हम उनको समझावेंगे तो कहेंगे कि स्वामीजी यही कह रहे हैं कि तुम्हारे मरनेमें कोई नुकसान नहीं है। वह बिलकुल ऐसे ही समझेंगे हो!

तो, अब हमको समझानेका ढंग क्या करना पड़ता है ? हम कहते हैं कि तुम्हारी कुण्डली है ? लाओ तो, जरा देखें। उनको यह भी बताना पड़ता है कि हमारे हृदयमें किसी-किसी अवस्थामें बिलकुल सत्यका उदय होता है। हमने योगाभ्यास किया है। हमने देवताकी आराधना की है और हमारे हृदयमें झूठी बात नहीं आती है। और, फिर कहते हैं कि अभी तो तुम्हारी कुण्डलीमें तुम्हारी आयु बीस वर्ष और बची है। अभी तुम सौ वर्ष जिन्दा रहोगे। उनको यह कहना पड़ता है कि हमारा अन्तरात्मा कह रहा है, इल्हाम हो रहा है कि तुम्हारी उम्र सौ वर्ष है। तुम्हारी कुण्डली फाड़कर समुद्रमें फेंक देते हैं। और, यदि बीस वर्षके भीतर तुम्हारी मृत्यु हो जाय तो हम भगवान्‌का भजन करना छोड़ देंगे। अब वह कहते हैं हाँ...हाँ.. अब हमारी उम्र जो है वह लम्बी है। तो हम यह बात हँसीके लिए नहीं कहते हैं। हमारे सामने ऐसी समस्याएँ आती हैं, और उनको समझाना पड़ता है। तो, मूल बात यह है कि हमारे चिन्तनकी धारा अमृतकी ओर होनी चाहिए।

अब एक सच्ची घटना सुनाते हैं। पत्नी है पचहत्तर वर्षकी और पति है अस्सी वर्षके। और, बाल-बच्चे सब हैं, काम-धन्धा सब ठीक है। हमारे सामने समस्या यह आयी कि पति कहते हैं कि यदि पत्नी मेरे सामने मर गयी तो मैं कैसे रहूँगा, मेरी सेवा तो सब यही करती है, मैं जिन्दा कैसे रहूँगा। और यदि मैं मर गया, तो मेरे बिना इसकी क्या दशा होगी ? अब, दोनोंमें-से कोई-न-कोई तो मरेंगे। लेकिन, उनके चिन्तनकी धारा ऐसी दिशामें चली गयी है, जहाँसे उनके हृदयमें दुःख-ही-दुःख आता है। तो, यह मैं आपको उदाहरण देता हूँ। इसको आप इतिहास मत मानिये इसको उदाहरण मानिये। तो, चिन्तनकी जो दिशा है, वह भ्रष्ट हो गयी है। हमको यह दुःख आ जायेगा, हमारे यह मौत आ जायेगी, हम ऐसे ठगे जायेंगे..

ऐसे जो बातें हमें नहीं सोचनी चाहिए उसके बारेमें हम सोचने लगते हैं। और, सोचना चाहिए कि आत्मा अजर है, अमर है, चेतन है, आनन्द है, परिपूर्ण है। इसमें जन्म-मृत्यु नहीं है। जो सोचना चाहिए वह सोचना छूट गया है। दुःखदायी चिन्तन हमने पकड़ लिया है और सुखदायी चिन्तन छोड़ दिया है।

आप समझो कि इस शरीरकी मृत्यु होगी, और एक दिन होगी। लेकिन जिस क्षण होनी है, उस क्षणसे पहलेके क्षणमें अगर हम मृत्युके लिये डरते हैं, तो वह हमारे मनकी कमजोरी है। अरे, जो होनी होय हो जाय! उसके लिये उससे पहले क्यों डरना ? तो, ध्यानका अर्थ क्या होता है ? कि यह जो दुःखदायी चिन्तन आपके मनमें भर गया है, इसकी जगह पर सुखदायी चिन्तन आवे। इसके लिये संस्कृत भाषामें बोलते हैं, 'चिन्तासन्तानपरम्परा'-चिन्ताके एक बच्चा हो, और उसके भी एक बच्चा हो और उसके भी एक बच्चा हो...चिन्ताके बच्चे। तो, हमारा चिन्तन ऐसे होवे कि भगवान्में-से भगवान्, भगवान्में-से भगवान्..जैसे ब्रह्मासे लेकर आजतक पुत्र-ही-पुत्र होते चले जाते हैं। और, आप देखो। पुत्रके रूपमें बने हुए हो। तो ऐसे हमारे उत्तम-से-उत्तम, उत्तम-से-उत्तम, वस्तुओंके चिन्तनकी सन्तान-परम्परा चल जाय। शास्त्रीय भाषामें हम ध्यानको यहाँसे शुरू करते हैं। जैसे आपको क्रोध आता है। क्रोध आता है तो दिल जलता है। आपका ही दिल जलता है, दूसरे किसीका नहीं। क्यों जलता है क्योंकि आप समझते हैं कि इसने हमारा काम बिगाड़ दिया तो, हम इसके ऊपर क्रोध करके बदला लेंगे। लेकिन, वह काम दूसरी तरहसे भी तो बिगड़ सकता था।

सेठजीका एक आदमी रुपया चुराकर ले गया। बड़े नाराज हुए। पुलिसमें रिपोर्ट की, और छः-आठ महीने उसके पीछे पड़े रहे। और, एक सेठजी मारवाड़में नोट रखकर कुएँ पर हाथ

धोने लग गये और गधा खा गया नोटोंको, अब क्या करोगे ? गिर जाता है अपने हाथोंसे या आग लग जाती है तब क्या करोगे ? आखिर बात वही-की-वही हुई। अब किसीने हमारा काम बिगाड़ दिया यह सोचकर हम उसके ऊपर क्रोध करते हैं। तो, इसके लिए हमारे चिन्तनकी धारा कहीं जुड़ जाय। धर्म-कर्मकी दृष्टिसे प्रारब्ध नामकी एक वस्तु है। ईश्वरके नाम पर देखें तो, ईश्वरकी इच्छासे सब-का-सब होता है। सांख्यकी दृष्टिसे देखें तो प्रकृतिमें सब कुछ होना जाना स्वाभाविक है। और, परब्रह्म परमात्माकी दृष्टिसे देखें तो सब मायामात्र है, प्रतीतिमात्र है। तो, किस दृष्टिसे आपने अपनेको दुःखी किया? आपके पास आखिर दृष्टि-आँख है कि नहीं ? अपनेको दुःखी करनेके लिए आँख नहीं होती, अपनेको दुःखी करनेके लिये अन्धापन होता है। केवल, अन्धकारसे ही हम दुःखी होते हैं। यदि, हमारी दृष्टि खुली है, सावधान है, तो सब प्रतीतिमात्र है। यह अद्वैत-वेदान्तीकी दृष्टि है। यह सब भगवान्‌की इच्छा है यह भक्तकी दृष्टि है। प्रकृतिमें यह सब अपने-आप ही हो रहा है यह सांख्यवादीकी, योगीकी दृष्टि है। सब प्रारब्धके अनुसार होता है यह कर्मवादीकी दृष्टि है।

आपलोग अपने मनको घपलेमें डाल देते है। 'घपला' शब्द हमारा उत्तर प्रदेशका है, यह यहाँ नहीं चलता है। आप हैं कर्मवादी और अपने मनको ईश्वरकी इच्छाके साथ जोड़ते हैं। आप हैं भक्त और जोड़ते हैं प्रकृति, भाग्य या मायामात्र। आप हैं वेदान्ती और जोड़ते हैं ईश्वर इच्छा और शास्त्रके साथ, यह सब नहीं जुड़ता है। आप अपनी निष्ठाको कायम कीजिये।

ध्यानका विज्ञान क्या है ? आप अपने वर्तमान चिन्तनकी शैलीमें परिवर्तन करना चाहते हैं कि नहीं ? वह मूल प्रश्न है और यदि आप इतने जड़ हैं कि नहीं हमारे तो जैसा होता है वैसा ठीक है।

तो ठीक है तुमको ध्यान करनेकी कोई जरूरत नहीं है। तुम बच्चे पैदा करते जाओ, पैसा इकट्ठा करते जाओ।

एक आदमीके घरमें बहुत पैसा आता है। तो, एकबार दानकी चर्चा हुई। उसने कहा कि महाराज, यह गरीब लोग फुटपाथ पर घूमते हैं, उनको पैसा दो तो वह शराब पीते हैं, जुआ खेलते हैं, बड़े बुरे काममें लगाते हैं, तो इनको देना तो बिलकुल ठीक नहीं है। अच्छा भाई तो विद्वानोंको, साधुओंको दो। तब बोले कि उनके पास तो अपने आप ही इतना आ जाता है महाराज कि देनेकी जरूरत ही नहीं। तो, यह पट्ठे लोभी, निकालना तो कुछ चाहते नहीं और उसके लिए बहाना बना लेते हैं कि सामनेवाले पर दोष दें। असलमें लोभ तो उनके मनमें है। तो ध्यान करनेका मतलब यह नहीं है कि दूसरा आदमी शराबी है तो उसको शुद्ध गङ्गाजल पीनेवाला बना दें। और, दूसरेके पास बहुत आता है तो उसको संतोषी, निर्लोभ, त्यागी बना दें। आपका काम आपके अपने दिलको बदलना है। जब यह बात आपकी समझमें आवेगी कि हमको अपने ही अन्दर परिवर्तन करना है तब यह ध्यान आपके साथ बिलकुल रामबाण होकर आवेगा और उसी दिन परिवर्तन हो जायेगा दिलमें। तब आप अपने चिन्तनकी शैलीमें परिवर्तन करना चाहेंगे और उसी दिन आपके दिलमें परिववर्तन हो जायेगा। मृत्युका डर चिन्तनका दोष है। ठगानेका डर चिन्तनका दोष है। और, दुःखी होनेका डर भी चिन्तनका दोष है। आप क्यों किसी चीजको पकड़े रखना चाहते हैं? वह चीज एकदिन आयी थी, एकदिन चली जायेगी। आप दुश्मनको क्यों सुधारते हैं अपने आपको क्यों नहीं सुधारते? यह तो बाहरकी बात हुई।

यदि आपके चरित्रमें कोई दोष है और आप उसको मिटाना चाहते हैं। यदि हम मिटाना चाहते हैं कि यह कड़वा बोलना दोष है तो यह कड़वा बोलना छूट जाय और हम मीठा बोलने लग जायँ। हम

दूसरेकी चीज ले लेते हैं, तो यह दोष हमारेमें-से दूर हो जाय। यदि आपके मनमें बार-बार क्रोध आता है और यह दूर हो जाय। हमारे मनमें कामकी वृत्ति आ जाती है वह छूट जाय। यदि आप अपने जीवनमें जड़ नहीं हो गये हैं और कोई परिवर्तन करना चाहते हैं तो आपको ध्यान करना पड़ेगा। और, यदि आप जीवन्मुक्त हैं, यह सहजकी बात भी तो आती है न तो उसको छोड़ क्यों दें? यदि आपको ऐसा लगता है कि ज्यों-का-त्यों, सब-का-सब ठीक है, ब्रह्मदृष्टिसे सब ब्रह्म है, भगवत्-दृष्टिसे सब भगवान् है। आत्मदृष्टिसे सब आत्मा, अभिन्न द्रष्टा है। उसमें द्रष्टा और भगवान् एक हो जाते हैं तब तो ब्रह्म होता है, और भगवान् अलग रहते हैं तो भक्ति होती है। और, द्रष्टा अलग बैठ जाता है तब योग होता है। माने, जबतक द्रष्टा अपनेको पूर्णताके रूपमें नहीं देखता है माने अद्वितीय पूर्णताके रूपमें, निर्विकार अद्वितीय पूर्णताके रूपमें नहीं देखता है तबतक आत्मदृष्टि नहीं है। तो, आत्मदृष्टिसे आप असंग हैं, भगवत् दृष्टिसे यह सब प्रपञ्च भगवान्‌की लीला है। और आत्मा भगवान् दोनोंका तत्त्वमें, परमार्थमें एकत्व है। वहाँ ब्रह्मदृष्टि है। और, नहीं तो आप शरीरसे अलग कर्त्ता हैं, भोक्ता हैं, आत्मा हैं, शरीरके पहले भी थे, बादमें भी रहेंगे। यह शरीर तो बीचमें आया है, प्रारब्धके अनुसार छूट जायेगा। कहीं भी आप दृष्टिको पकड़ेंगे, कोई भी एक दृष्टि आपके अन्दर आ जायगी तो आपका दुःख दूर हो जायेगा।

तो, दुराचारको दूर करनेके लिये, दुर्भावको दूर करनेके लिये, दुर्गुणको दूर करनेके लिये और अज्ञानको दूर करनेके लिए भी ध्यानकी आवश्यकता है। अज्ञान भी दूर तब होगा जब ज्ञान होगा, और ज्ञान तब होगा जब हमारे दिलमें जो कूड़ा-कचरा भरा है वह दूर होगा। तो, ध्यान दोनों ओरसे हमारे लिए उपकारी होता है। एक तो ध्यान उस कूड़ा-कचराको निकाल देता है और दूसरे एक बढ़िया

वस्तुको, जो हृदयमें है तो उसे प्रकट होनेका रास्ता खोल देता है। और, यदि उसको बाहरसे लाना है, तो बाहरसे भी ले आता है।

देखो, जैसे भागवत सप्ताह होता है तो एक दिन उसका माहात्म्य सुनाते हैं। तो यह हम ध्यानका माहात्म्य सुना रहे है आपको। आप, यदि जीवन्मुक्त हैं तो जो होता है वह होने दो। हम पहले महात्माओंके पास जाकर पूछते थे कि महाराज, हमारे जीवनमें आप क्या परिवर्तन देखना चाहते हैं ? तो, कोई कहता हम तुमको स्वस्थ देखना चाहते हैं। कोई कहता हम तुमको सदाचारी देखना चाहते हैं। कोई कहता हम तुमको शान्त देखना चाहते हैं। और, कोई-कोई कहता कि बाबा तुम साक्षात् भगवान्‌के स्वरूप हो, तुम जैसे रहो वैसे ही ठीक है। कोई कहते तुम और हम एक ही हैं, आत्मा ही है, परिवर्तनकी क्या जरूरत है ? ऐसे-ऐसे महात्मा मिलते थे हमको।

या तो आप जीवन्मुक्त हैं तो जो जैसे हो रहा है उसको देखते जाइये, घबड़ाइये मत, दुःख मत मानिये, चिपकिये मत, फँसिये मत, सटिये मत, हटिये मत जो हो रहा है, वह हो रहा है। या तो आप जीवन्मुक्त दशामें हों, सहज स्थितिमें हों और या तो आप बिलकुल जड़ दशाको प्राप्त हो गये हों। यदि आप साधन दशामें हैं तो आपके अन्दर कई ऐसे दोष हैं जिनको हटाना है और कई ऐसे सद्गुण हैं जिनको प्रकट करना है। और इसके लिए ध्यानसे बढ़कर और कोई साधन नहीं है। क्योंकि ध्यान ही असलमें दुनियाके रूपमें प्रकट हुआ है।

हम अपनी बात आपको सुनाते हैं। हम शायद बीस-बाईस वर्षके थे तो हम अपना चेहरा बदलते थे, खेल-खेलमें। तो, सामने बैठकर गुस्सेका जो भाव ले आते अपने मनमें तो हमारी आँखें कैसी हो जातीं ? हमारा मुँह कैसा विकट हो जाता ?

एकदिन तो एक आदमीने हाथ जोड़ लिया कि बोले बाबा बस, अब समाप्त करो हम आपको इतने विकट रूपमें नहीं देख सकते। जब प्रेम करते हैं तो आँखें कैसी मीठी हो जाती हैं, कैसी मधुर मुस्कान मुँह पर आ जाती है, कैसे रोम खिल जाते हैं। तो आपके चिन्तनका प्रभाव आपके शरीर पर पड़ता है कि नहीं पड़ता? जब नाराज होकर नौकरको बुलाते हैं तो बोली कैसी होती है और जब प्रेमसे 'डार्लिंग' कहकर पुकारते हैं तब आपकी शक्ल कैसी होती है ? आजकल 'डार्लिंग' शब्द छूट गया हो और कुछ आ गया हो तो वह हमको मालूम नहीं....!!

इसका अर्थ है कि जब आपका भाव पवित्र होगा, जब आपका भाव मधुर होगा, आपका मन जब सुन्दर होगा तब आपकी वाणी सुन्दर हो जायेगी और आपका शरीर भी। यह हमने जान-बूझकर बताया कि क्रोध आने पर हमारा शरीर ऐसा विकट हो जाता है कि हमारे प्रेमी भी उसको देख नहीं पाते। यदि आप मङ्गलमयका ध्यान करेंगे तो आपकी बोली मङ्गलमय हो जायेगी, आपकी क्रिया मङ्गलमय हो जायेगी, आपका मन मङ्गलमय हो जायेगा। आपके जीवनमें बड़ा भारी परिवर्तन होगा। हम ब्रह्मज्ञानका जब वर्णन करते हैं तब शुद्ध वस्तुका वर्णन करते हैं, और जब यज्ञयागादिका वर्णन करते हैं तो क्रियाका वर्णन करते हैं और इस समय भाव, ध्यानका वर्णन करते हैं। ध्यान और भावमें थोड़ा-सा अन्तर होता है वह हम किसी दिन अलग-अलग करके सुनावेंगे।

अब यदि हमें अपने हृदयमें, अपने चरित्रमें, अपने जीवनमें परिवर्तन करना है तो उत्तमका ध्यान स्वीकार करना पड़ेगा। इसमें बहुत-सी मददगार बातें हैं। इसका भी एक विज्ञान है। आप किन लोगोंका साथ करते हैं ? आपकी कम्पनी, आपकी सोसाइटी कैसी है तो जैसे लोगोंमें रहेंगे, इसमें दोनों बात नहीं चल सकती है। या तो

सन्तोंकी दुनियामें रहो या तो उजड्ड जो लोग रहते हैं उनकी दुनियामें रहो। अच्छा, आप काम कैसा करते हैं ? उसका भी मन पर असर पड़ता है। रहते कैसे लोगोंमें हैं और काम कैसा करते हैं ? तो क्रियाका भी प्रभाव ध्यान पर पड़ता है और स्थानका प्रभाव भी ध्यान पर पड़ता है। बोले–हमारा ध्यान कहाँ लगता है कि जब सिनेमा घरमें जाकर बैठते हैं तब हमारा बड़ा ध्यान लगता है। तो वह ध्यान लगनेवाला नहीं है। जाकर सटोरियोंमें बैठते हैं, जहाँ लिया–दिया होता है, पहले तो ऐसे था तीस–चालीस वर्ष पहले देखा था। कालबादेवी रोड पर सब इकट्ठे होते थे, बड़े जोरसे चिल्लाते थे, समझमें ही न आवे कि क्या कह रहे हैं ? एक साथ ही सौ–पचास आदमी बोला करते थे। तब जाकर खड़े तो रहें उनके बीचमें और सोचें कि हमारा ध्यान लग जाय तो कैसे लगेगा ?

थोड़ा समयका भी प्रभाव पड़ता है। यह बाहरसे प्रभाव पड़ता है ध्यानमें। एक बार नींद आ जाती है तो सारी वासनाओंका पिटारा बन्द हो जाता है। और जागने पर वासनाएँ एकाएक नहीं आती हैं, धीरे–धीरे आती हैं। पूरी तरहसे जाग जाने, दुनियामें उतरनेसे पहले और नींद टूटनेके बाद आप अपने समयको उत्तम चिन्तनमें लगाना चाहें तो बड़ी आसानीसे लगा सकते हैं। और, गाली देकर आये, सौदा करके आये, चार बात उनसे करके आये और बैठ गये। तो, समयसे जो लाभ आप उठा सकते हैं, वह नहीं उठा पायेंगे। समय भी लाभ देता है, और उससे लाभ उठाना चाहिए। तो, स्थानसे, साथीसे, क्रियासे और कालसे आपको ध्यानके लिए लाभ उठाना चाहिए।

भागवतमें दस चीजें एक जगह पर लिखी हैं।

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः।।

(11.13.4)

आप पढ़ते क्या हैं ? एक बात, और पीते क्या हैं ? दो बात, कैसे लोगोंमें रहते हैं–तीन बात, कैसी जगहमें रहते हैं–चौथी बात, समयका सदुपयोग कैसे करते हैं–पाँचवीं, 6. किस ध्यानमें रहते हैं? 7. क्या काम करते हैं ? 'ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारः' 8. आप किस मन्त्रका जप करते है? 9. आपको जन्म और संस्कार कैसा प्राप्त हुआ है ? 10. आप चिन्तन कैसे करते हैं ? यह दस बातें भागवतके एक ही श्लोकमें है। 'दशैते गुणहेतवः'–तो बाहरका प्रभाव आपके जीवन पर बहुत ज्यादा पड़ता है। यहाँ तक कि यह जो आप भाषा बोलते हैं वह आप भीतरसे लेकर नहीं आये हैं। देखो, विलायतमें पैदा होते तो अंग्रेजी बोलते, जर्मनमें पैदा होते तो वहाँकी जर्मनी भाषा बोलते, रूसमें पैदा होते तो रशियन बोलते। तमिलवालेको बंगला बोलना नहीं आता, बंगलावालेको तमिल बोलना नहीं आता। यह बाहरसे जैसे सङ्गमें रहे हैं वैसी बोली आपके भीतर घुसेड़ दी गयी है। खाना भी बाहरसे भीतर घुसेड़ दिया है। जैसे हमलोग दक्षिणमें जाते हैं तो वहाँ दही–भात एकमें मिलाकर खूब खाते हैं और वे लोग हमलोगोंकी बड़ी हँसी उड़ाते हैं। जब हम भोजनके समय ग्रास हाथमें लेकर मुँहमें डालते हैं तो कहते हैं कि यह क्या खानेका कोई तरीका है ? अपना हाथ खा रहे हो ? हमको ग्रास हाथमें लेकर मुँहमें डालना अच्छा लगता है, उनको हथेलीसे खानेमें आनन्द आता है। और चम्मचवाले तो हम दोनोंको बेवकूफ समझते हैं। वे कहते हैं कि भोजनमें अपना नाखून लगा देना, हाथ लगा देना, गन्दगी लगा देना यह कौन–सा खानेका तरीका है ? अब खानेका तरीका कौन–सा हमने अपनाया है ? जैसे अपनी माँको, बापको, दादाको खाते हुए देखा है वैसा खाना हम खाने लगे हैं और वह हमारे साथ आ गया है।

आपको ध्यानकी एक रीति बताते हैं। ज़ो चीज बाहरसे

आयी है, सिखायी गयी है, उससे अलग होकर जरा पाँच मिनट बैठ जायँ। आपने क्या-क्या बाहरसे सीखा है ? बोलना आपने सीखा है, नाम सबका आपने सीखा है, खाना-पीना आपने सीखा है, कपड़ा-लत्ता पहनना आपने बाहरसे सीखा है। तो, ध्यानमें भी आपके बहुत-सी चीजें बाहरसे ही डाली हुई आयी है। यह आप देख लो! तब, घटिया चीजकी जगह बढ़िया चीज आप अपने मनमें डालिये। आप, आपके ध्यानमें कोई बहुत सुन्दर स्त्री आ रही हो तो, उस समय राधारानी और श्रीकृष्णका ध्यान कीजिये। आपके मनमें कोई बहुत बढ़िया राज दरबारका दृश्य आता हो, तो आप रामदरबारको अपने ध्यानमें लाइये। यह जो वर्तमानमें है उसको हटाना पड़ेगा। अच्छा, हटानेके लिए दो युक्ति हैं। या तो आप दूसरेको ले आइये भीतर, आपसमें समसत्ता हो जिसकी। और या तो अपने दिलको बिलकुल खाली कर दीजिये। किसी ध्यानकी निन्दा नहीं करना कि ये दिल अपना खाली करवा देते हैं। ये तो ईश्वरका भी चिन्तन नहीं बताते हैं उसकी भी निन्दा करनेकी कोई जरूरत नहीं है। और, यह बनावटी ईश्वर हमारे मनमें डाल देते हैं, इसकी भी निन्दा नहीं करनी चाहिए। संसारको निकालनेके लिए युक्ति करनी पड़ती है।

अच्छा, जिसको तुम कहते हो कि हमने दिलको खाली कर दिया, अब उसकी पोलपट्टी हमें पता है। असलमें खाली दिलका भी चिन्तन ही होता है। इस समय हमारे दिलमें कुछ नहीं है, तो इस समय हमारे दिलमें कुछ नहीं है, वह भी निद्रालम्बन ज्ञान है, स्वप्नालम्बन ज्ञान है, अचिन्तनालम्बन ज्ञान है। हम कुछ चिन्तन नहीं कर रहे हैं। तो ज्ञान ही अचिन्तनाकार होकर उस समय भास रहा है वह भी ज्ञानमें आया हुआ एक आकार है। वह जरा बड़े आदमियोंके लिए है। उसमें भी 'ऐरे गैरे नथ्थु खेरे'का प्रवेश नहीं है भला! लेकिन आपको अपने दिलमें जो कूड़ा-कचरा भरा हुआ है उसको साफ करना हो तो ध्यानसे

हृदयका परिमार्जन करना पड़ता है। जैसे आपके घरमें नाली गन्दी हो गयी हो और लोटा-दो लोटा पानी डालकर या एक नल ही खोल दिया, या एक वर्षा ही हो गयी और एक ऐसा स्वच्छ मकान है कि इसमें गन्दगी कोई है ही नहीं। तो, यह दिलकी भी स्थितियाँ होती हैं। ध्यान माने हृदयका परिमार्जन।

यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम्।।

(11.14.26)

जैसे आँखमें मैल आ जाती है तो दवा डालते हैं या अञ्जन लगाते है। हमको याद है और बहुत पुरानी याद है कि हमारी माँने हमको कभी काजल, अञ्जन नहीं लगाया। पहले घी का दीया जलाकर काजल बनाते थे। हमने कभी नहीं लगवाया; क्योंकि जब माँ लगाती तो हम रोने लग जाते और माँ हमारा रोना देख नहीं पाती। तो, जब मैं बड़ा हुआ, संन्यासी हुआ तो उसके बाद शलाकासे साँई भक्त कोकिलजी हमारी आँखमें शामको अञ्जन लगा दिया करते थे, तो अञ्जन लगानेसे आँख स्वच्छ हो जाती है। आजकल तो तरह-तरहकी दवा निकली है। तो, आँख निर्मल बनानेके लिए आप आँखमें कोई-न-कोई चीज डालते हैं। परन्तु मनको निर्मल बनानेके लिए उसमें कोई चीज डालना पसन्द नहीं करते हैं। आँखमें हम लोगोंकी ओर एक रोग होता है, उसे बोलते हैं-'माड़ा' जब 'माड़ा' आ जाता है तो दवा डालनेसे निकल जाता है। और यह जो मोतियाबिन्द आता है तो ऑपरेशन करना पड़ता है। बिना ऑपरेशन निकलता नहीं है। तो, आपके मनमें 'माड़ा' आ गया है कि मोतियाबिन्द आ गया है कि आपको ऑपरेशन करवानेकी जरूरत है। यह दिल भी एक आँख है, दिमाग भी एक आँख है। इसकी भी सफाई करनेकी जरूरत है।

यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ। 11.14.26

'चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम्' 11.14.26–आँखमें जब अञ्जन लगाते हैं तब मैल हट जाती है और, सूक्ष्म वस्तुके दर्शनकी योग्यता आजाती है। 'तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मम्'–सूक्ष्मवस्तुके दर्शनकी योग्यता आती है।

अब घरसे तो सोचकर चले कि भाई, साढ़े आठ बजे तक तो सत्सङ्ग करेंगे, और उसके बाद जाकर उस व्यापारीसे मिलेंगे। और, उससे ऐसी–ऐसी बात करेंगे कि वह हमारी बातोंमें आ जाय और उससे हम हजारोंकी, लाखोंकी आमदनी कर लेंगे। ऐसा सोचकर योजना बनाकर आ गये। यह योजना आपके दिलके भीतर बैठी है। अब यह जो आप ध्यानकी बात सुनेंगे वह ज्यादा गहरायीमें नहीं जायेगी। यह तो कानसे सुनी जायेगी और बाहर ही निकल जायेगी। क्योंकि आपके दिलमें एक योजना है।

इसीसे, ध्यानके दो अङ्ग हैं। एक तो ध्यानका अभ्यास होता है और एक ध्येय वस्तुके अतिरिक्त दूसरी वस्तुसे वैराग्य होना चाहिए। हम अपने ध्येयमात्रको चाहते हैं, ध्येयके अतिरिक्त, उनके सिवाय दूसरेको नहीं चाहते हैं। तो आप अभ्यासी हैं बहुत बड़े। आप तीन घण्टे ध्यानमें बैठ सकते हैं, लेकिन वह पहलेसे ध्यानके बाद क्या करना है यह योजना कि दुश्मनको जरा नीचा दिखाना है, झूठी गवाही देनी है, दूसरेका पैसा ले आना है यह तो आपके राग–द्वेषमें बैठा हुआ है। तो, वह ध्यानसे गहराईमें बैठता है। और अभ्यास डालते हैं ऊपरसे, तब वह अभ्यास बहुत गहरा काम नहीं करता। इसीलिए–

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

एक ओर जिसको हम पाना चाहते हैं, जिस स्थितिको पाना चाहते हैं। नाम कोई भी हो रामको पाना चाहते हैं, कृष्णको पाना चाहते

हैं, अपनी स्वरूप-स्थितिको पाना चाहते हैं, निःसङ्कल्पताको, निर्विकल्पताको प्राप्त करना चाहते हैं। ईश्वरका कोई भी नाम रख लो। चाहे खुदा कहो चाहे गॉड कहो, नामसे हमारा मतलब नहीं है, वस्तुसे मतलब है। जिस वस्तुको आप पाना चाहते हैं उसका अभ्यास करनेके अतिरिक्त साथ-साथ जो ध्यानमें चाहिए उस वस्तुके अतिरिक्त, उसके सिवाय जो कुछ है उसके प्रति राग-द्वेषकी न्यूनता होनी चाहिए। हमारे शब्द पर आप ध्यान देना। बिलकुल राग न रहे सो बात नहीं। राग रखो बच्चेसे और जो आपका नुकसान करता है उसके प्रति कभी-कभी क्रोध भी आ जाय तो, कोई बात नहीं। राग-द्वेषकी न्यूनता होनी चाहिए। वह बहुत हल्के, बहुत फुल्के, बहुत ऊपर-ऊपर होना चाहिए, भीतर-भीतर नहीं होना चाहिए। तो अभ्यास और वैराग्य दोनों मिलकर ध्यान सम्पन्न होता है। अभ्यास और वैराग्य, उसके दो अङ्ग हैं। अब कल आपको ध्यानकी और बात सुनावेंगे।

●

प्रवचन : 2

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

जितने बड़े-बड़े विद्वान् हुए उनका कहना है कि जो शब्द लोकव्यवहारमें जिस अर्थमें प्रचलित हो उसी अर्थमें उसका ग्रहण करना चाहिए। बहुत युक्ति लगाकर कहीं भीतरसे उसका अर्थ नया गढ़के नहीं निकालना चाहिए। नयी चीज गढ़नेमें खतरा रहता है, वह बिगड़ भी जाती है। तो, आँख बन्द करके बहुत डुबकी लगानेसे कभी-कभी कच्चा माल निकल आता है। देखो, दूध उफन क्यों गया? क्योंकि उसका ध्यान नहीं था। और, कोई आदमी तुम्हारे सामनेसे निकल गया तो, तुमने देखा क्यों नहीं ? कि हमारा ध्यान नहीं गया। तुम्हारे कपड़ेमें कालिख लगी है, अबतक तो तुम्हारा ध्यान ही नहीं गया था। तो, ध्यान शब्दको अपनेसे बहुत दूर न फेंक करके, यह समरस स्वामी और कुमारिल भट्ट दोनों वाक्यके व्याख्याता है। शब्दके व्याख्याता पाणिनि, पतञ्जलि हैं। और, प्रमाणके व्याख्याता गौतम हैं। वाक्यका अर्थ कैसे करना चाहिए यह बतानेवाले जैमिनी, समरस स्वामी, कुमारिल भट्ट, ठाकुरगुरु है। पुराने जमानेमें कौन-सा शब्द किस अर्थमें प्रयोग किया जाता था, यह पूछना हो तो उनसे पूछना पड़ता है। अब हम ध्यानकी बात करते हैं।

तो ध्यान तो यही है कि रुपया कैसे कमायें ? इसके लिये जब आप तन्मय होते हैं, किसी स्त्री या किसी पुरुषसे मिलना कैसे हो इसके लिये जब आप व्याकुल होते हैं तो बारम्बार-बारम्बार उसी वस्तुका ध्यान आता है। तो, ध्यानका प्रारम्भिकरूप आप यही समझें कि जैसे एक चित्रकार हाथमें तूलिका लेकर अपने बनाये हुए

चित्रको बारम्बार टच करके सुधारता है ऐसे मनसे किसी वस्तुको बार-बार टच करनेका नाम ध्यान है। यह टच माने 'त्वाच्'-प्रत्यय जैसे होता है, त्वच-त्वचा जिसे बोलते है न-माने छूना। तो, अपने मनसे किसी वस्तुको बार-बार छूना इसको ध्यान कहते हैं। हम भक्तिपक्षमें इसको ला रहे हैं। बार-बार ज़ब आपकी मनोवृत्ति उठती है तो एक ही वस्तुको टच करती है क्या ? यदि ऐसा है तो आपका ध्यान लग रहा है।

ध्यान कोई साँतवें आसमानसे नहीं लाना है, न पातालसे निकालना है। जब ईश्वरने आपको प्रकट किया, और जन्म-जन्मके संस्कारोंसे बना हुआ जो आपका अन्तःकरण है, उसमें एकाग्रताकी भूमि एक स्वाभाविक दी हुई है। पाँच भूमि होती हैं चित्तकी-1. मूढ़, 2. क्षिप्त, 3. विक्षिप्त, 4. एकाग्र और 5. निरुद्ध। यह पाँच भूमियाँ ईश्वरने स्वाभाविकरूपसे सबके अन्तःकरणमें दी हुई हैं। तो, यह एकाग्रता नामकी जो भूमि है वह आपके मनमें स्वाभाविक है। और आप किसी-न-किसी विषयमें जरूर एकाग्र हो जाते होंगे। खाते समय एकाग्र होते होंगे, स्त्री-पुरुषके मिलनके समय एकाग्र हो जाते होंगे, मित्र मिलने पर एकाग्र हो जाते होंगे, पैसा मिलने पर एकाग्र हो जाते होंगे। तो, एकाग्रताकी भूमि आपके जीवनमें चमत्कार दिखाती रहती है। अब उसी चमत्कारमें यदि आप सन्तुष्ट हैं, तो आपका नाम विषयी कोटिमें रखना पड़ेगा। आप हैं तो एकाग्र, परन्तु किसी विषयकी उपलब्धिसे मिलनेसे या किसीके मरनेसे या किसीके बिछुड़नेसे आप थोड़ी देरके लिये वृत्तिहीन हो जाते हैं, तो एकाग्र भूमिका उदय तो हुआ, परन्तु विषयकी प्राप्ति या विषयकी अप्राप्तिसे हुआ। इसलिए वह एकाग्रताकी भूमि विषयके सम्बन्धसे आपके हृदयमें उत्पन्न हुई तो उसका नाम ध्यान नहीं होगा।

एकाग्रता भूमि है और ध्यान योगका अङ्ग है। एकाग्रता स्वयं

मनमें समय-समय पर विषयकी प्राप्ति-अप्राप्तिसे दिखायी पड़ती है और ध्यान लगाना पड़ता है।

अच्छा, अब ध्यानकी हल्की-फुल्की बात पहले आपको सुनाते हैं। मैंने एकबार श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजसे पूछा-कि ध्यान किसका करें? बोले-'चाहे जिसका कर लो।' 'चाहे जिसका कर लो।' इतना कहनेके बाद उन्होंने पञ्चदशीका एक श्लोक बोल दिया-

येन केन प्रकारेण क्षुधामपनिनीषति।

(पञ्चदशी-तृप्तिदीपप्रकरणम् 9-15)

जब आदमीको भूख लगती है और सच्ची भूख लगती है तब उससे यह पूछें कि क्या खाओगे ? तो, वह कहे कि हमारे लिए खीर बनाओ। अच्छा ठहरो, दूध लाते हैं, चावल लाते हैं, घी लाते हैं, आग जलाते हैं, पकाते हैं। जब खीर पक जायेगी, ठण्डी हो जायेगी, तब उसमें स्वाद आयेगा तब खिलावेंगे। बोले-कि इतनी देर इन्तजार नहीं कर सकते। हमको तो अभी जो भूख लगी है, वह मिटानेके लिए, तत्कालकी भूख मिटानेके लिए खानेको चाहिए। तब तो घरमें बासी रोटी पड़ी है, तो बोले वही ले आओ। तात्कालिक क्षुधाकी शान्तिके लिए, माने जिस समय भूख बहुत जोरसे लगी है उसको मिटानेके लिए थोड़ा-सा प्राणायाम कर लीजिये। भूख माने तात्कालिक विक्षेप हो रहा है। यह चाहिए, यह चाहिए-यह चाहिए-कामकी वृत्ति आपके मनमें उठती हो तो कैलाशके शिखर पर बैठे हुए त्रिशूलधारी, चन्द्रशेखर, जटाजूटधारी, कर्पूरगौर, शङ्कर भगवान्का ध्यान कीजिये। तत्काल कामकी निवृत्ति हो जायेगी। यह तात्कालिक है हो!

हिरण्यकश्यपु प्रह्लादको मारना चाहता है और तड़ा-तड़ खम्भेमें आवाज हुई और नृसिंह भगवान् प्रकट हो गये हिरण्यकश्यपुको मारनेके लिये! फाड़कर उसकी अँतड़ीको पहन

लिया अपने गलेमें, और वो क्रोधसे भभक रहे हैं। आप नृसिंह भगवान्‌का ध्यान कीजिये, कामकी निवृत्ति हो जायेगी। यह सब शास्त्रमें बताया हुआ है।

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारितैः
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं वा वृथा जल्पसि।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते।।

(भर्तृहरि)

अरे! ओ काम! तू क्या अपना धनुष टङ्कार रहा है ?

हमारा चित्त चन्द्रचूडके चरणारविन्दका ध्यान कर रहा है। यहाँ तेरी गति कहाँ है ? तो, यह है ध्यानकी युक्ति–तात्कालिक कामकी निवृत्ति, तात्कालिक क्रोधकी निवृत्तिके लिये। यदि आपके मनमें दुश्मनको मारनेकी इच्छा आवे, या बहुत पैसा इकट्ठा करनेकी इच्छा आवे, तो मृत्युका चिन्तन करना। और, देखना कैसा मजा आता है ?

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।

यह नृसिंह भगवान्‌का महाउग्र मन्त्र है। यह आपको उदाहरण बताया। इसमें होता क्या है ? इसमें 'वृत्त्यन्तर' होता है। एक वृत्ति अपने अन्तःकरणमें काम कर रही थी, उसकी जगह दूसरी वृत्ति जाग्रत् हो गयी।

अब देखो, गौरी–शङ्करका ध्यान करनेसे हमेशाके लिये कामकी निवृत्ति नहीं हो जायेगी! नृसिंह भगवान्‌का तात्कालिक ध्यान करनेसे हमेशाके लिये कामकी निवृत्ति नहीं हो जायेगी। वह तो उस समयके लिये हो जायेगी। थोड़ा–सा साँस रोक लें तब भी कामकी निवृत्ति हो जायेगी।

ध्यानका विज्ञान बताना है, तो उसकी भूमिका आपको

बताते हैं कि ध्यानकी प्रत्येक क्रिया हमारे शरीर पर अपना प्रभाव डालती है। ध्यानके द्वारा जीवनका निर्माण होता है। परन्तु कोई कहे कि हम पहले ध्यान ही करेंगे तो साधनकी प्रक्रिया यह है कि हम बाहरसे भीतरकी ओर जायँ। अब बड़े समर्थ-सत्सङ्गी साधक जो होते हैं, शुद्धान्तःकरण साधक जो होते हैं वे भीतरसे बाहर आ सकते हैं। लेकिन साधनका जो प्रथम चरण है वह बाहरसे भीतरकी ओर होता है। आजकल हमारे बाबू लोग जब किसी साधनकी बहुत तारीफ सुनते हैं, कि यह सबसे बढ़िया है, सबसे श्रेष्ठ है, सबसे महत्त्वपूर्ण है तो कहते हैं कि आओ, हम यही करेंगे, हम छोटा-मोटा साधन कैसे करेंगे ?

देखो, साधन कि एक तुलसीदल आपके हाथमें आ जाय और मनमें आ जाय कि यह भगवान्‌को भोग लगानेके काममें आता है। शालिग्रामकी शिला आपके मनमें आ गयी वह काला-काला शालिग्राम, आपका मन डूब जायेगा उसमें! पूर्ण विश्वमें जितने सम्प्रदाय हुए हैं, और उन्होंने ध्यानकी जो पद्धति बतायी है वह कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसीके जीवनमें बिलकुल फिट् बैठती है। और, एकदम ठीक होती है। देखना यह पड़ता है कि किस व्यक्तिके लिये कौन-सी साधना ठीक बैठती है। साधना कोई गलत नहीं है। साधना सब-की-सब ठीक होती है।

अब आपको पहले एक हल्का-फुल्का क्रम बताते हैं। क्योंकि बाहरसे साधना भीतर प्रवेश करती है। तो, पहली बात यह है कि आप झूठ बोलकर, हिंसा करके, चोरी करके, ब्रह्मचर्यका भङ्ग करके और अपने आसनके नीचे लाख, दो लाख, दस लाख रुपयेकी नोट बिछाकर उसके ऊपर बैठेंगे कि अब हम ध्यान करने बैठते हैं। तो, वह ध्यान नहीं लगेगा। झूठ बोलनेवालेको भी डर होगा, हिंसा करनेवालोंको भी डर होगा, चोरी करनेवालेको भी डर होगा कि

सुराग न लग जाय, ब्रह्मचर्य भङ्ग करनेवालेके मनमें शक्ति नहीं होती। उसका मन सोवेगा, शिथिल हो जायेगा। मनको सुस्त करनेके लिए ध्यान नहीं है। मनको जगाकर लक्ष्यमें लगानेका नाम ध्यान है। और परिग्रहमें-अन्य वस्तुपर निर्भरता रखकर, पैसे पर निर्भरता रखकर ध्यान नहीं लगता है। चार नौकर चारों ओर हाथ जोड़कर खड़े हैं कि महाराजका कब इशारा होता है और महाराज ध्यानमें बैठे हैं। ऐसे ध्यान नहीं लग सकता; क्योंकि वह चार नौकरोंका जो सहारा है वह तो नौकरोंका सहारा है!

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।। 6.10

योगी एकान्तमें बैठे। और साथ 'एकाकी', तो 'एकाकी' शब्दका अर्थ है 'असहाय'। देखो, आपको उदाहरण देकर समझाते हैं। एकने कहा हमको ठीक नौ बजकर पचास मिनट पर ध्यानसे जगा देना, दुकान जाना है। अब वे जगानेवाले पर भरोसा करके जब ध्यान लगाने बैठेंगे तो, वृत्तिमें एक मिश्रण हो जायेगा। ध्यानमें ध्येय मात्रका ही, माने जिसका हम ध्यान कर रहे हैं, केवल उसका सहारा होना चाहिए। जिसकी चोरी करेंगे, जिसको तकलीफ पहुँचावेंगे, जिससे झूठ बोलेंगे उनसे डर रहेगा और परिग्रहमें परिग्रह पर निर्भरता रहेगी, और ब्रह्मचर्य भङ्गमें शिथिलता होगी। इसलिए, ध्यानमें आप जो सामर्थ्य जाग्रत् करना चाहते हैं तो इसमें नपुंसकता मत लाइये। सामर्थ्यका अर्थ क्या होता है ? अरे, भाई यह तो शान्त हो जाना है, अपने आपमें सो जाना है....यह भी एक सामर्थ्य है कि आप जब चाहें तब सो जायँ, जब चाहें तब सबको छोड़कर अपने स्वरूपमें बैठ जायँ। यह जो विश्राम करना है, आराम करना है, जो अपने स्वरूपमें बैठना है यह भी यदि ध्यानमें शक्ति नहीं होगी, तो नहीं होगा।

इसके लिए भी शक्ति चाहिए। तो, यह ध्यानकी भूमिका समझो, दूसरोंके साथ व्यवहार करना।

अब आओ और नजदीक चलें! अब विशेष बात आपको बताते है। विशेष बात यह है कि आप पढ़ते क्या हैं ? ध्यान विषयक ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते हैं कि नहीं ? जप और पाठमें थोड़ा फर्क है। ज्ञानकी वृद्धिमें पाठ ज्यादा सहायक होता है यदि समझकर किया जाय। और, ध्यान लगानेमें जप अधिक सहायक होता है, यदि मन्त्रके अर्थका चिन्तन करते हुए जप किया जाय। क्योंकि जैसे जप करेंगे राम...राम... राम...राम...तो प्रत्येक 'राम'में रामकी मूर्ति आपके सम्मुख आवेगी। और, यदि आप वाल्मीकि रामायणका पाठ करेंगे तो जो लोग धर्मके लिए पाठ करते हैं उनकी बात हम इस प्रसङ्गमें नहीं लेते है! वह तो वाल्मीकि- रामायणका पाठ करनेसे एक धर्म होगा। और धर्म अन्तःकरणमें एक अपूर्व उत्पन्न करेगा। जो चीज अबतक नहीं थी, वह चीज अन्तःकरणमें पैदा होगी और उस शक्तिका प्रयोग आप चाहे जैसे कर सकते हैं। धर्मसे अपूर्वकी उत्पत्ति होती है। और यदि वाल्मीकीय रामायणका पाठ करते समय आप श्रीरामचन्द्रके गुणानुवादका चिन्तन करेंगे कि इसमें ये गुण हैं, यह गुण है तो गुणानुवादका चिन्तन करनेसे रामचन्द्रमें प्रीति होगी और रामचन्द्रका ध्यान लगानेमें मदद मिलेगी। और, रामचन्द्रके स्वरूपका, स्वभावका ज्ञान प्राप्त होगा। तो, जप जो है वह मनको बारम्बार-बारम्बार एक स्थान पर ले जाता है। इसीसे स्वाध्याय शब्दके दो अर्थ करते हैं। 'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः' और स्वाध्याय माने अपने हिस्सेके वेदका अध्ययन। तो आप पढ़ते क्या है ? इसका ध्यान रखें।

एक और बात यह है कि आपके घरमें बढ़िया चीज बनती है तो सबसे पहले उसके हकदार आप होते हैं कि आप अपने मनको

सम्हालके उसको दूसरोंके काममें लाने देते हैं ? बढ़िया कपड़ा आता है तो अपनी ननदको, अपनी भाभीको, अपने भाईको पहले देते हैं कि पहले अपने लिये छाँट लेते हैं। 'तपस्'का अर्थ होता है कि थोड़ा कष्ट सहनेका, अपने मनको दबानेका अभ्यास भी अपने जीवनमें होना चाहिए। यह नहीं कि जब जो मनमें आया बोल दिया या कर दिया। खानेमें भी जीभपर स्वाद आया इसलिए ज्यादा खा गये। और, गाना सुननेका स्वाद आया तो चार-पाँच बजे सुबह तक सुनते रहे और फिर छः बजे स्नान करके फिर ध्यान करनेके लिए बैठे! ऐसे ध्यान लगेगा ? वह तो कर्णरसमें फँस गये, जीभरसमें फँस गये। इसके लिए जीभको, कानको काबूमें रखना पड़ता है। और जितनेसे अपना निर्वाह हो जाय उसमें सन्तोष करना चाहिए। और साथ-साथ कर्मके फलको अपनी ओर न लाकर ईश्वरकी ओर भेजनेका प्रयास करना चाहिए।

'ईश्वरप्रणिधान' शब्दके दो अर्थ किये हैं। एक तो ईश्वरका चिन्तन और एक ईश्वरके प्रति सर्वकर्मका समर्पण। अच्छा, अब देखो, ध्यानकी ओर आप बढ़ रहे हैं तो थोड़ा इस बात पर भी ख्याल कीजिये। पवित्रताका भाव चित्तमें होना चाहिए। स्थान पवित्र हो, वहाँका वातावरण इतना बिगड़ा हुआ न हो कि साँस खींचनेमें तकलीफ हो। कहीं-कहीं इतना गन्दा वातावरण होता है आर्द्रता इतनी बढ़ जाती है। मुम्बईके वातावरणमें भी आद्रता बहुत बढ़ जाती है, कभी-कभी तो ९० प्रतिशत हो जाती है। तो इससे श्वास लेनेमें तकलीफ होती है और श्वाँस लेनेमें जोर पड़ता है। इसके लिये ध्यानका स्थान, वातावरण पवित्र होना चाहिए। और, समय बिना उपद्रवका होना चाहिए। प्रातःकाल हो, ब्रह्मवेला हो तो बहुत अच्छा और न मिले ब्रह्मवेला तो जब भी समय मिले तब कर लेना। कालका लोप हो जाय तो हो जाय, कर्मका लोप नहीं

होना चाहिए। जैसे, सन्ध्या-वन्दन यदि सूर्योदयके समय नहीं करते हैं तो दस बजे कर लीजिये, परन्तु कर्मका लोप नहीं होना चाहिए। समय बदल गया, तो बदल गया, परन्तु कर्मका लोप नहीं होना चाहिए। और, असलमें कर्ममें भाव बननेकी बहुत जरूरत होती है। तो, आप यदि राजस्थानमें हैं और बालू ही बालू है वहाँ, पानी न मिलता हो तो सूर्यको अर्घ्य आप बालू हाथमें उठाकर दीजिये। राम! राम!! यहाँ पानी नहीं है तो, बालूसे अर्घ्य दीजिये क्योंकि बालूमें पानी जरूर है यदि न होता तो कण कहाँसे होता ? कण बँधे हुए हैं इसलिए पानी है। इसलिए जहाँ साक्षात् जलकी प्राप्ति न हो वहाँ बालू भी उठाकर अर्घ्य दीजिये कि इसमें जो जल है वह सूर्यको मिले। इससे, प्रकाश देनेवाले आँखके गुरु सूर्यका आदर होगा। आपकी बुद्धिका कोई गुरु है कि नहीं सो तो भगवान् जाने, लेकिन आँखोंका गुरु सूर्य है। आँखका अधिष्ठातृ देवता है सूर्य। तो प्रकाश देनेवालेका आदर करना चाहिए। अहंभावसे कोई साधना नहीं होती।

तो, स्थान पवित्र हो, समय पवित्र हो, और अपना शरीर भी पवित्र हो, कपड़े पवित्र हों और पवित्र कर्म भी कर लें। थोड़ी माला फेर लें, पूजा कर लें, तुलसीदल शालिग्रामको चढ़ा दें, बेलपत्र शिवजीको चढ़ा दें, यह सब एक ही है। यह नामका झगड़ा झूठा है और काला है कि गोरा यह झगड़ा बिलकुल झूठा है। पश्चिम मुखसे ईश्वरको नमस्कार करते हैं कि पूर्व मुखसे ईश्वरको नमस्कार करते हैं, कि ऊपर हाथ करके नमस्कार करते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। नमस्कार ईश्वरको करना चाहिए। अपनी बुद्धिमें अहंभाव मिटाकर पूर्णताके समक्ष अपने आपको समर्पित करना चाहिए।

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज केवल तीन-या चार आसन

ज्यादा करके बताते थे। ध्यानके लिये सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन और वीरासन। इन चारोंमें-से जो आपको अनुकूल पड़ता हो उससे बैठना चाहिए। आसनमें यह जो घुटने हैं वह सम हो जाने चाहिए। घुटनेको संस्कृत भाषामें जानु बोलते हैं। अब भरी सभामें प्रदर्शन करें तो अच्छा नहीं लगेगा आप लोगोंको, क्योंकि आजकल जो योगीलोग हैं वह नुमाइश तो करते ही हैं...। स्वस्तिकासन बहुत सरल और सुगम है, इससे शरीरमें कोई दर्द कोई पीड़ा नहीं होगी। यह कुर्सी पर बैठनेवाले जो बाबूजी लोग हैं, जिनको पाँव लटकाकर बैठनेकी आदत है वह कुर्सी पर बैठकर ही कर सकते हैं। लेकिन हम एक दूसरी बात करने जा रहे हैं। हम अपनी बीमारीकी बात नहीं करते हैं, और न हमको कोई दर्द होता है! हम चार-छः घण्टे किसी एक आसनपर बैठे रह सकते हैं। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजने बताया था कि एक आसनसे तीन घण्टे तक बैठना, अगर किसीका यह अभ्यास हो जाय कि शरीर न हिले। देखो, नाकमें मक्खी घुस रही है तो उसको उड़ानेके लिए हाथ उठा न! तो हाथको भी जगह पर बैठाना पड़ता है। तो बाँया हाथ नीचे और दाहिना हाथ ऊपर या दोनों घुटनों पर दोनों हाथ। तो, शरीर हिले नहीं, तीन घण्टे तक। यह देखो, बाहरसे भीतर जानेकी बात है। क्योंकि मन जब हिलता है, तब शरीर हिलता है। तो, आप कहते हो कि हम मनका हिलना बन्द कर दें तो, शरीरका हिलना बन्द हो जायेगा। तो, मन भीतर है और शरीर बाहर है। आपको साधन करके बाहरसे भीतर जाना है। यदि आप पहले यह चाहोगे कि मन ही स्थिर हो जाय तब शरीर स्थिर करेंगे तो न मन स्थिर होगा, न शरीर स्थिर होगा। इसलिए शरीरकी जो स्थिरता है, वह ध्यानके लिये अपेक्षित होती है। नियम पालन करनेवाले मनुष्यका मन शक्तिशाली हो जाता है। और जो किसी नियमका पालन नहीं करता उसका मन कमजोर

हो जाता है। वह किसी चीज पर अपनेको टिका नहीं सकता। कहीं टिका ही नहीं सकता, अपने आपको।

स्वेच्छया स्वीकृतो बन्धो निर्बन्धायोपकल्पते।

अपनी इच्छासे समझ-बूझकर यदि अपने जीवनमें कोई बन्धन, कोई नियम कोई मर्यादा स्वीकार की जाय तो मनुष्य बन्धन से मुक्त हो जाता है।

परेच्छयाकृतोबन्धो बन्ध इत्यभिधीयते।

जब कोई दूसरा आदमी डण्डा लेकर हमसे नियमका पालन करवाता है, तब उसमें तबियत उठ जाती है। स्वेच्छासे आप स्वीकार कीजिये, बिलकुल स्वतन्त्रतासे कि हम इस नियमका पालन करेंगे। इसके लिए गुरुके सामने, ईश्वरके सामने प्रतिज्ञा कर लीजिये कि हम इस नियमका पालन करेंगे। और उस नियमके पालनमें कभी कोई तकलीफ होने लगे तो उसको सह लीजिये।

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज बताया करते थे कि आजकल तपस्याका जितना ह्रास हुआ है, उतना सृष्टिमें कभी नहीं हुआ था। क्योंकि बनी बनायी रोटी यदि खानेको मिल जाय, तो चाहे वह किसीकी भी बनायी हुई हो, उसको खा लेते हैं। अच्छा, अब चौकेमें बनाना पड़े तो ? बनानेके लिये ब्राह्मणकी जरूरत पड़े तो ? अपने हाथसे बनाना पड़े तो ? तो, रोटी बनानेके लिए थोड़ा अपनेको कष्ट उठाना पड़ेगा। यही कष्ट आपकी तपस्या बन जायेगा और आपके मनोबलको बढ़ावेगा। जब आप तकलीफ सहकर किसी नियमका पालन करेंगे तो आपके मनमें जो तकलीफ सहनेकी शक्ति आवेगी उससे मनोबल और आत्मबलकी वृद्धि होगी।

तो, स्थान पवित्र हो, समय पवित्र हो, वस्त्र पवित्र हों, शरीर पवित्र हो और पवित्र आसन पर, आसनके लिये मन्त्र भी पढ़ते हैं। पृथिवी पर बैठते हैं तो पृथिवी देवताको नमस्कार करते

हैं। हमलोग बचपनमें सबेरे उठते थे तो खाट परसे जब पाँव नीचे धरती पर रखने होते तो श्लोक बोलकर फिर पाँव धरती पर रखते थे। यह भूदेवीका रूप है। भूदेवी विष्णु-पत्नी हैं, पृथिवी हमारी माता है। जब अनजान थे, तब अनजान थे, अब जान-बूझकरके पाँव रखते हैं तो पहले क्षमा माँग लेते हैं-

पृथ्वि त्वया धृता लोका देवित्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्।।
समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

यह बचपनमें हम लोगोंको सिखा दिया गया था। इसमें यज्ञोपवीतकी अपेक्षा नहीं थी। बचपनसे ही सिखा दिया था कि ऐसे उठना, ऐसे पाँव रखना, ऐसे बैठना; क्योंकि जीवनका एक ख्याल था कि हमारा बच्चा सदाचारी बने, धर्मात्मा बने, भगवान्‌का भक्त बने ऐसा हमारे माँ-बाप, दादा, परदादा सबको इस बातका ख्याल था कि हमारे बच्चेका जीवन किस प्रकारसे बने। तो, क्रिया भी पवित्र कर लेनी चाहिए। जल अपने ऊपर डालकर पवित्र करनेकी पद्धति है। अब लोगोंका सूट ही बिगड़ जाय तो, फिर पवित्र कैसे करें ? इसमें सूट भी नहीं चाहिए क्योंकि सिले हुए कपड़ेमें पवित्रताका उतना भाव नहीं माना जाता है। वे ऐसे बन्ध जाते है, ऐसे बन्ध जाते हैं कि उनके भीतरकी मैल निकले नहीं। आजकल तो धोते ही मैलसे है! यह धोनेकी जो क्रिया होती है उसमें साबुनोंके बारेमें आप लोगोंको ज्यादा मालूम होगा। उनकी चर्चा छोड़ दें।

हमने तो सुना है कि धोबी लोग भी गधेकी लीदसे कपड़ा धोते हैं। ऐसा हमने सुना है। और हमारे मद्रासी लोग जो हैं, वहाँके आयंगर, अय्यर ब्राह्मण लोग हैं, वे हम लोगोंको, उत्तरी ब्राह्मणोंको

इसलिए बुरा मानते हैं कि हमलोग धोबीका धुला हुआ कपड़ा पहनते हैं। वे कहते हैं कि ये धोबी लोग कपड़ा धोनेके बाद जहाँ कपड़ा फैलाते हैं, वहाँ मल-मूत्र ही मल-मूत्र रहता है। हम अपने बचपनकी बात आपको सुनाते हैं जब धोबीके घरसे कपड़ा धुलकर तो आता था, परन्तु हमारे घरमें फिर उसको धोकर तब उसको पहनते थे। तो, वस्त्रमें भी पवित्रताका भाव होता है। स्नानसे पवित्रताका भाव आता है। स्नानमें यदि जलसे स्नान न कर सके तो मन्त्रसे स्नान होता है, सूर्यकी किरणोंसे स्नान होता है, भस्मसे स्नान होता है, अपने इष्टदेवताके चरणामृतके ध्यानसे स्नान होता है, मानसिक गङ्गास्नान, मानसिक यमुनास्नान होता है। अब यह होता है कि आप अपना अहङ्कार किसीके सामने झुकावेंगे नहीं, सब कुछ जानकारी आपको पहलेसे ही है। तो, यह जो अन्तःकरणके मैलको धोनेकी प्रक्रिया है, उसको आप ठीक-ठीक नहीं समझ सकेंगे। और जब पवित्रतासे प्रेम करेंगे आप, तो मनको भी पवित्र बनानेका उत्साह आपके मनमें होगा। पवित्रतासे जब प्रेम करेंगे कि हमारा भोजन पवित्र हो, हमारा कर्म पवित्र हो, हमारा वस्त्र पवित्र हो तब अनजानमें ही आपके मनमें यह इच्छा होगी कि हमारा मन भी पवित्र हो जाय। गन्दी वस्तुको हमारे मनने स्पर्श क्यों कर लिया ? जब पवित्रतासे प्रेम करेंगे तब मनको पवित्र करनेकी इच्छा होगी।

कल आपको सुना रहा था कि दुनियाकी बहुत सारी बातें हमारे मनमें बाहरसे ही डाली हुई हैं। इसलिए उनमें छँटायी करके कि क्या उत्तम है और क्या दूषित है, क्या पवित्र है, क्या अपवित्र है इसका विवेक हम कर सकते हैं। क्योंकि सारी चीजें बाहरसे भरी गयी हैं। एक हमारे जाने हुए मारवाड़ी सज्जन थे, कलकत्तेमें रहते थे। बात चालीस-पचास वर्ष पहलेकी है। दस लाख रुपया जबतक उनके पास था, तबतक वे अपने घरमें ब्राह्मणका या घरकी स्त्रीका

बनाया हुआ, पवित्र बर्तनमें, चौकेमें बैठकर खाते थे। बादमें रुपया जब बढ़ा, पचास लाख हो गया, तो क्लबमें अपने साथियोंके साथ जाने लगे, वहाँ खाते नहीं थे कुछ, तो लोगोंने कहा कि घरसे लाकर खाया करो क्या हर्ज है ? तो, घरसे लाकर खाने लगे। तो, बोले बाबा बर्तन तो यहाँका ले लो, अपने सामने धुलवा दो। फिर बोले–आज यह चीज यहाँ बहुत बढ़िया है, जरा चखकर देखो तो ? कोई दो–तीन वर्षके अन्दर फिर घरसे न खाना जाता था, न बर्तन साफ होता था। फिर वहीं खाने–पीने लग गये। और, उसके बाद और पैसा बढ़ा तो पीना शुरू कर दिया। और फिर और हुआ तो और–और काम शुरू कर दिया। 'कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः' पापकी चर्चा करनेसे भी मन गन्दा होता है। फिर एकाएक पैसे चले गये। थोड़े बहुत बचे थे, तो उन्होंने एक आश्रममें अर्पित किया और फिर पुराने संस्कार जग उठे। फिर अन्तिम जीवन बड़ी पवित्रताका व्यतीत किया।

तो, मनुष्यको धीरे–धीरे जब गन्दी जगहमें बैठनेकी आदत पड़ जाती है न! 'यथा हि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्र तत्रोपविश्यते।' आदमी जब गन्दा कपड़ा पहनने लगता है तो चाहे कूड़े पर भी बैठ जाता है। 'एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति'–जब मनुष्य अपने सदाचारसे च्युत हो जाता है, तो बाकि जो बचा–खुचा सदाचार होता है, वह भी चला जाता है। इसलिए पहलेसे ही इसके सम्बन्धमें सावधान होना चाहिए। और, जब आप मनको पवित्र करनेका सङ्कल्प करेंगे तो, सबसे पवित्रतम जो आत्मा है, असङ्ग अपना स्वरूप। यह विवेकका मार्ग है कि सबसे भीतर अपना आत्मा पवित्र है, सबसे परे। और, विश्वासका मार्ग है कि सबसे परे परमेश्वर, भगवान् पवित्र हैं। सबसे परम पवित्र कौन है ? 'पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्'–बाहर सबसे पवित्र भगवान् हैं और भीतर सबसे पवित्र आत्मा है। और, शङ्कराचार्य

कहते हैं कि दोनोंका परमार्थ स्वरूप एक है। यह दोनोंसे अलग है। आत्माका असङ्ग होना, पवित्र होना यह दूसरी बात है और भगवान्का असङ्ग होना, पवित्र होना, कृपालु होना यह दूसरी बात है। तो या तो आप अपने मनको तब पवित्र रख सकते हैं जब आत्मामें स्थित रहें। या तो आप अपने मनको तब पवित्र रख सकते हैं, जब भगवदाकार हो। या अपने मनको तब पवित्र कर सकते हैं जब दोनोंकी एकताका बोध होनेसे सम्पूर्ण मलोंका मूल अज्ञान जल जाय। ये तीन ही अवस्था हो सकती है। तो यह ध्यान आपको अन्तर्मुख होनेका भी सामर्थ्य देता है, भगवदाकार होनेका भी सामर्थ्य देता है और अविद्याकी निवृत्तिका भी सामर्थ्य देता है। इसलिए, साधनमें ध्यान बड़ा शक्तिशाली है। और, इसके लिये पवित्रताके प्रति प्रेम आवश्यक है।

●

प्रवचन : 3

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

पूर्वाम्नायो भक्तिः। पूर्वाम्नायो धर्मः।

सूर्योदय होता है, सन्ध्या-वन्दन करते हैं। यह पूर्वाम्नाय है, धर्म है। और दक्षिणाम्नाय शरणागति है। और पश्चिमाम्नाय प्रत्यक्-चैतन्यमें, सबसे पीछे बैठना माने, असङ्ग द्रष्टा-स्वरूपमें बैठना। और उत्तराम्नाय आत्मा और ब्रह्मका अभेद है। तो ये चार आम्नाय शङ्कराचार्यके चार मठ है। पूर्वाम्नाय गोवर्धनमठ (पुरी), दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरीमठ, पश्चिमाम्नाय शारदामठ (द्वारका), और उत्तराम्नाय ज्योर्तिमठ (बद्रीनाथ)।

यह जो ध्यानकी प्रक्रिया है इसमें जो शक्तियोंका निम्न प्रवाह है माने हमारे शरीरमें जो शक्तियाँ हैं, वे सब-की-सब नीचेकी ओर दौड़ती हैं तो अभ्यास करके इनके प्रवाहको ऊपर करना पड़ता है। ध्यानकी पद्धति यह है कि हम अपनी मनोवृत्तियोंको नीचे गिरनेसे बचावें और ऊपरकी ओर ले जायँ।

ज्ञानमें कहींसे हटाने या कहीं सटानेकी शक्ति नहीं है। वह तो निर्गुण है और अशक्त ही है एक तरहसे। जो चीज जैसी होती है उसको वैसा मालूम करा देना, माने खम्भेको खम्भा मालूम करा देना यह ज्ञानका काम है। सीमेन्टके खम्भेको लोहेका बना देना यह ज्ञानका काम नहीं है। तो, आत्मा और ब्रह्मकी एकता जो स्वयंसिद्ध है, स्वतःसिद्ध है, पूर्ण है उसको मालूम करा देना ज्ञानका काम है।

लेकिन; जो मनुष्यकी मनोवृत्ति नीचे गिर गयी है, नीचे गिरना माने कुएँमें गिरना नहीं। नीचे गिरना माने बाह्य विषयोन्मुख हो जाना। सृष्टिके क्रममें सबसे नीचे जड़ता है। तो, मनोवृत्ति परमात्माके साथ न मिलकर जड़के साथ मिल गयी यही उसका गिरना है। इसीमें मृत्युका भय है, इसीमें द्वेष है, इसीमें राग है, इसीमें अस्मिता है, इसीमें अविद्या है। अविद्या उसको कहते हैं जो आत्माको जड़से एक कर दे। और, विद्या उसको कहते है, जो जड़को चेतनसे एक कर दे। ऐसा मिला दे, ऐसा मिला दे कि जड़की पृथक् सत्ता ही न रहे। तो दोनोंकी दिशा अलग-अलग है।

तो ध्यानसे जीवनमें शक्ति आती है। अब जिसको शक्ति आ गयी है, उससे भी ज्यादा फायदा नहीं उठाना है, इसकी भी आवश्यकता है। जैसे हम किसीके सामने बैठें, वह हमको देखे और हमारा ध्यान लग जाय। या हमारे सिरपर हाथ रखे और ध्यान लग जाय तो आपका जीवन इतना पराधीन हो जायेगा कि आप बार-बार यही चाहेंगे कि कोई दूसरा ही हमारा ध्यान लगा दे, स्वयं ध्यान लगानेकी शक्तिका जागरण आपके चित्तमें नहीं होगा। तो इसमें भी पराधीनता नहीं चाहिए। जो लोग पराधीन हो जाते हैं, जैसे कि मेश्मराईज होनेका अभ्यास जिनको हो जाता है, या हिप्नोटाईज होनेका अभ्यास जिनको हो जाता है उनकी आध्यात्मिक जगत्में कोई उन्नति नहीं होती है। यह तो स्वयं अपनी ही शक्तिको अपने ही सङ्कल्पसे जाग्रत् करनेका मार्ग है।

मैंने एकबार स्वामी योगानन्दजीसे कहा कि यह तो नहीं होता है। तो बोले-'क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ'-अर्जुन, नपुंसक मत बनो!

अब ध्यानकी कुछ थोड़ी-सी बात आपको सुनाते हैं। एक तो जब ध्यान करने बैठें तो प्रयत्नशैथिल्य होना आवश्यक है।

प्रयत्नशैथिल्य किसको कहते हैं ? कि अब हमको कोई काम नहीं करना है। यदि आपके मनमें पहलेसे यह सङ्कल्प है कि दस बजे हमको कचहरी पहुँचना है तो वह सङ्कल्प भीतर रहेगा और ध्यान लगानेका सङ्कल्प बाहर रह जायेगा। और, आपका शरीर स्थिर नहीं होगा, मन स्थिर नहीं होगा। भले आप नींदको भी ध्यान मान लें या तात्कालिक शान्तिको ही ध्यान मान लें वह दूसरी बात है। बल्कि ध्यान करते समय प्रभुसे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभु! सबकुछ छोड़कर अब आपके चरणोंको पकड़ रहे हैं। हम सबकुछ छोड़कर अपनी आत्मामें स्थित हो रहे हैं। और अब हम सृष्टिमें कभी न आवें तो यह आपकी बड़ी कृपा होगी। आप अपने चरणोंसे अलग मत करना, अब हम प्रत्यक्चैतन्यसे पृथक् कभी उठें ही नहीं। ऐसा सङ्कल्प करके आप बैठिये ध्यानमें, भले उठना पड़े; परन्तु उठना पड़े, हम उठना चाहते नहीं। तब देखो ध्यानका मजा आता है।

इसमें देखो, वैराग्यकी पूर्णता है। अब हमको दुनियामें आनेकी जरूरत नहीं है। हमें अपने इष्टदेवमें ही बैठना है। और फिर अभ्यास करो। और बिना वैराग्यके अभ्यास करोगे तो, सात्त्विक सुखकी प्राप्ति तो अभ्याससे होती है, जैसे विद्या पढ़नी पड़ती है और अविद्या स्वयं रहती है यह तो आप जानते हैं। मूर्खता रहती है और ज्ञानकी शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। जो चाहे सो मुँहमें डाल ले वह बच्चेका काम होता है, परन्तु रसोई पकाना सीखना पड़ता है। तो ये जो लोग बच्चोंको कहते हैं कि सहजभावसे रहो, जो मनमें आवे सो कर लो। लड़कीको कह दिया कि तेरे मनमें जो आवे सो कर...बच्चेको कह दिया कि तेरे मनमें जो आवे सो कर। ऐसे ही बच्चे साधकको, जो साधक अभी बच्चे हैं, शुरू-शुरूमें आये हैं, उनको कोई आसन नहीं बताना, कोई मन्त्र नहीं बताना, कोई ध्यान नहीं बताना और कह देना कि

जो मनमें आवे सो कर! यह उनके उत्थानका मार्ग नहीं है। सात्त्विक सुखकी प्राप्ति अभ्याससे होती है।

अभ्यासाद् रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं आत्मबुद्धिप्रसादजम्।।

(भीष्मपर्व 40.36-37)

भगवती गीता कहती है कि एक तो मन स्वाभाविक कहीं रम जाता है और एक अभ्यास करके रमाना पड़ता है। तो राममें, कृष्णमें, नारायणमें, समाधिमें मनको अभ्यास करके रमाना पड़ता है। और, संसारके विषयोंमें मन अपने आप रम जाता है। तो, तमोगुणी और रजोगुणी सुखमें मन अपने आप रम जाता है और सत्त्वगुणी सुखमें रमनेके लिए अभ्यास करना पड़ता है-

अभ्यासाद् रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।

अभ्यास माने 'दोहराना'। व्याकरणमें भी अभ्यास माने दोहराना ही होता है। 'भूव् भूव्' इसको व्याकरणमें अभ्यास बोलते है। यदि आप स्वयं प्रयत्नपूर्वक अभ्यास नहीं करेंगे तो, आपको नींद, प्रमाद, आलस्य अच्छा लगेगा। और, यदि स्वयं अभ्यास करके अपने मनको सत्त्वगुणी नहीं बनावेंगे तो लोभ, प्रवृत्ति, कर्मारम्भ, अशान्ति, स्पृहा ये अच्छे लगेंगे। और यदि आप प्रयास करके, अभ्यास करके अपने मनको सत्त्वगुणी बनाओगे तो अभ्यासका तो अर्थ ही है कि जैसी आदत स्वाभाविक जड़तामें-से निकली है, उसको बदलकर चेतनतामें ले जाना। तो, जड़ताकी ओर राग-द्वेष दोनों छोड़ना पड़ेगा।

वैराग्य माने त्याग नहीं हो! वैराग्य माने द्वेष नहीं, वैराग्य माने घृणा नहीं। घृणा करोगे तो वह चीज तुम्हारे मनमें और बैठ जायेगी। द्वेष करोगे तो वह चीज और मनमें प्रवेश करेगी। त्याग करोगे तो, उसका अभाव खटकने लगेगा। वैराग्य माने राग और

रागका साथी द्वेष, एक शब्दका दो अर्थ होता है क्योंकि जब दोनों राम-लक्ष्मण एक साथ रहते हैं तो, एकका नाम लेनेसे दोनोंका बोध हो जाता है। वैसे ही वैराग्यमें जो राग है उसका अर्थ द्वेष है। संसारमें कहीं राग-द्वेष न होवें और अपने स्वरूपमें, अपने इष्टदेवमें बैठनेका अभ्यास करें। उसको बार-बार दोहरावे और ऐसे न आवे तो अभ्यासके लिए आलम्बन भी होता है। उसमें हँसिया-हथौड़ा आलम्बन नहीं होता है। उसमें भगवान्‌का नाम आलम्बन होता है। जैसे आप देखो, आपका मन न लगता हो भगवान्‌में तो एक तुलसीका पत्ता लीजिये और भगवान् शालिग्राम पर चढ़ाइये और बोलिये-नारायण! तो, एक सौ आठ पत्ता चढ़ाइये और एक सौ आठ बार नारायण बोलिये। तो, तुलसी वस्तु है, चढ़ाना क्रिया है, उसके साथ शब्द नारायण है और स्मरण होगा नारायणका, तो अन्तःकरण नारायणाकार हो जायेगा। देखो यह आलम्बन है। सालम्बयोग है यह। आलम्बन लेकर अपने मनको नारायणाकार करना। बार-बार नारायण...नारायण... नारायण...एक सौ आठ बार हो गया। ऐसे सीताराम...सीताराम... राधेश्याम.... राधेश्याम....हम आपके इष्टमन्त्रका उच्चारण नहीं करते हैं। आपका जो इष्टदेवका मन्त्र है, उसीसे आपने वस्तु, क्रिया, शब्द और भाव चारोंको एकमें जोड़ दिया और आपका अभ्यास चालू हो गया। आपका भगवान्‌के स्मरणका अभ्यास चालू हो गया। स्मरण होगा भगवान्‌का और चीजें हैं बाहरी।

तो ध्यान लगानेके लिये कल मैं देश, काल, वस्तुकी चर्चा कर रहा था न, तो आज देखो उसकी अपेक्षा अन्तरङ्ग है यह। उसीका नाम क्रियायोग हो जायेगा। असलमें मनुष्य भगवान्‌को, या परमेश्वरको, या सत्यको, या सच्ची शान्तिको चाहता नहीं है।

हमारे एक सेठजी थे, उनका होता था सत्सङ्ग कोई नये-नये

लोग आते थे तो बिलकुल आगे कागज-कलम लेकर बैठ जाते थे और लिखना शुरू कर देते थे। लिखकर सेठजीके पास एकान्तमें जाकर पूछते कि मैंने आपका यह व्याख्यान लिखा है। ठीक लिखा है कि नहीं ? बस इतना ही पूछनेके लिये आपके पास आये हैं। सेठजी सुनकर कहते कि भाई! तुमने तो बहुत बढ़िया लिखा है। लिखना तो तुमको बहुत अच्छा आता है। तो, दो-चार दिन बाद फिर मिलते हैं और बोलते हैं कि बस, सेठजी! अब यह चाहता हूँ कि आजीवन आपकी ही सेवामें रहें। अब, आजीवन सेवामें कैसे रहें ? बोले कि आओ, अपने कारखानेमें काम दे दें! तो असलमें उनकी रुचि सत्सङ्गमें नहीं होती है, उनकी रुचि तो आजीवन कारखानेमें काम मिल जाय यह होती है। बहुतोंकी यह बात है, कुछ लोग ऐसे नहीं भी होते हैं। तो, लक्ष्य तो है कारखानेमें काम प्राप्त करना। अब तुम शालिग्रामको तुलसी चढ़ाते हो, नारायणका नाम लेते हो और मन तो यह है कि हमारे घरमें खूब पैसा आ जाय, मुकदमेमें जीत हो जाय, हमारा रोग मिट जाय। साधन बनाते हो भगवान्‌को और उनसे सिद्ध करना चाहते हो संसारका सुख। लक्ष्य है संसार और उसकी प्राप्तिका साधन है भगवान् । इस कारणसे ध्यान परमेश्वरमें न लग करके, सत्यमें न लग करके ध्यान तो संसारमें ही लगता है।

अब आपको दो क्रिया सुनाता हूँ। जब आप ध्यान करनेके लिए पवित्र भावसे, आप कैसे भी पवित्र अपनेको कर लो-

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

बाहर-भीतर शुद्ध हो गये कैसे ? कि भगवान्‌का नाम लेकर। इतनेसे ही 'शुद्धोऽहं करके शुद्धोऽहं'से मिलना हो। जब अदालतमें जाते हैं, बड़े सेठके पास जाते हैं, मिनिस्टरके पास जाते हैं तो पोशाक जरा स्वच्छ पहनकर जाते हैं। वैसे ही भगवान्‌के पास

जाना हो तो गन्दगीसे नहीं, निर्मलताकी पोशाक धारण करके जाना चाहिए। और वह निर्मलता आप भगवान्‌का स्मरण करके कर लीजिये। बिलकुल सीधी-सादी बात है।

अब एक दूसरी बात देखो। आपका शरीर मानो स्थिर न होता हो क्योंकि; आदत ऐसी पड़ जाती है न। हमारे एक महात्मा थे वह भजन करते थे और झूमते थे। तो, हमारे गाँवमें जो बैल झूमता है न उस बैलको अच्छा नहीं मानते हैं। माने, खड़ा है और दाहिने-बाँयें ऐसे हिल रहा है या आगे-पीछे हो रहा है, तो झूमनेवाले बैलको अच्छा नहीं मानते हैं, निकाल देते हैं घरसे, अपशकुन मानते हैं। जब मन बिलकुल शान्त हो जाय और लक्ष्यमें एकतान हो जाय-जैसे आप एक बर्तनसे कोई चीज दूसरे बर्तनमें, या तो एक शीशीमें-से तेल दूसरी शीशीमें डालना चाहते हैं तो शीशी हिल न जाय, नहीं तो तेल गिर जायेगा। वैसे ही जब आप अपने मनकी वृत्तिधाराको भगवान्‌में डालना चाहते हैं तो उस समय न भगवान् हिलना चाहिए और न तो आपका मन हिलना चाहिए। यह वृत्तिकी धाराको बिलकुल स्थिर करके फिर परमात्मामें डालना चाहिए। तो, इसके लिए शरीरका स्थिर होना भी आवश्यक है।

हम किसी साधनको काटते नहीं हैं। आपका अन्तरङ्गसे अन्तरङ्ग साधन होवे उसका भी हम समर्थन करते हैं। परन्तु बहिरङ्ग साधनको काट देना तो ऐसा है कि जैसे कोई सीढ़ीको ताड़ दे और बोले कि छतपर जाकर बैठो। जो लोग सीढ़ी तुड़वा देते हैं और छतपर जाकर बैठानेकी कोशिश करते हैं वे लोग असलमें नीचे ही रहने देते हैं, ऊपर उठानेका मार्ग ही बन्द कर देते हैं। आपका शरीर यदि स्थिर न होता हो तो एक तन्त्र मैं बताता हूँ। तन्त्र माने 'टेक्नीक'। यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र। यन्त्र हो परन्तु तन्त्र न आता हो तो ? माने मशीन तो आपके पास हो, परन्तु

उसको चलानेकी टेक्नीक आपके पास न हो तो क्या करेगा यन्त्र? और, मन्त्र न मालूम हो तो ? आप पहले ही दिन सिरमें ध्यान करनेके लिये बैठ जायँ, ऐसा नहीं होता क्योंकि मनोवृत्तिकी धारा नीचेकी ओर जाती है।

ॐ भूतशृङ्गाटाच्छिरः सुषुम्नापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा।

हमारी पीठकी रीढ़में एक छिद्र है। उसको बोलते हैं सुषुम्ना। बाँसुरीमें, शहनाईमें जैसे छेद होता है ऐसे पीठकी रीढ़में एक छेद है। उसकी जड़में-से हम शक्तिको जाग्रत् करके धीरे-धीरे ऊपर ले जा रहे हैं ऐसा चिन्तन कीजिये। अच्छा बहुत सीधी बात बताते हैं। हम जानते हैं कि आपलोग बहुत पुराने सत्सङ्गी हैं। पन्द्रह-बीस वर्षसे प्रेमकुटीरमें ही सत्सङ्ग करते हैं और आपलोगोंको सब मालूम है, लेकिन कोई-कोई नये आ जाते हैं, तो उनके कामकी बात सुनाता हूँ। आप पुराने लोग तो पक्के हैं...। आप अपनी जगहसे हटिये मत। आप अपनी जगह पर रहिये। यह बात पातञ्जल योगदर्शनके व्यासभाष्यमें आयी है-

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्।

इस सूत्रकी व्याख्यामें यह बात आयी है कि यदि आपका शरीर स्थिर न रहता हो तो आप ऐसा ध्यान कीजिये कि हमारे शरीरके भीतर शेष भगवान् बैठे हुए हैं। 'अनन्तसमापत्ति'-इसका नाम है। और शेष भगवान्के सिरपर यह पृथिवी है और गोदमें भगवान् हैं, भगवान् भी योग निद्रामें रहकर शेषशैय्या पर शयन कर रहे हैं। तो यदि शेष जरा भी हिल जाय तो भगवान्की तो नींदमें खलल पड़े। और धरती हिल जाय। इसलिए बिलकुल स्थिर शेष भगवान् बैठे रहते हैं, हिलते नहीं है। व्यासजी महाराजका कहना है कि यह 'अनन्तसमापत्ति' करनेसे आपका शरीर स्थिर हो जायेगा।

अब कहो तो दो मिनटके लिये हम चुप हो जायें और आप जरा ध्यान करके देखो आपका शरीर बिलकुल नहीं हिलेगा। शेष भगवान् आपके शरीरमें जैसे साँप अपना फन उठाकर बैठता है। नीचे कुण्डली और गोदमें नारायण और सिरपर पृथिवी और बिलकुल अचल शेष भगवान् बैठे हुए हैं। आप यह तन्त्र देखो। इसका नाम तन्त्र है। यह शरीरको स्थिर करनेकी शैली है। तो, आपका शरीर हिलेगा नहीं।

आसनके लिये प्रयत्न शैथिल्यकी भी जरूरत है, वह तो मन्त्र ही है इसका। और शेषका ध्यान इसका तन्त्र है। मन्त्र तो वह है जिसके मननसे आपका त्राण होता है। 'मन्त्र' शब्दका अर्थ है 'मननात् त्रायते इति मन्त्रः'। जिसके मननसे हमारी रक्षा हो जाय। जिसके मननसे हमारा त्राण हो।

मनन होता है तीन प्रकारसे। हम संसारके मननकी नहीं परमेश्वरके मननकी बात करते हैं। एक तो इस मनको देख कौन रहा है ? इसको प्रकाश कौन दे रहा है ? यह प्रत्यक् दृष्टि होती है। हजार घड़े सूर्यको प्रकाशित नहीं करते, एक सूर्य हजार घड़ोंको प्रकाशित करता है। तो, यह जो आपका घट है, शरीरको घट ही बोलते हैं। घट माने जो गढ़ा गया हो, जो घटित हो वह 'घट'। जो चेष्टा करके बनाया गया हो उसको 'घट' बोलते हैं। यह शरीर आपका घट है, और प्रत्यक् चैतन्य आत्मासे प्रकाशित हो रहा है। सम्पूर्ण विश्व परमात्माके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा है यह दूसरा मननका प्रकार है। और, तीसरा, प्रकाश ही प्रकाश है घट नहीं है। माने, विश्व प्रपञ्च नहीं है, केवल प्रकाशात्मा परमेश्वर है। और वह प्रकाशित हो रहा है यह प्रकाशित हो रहा है। प्रथम प्रकार–वह प्रकाशित कर रहा है यह प्रकाशित हो रहा है और दूसरा–मैं प्रकाशित कर रहा हूँ और यह प्रकाशित हो रहा है। तीसरा–वह प्रकाशित कर रहा है और यह

प्रकाशित हो रहा है। ध्यानके लिये, भगवान् सम्पूर्ण विश्वको अपनी रश्मियोंसे भर रहे हैं। मैं अपनी ज्ञान किरणोंसे सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित कर रहा हूँ। और केवल प्रकाश ही प्रकाश है, प्रपञ्च नहीं है। यह तीन पद्धति हुई। एक आत्मप्रधान, दूसरी ईश्वरप्रधान और तीसरी ऐक्यप्रधान।

अब आप अपनी जानको कहाँ रखते है ? हमारी नानी जब कहानी सुनाती थी तो वह कहती थी कि एक राक्षस था, उसने अपनी जान तोतेमें रखी हुई थी, इसलिए उसको कोई कितना भी मारे वह मरता नहीं था। जब इस बातका पता चला कि इसकी जान तो पोपटमें रखी हुई है, तब उसने उस राक्षसको नहीं मारा परन्तु जाकर उस पोपटका ही गला ऐंठ दिया और वह मर गया। मरा पोपट और मर गया वह राक्षस। ऐसी कहानी हमारी नानी सुनाया करती थी।

ये संसारी लोग भी अपनी जान रखते हैं दूसरी जगह। इनका जो अहङ्कार ममकार है...अहङ्कार किसका है ? तो, कुर्सीका अहङ्कार है। जब कुर्सी मरेगी तब तुम्हारा अहङ्कार मरेगा। और, ममता काहे की है ? ममता है, नोटोंके बण्डल की। जबतक यह नहीं मरेगा, ममता नहीं मरेगी। यह मैं कुर्सी और नोटोंके बण्डलका तो नाम ही ले रहा हूँ, भगवान् करे आपकी कुर्सी बनी रहे। आपके नोटोंका बण्डल बना रहे। मैं तो बातको समझानेके लिये उदाहरणके लिये यह बात कह रहा हूँ। आपकी ममता दूसरेमें लगी हुई है और आपका अहङ्कार दूसरी चीजोंके आधार पर बना है। इसलिए जब आप अहङ्कार और ममताको छोड़नेके लिए बैठते हैं तो वह तो आपके शरीरमें है ही नहीं, वह तो दूसरेके पास वह तो पोपटमें रखा हुआ है। हमारे जैसा पोपट तो दुनियामें किसीके पास है ही नहीं। हमारे जैसा मकान और हमारे जैसा वस्त्र-आभूषण, धन-दौलत और किसीके पास है ही नहीं। तो आपका जो अहङ्कार और ममकार

है वह दूसरी वस्तुओंके निमित्तसे बढ़ा हुआ है। तो इसलिए आप अपने गर्दनको चाहे जितना भी ऐंठे, शरीरके भीतरके अहङ्कार और ममकारको निकालनेकी चाहे जितनी भी कोशिश करें परन्तु वह तो जाकर दूसरेमें बैठ गयी है। अगर यह बात किसीके सिद्धान्त या साधनाके खिलाफ पड़ती हो तो माफ करना। आपका अहङ्कार जो बढ़ गया है, चढ़ गया है वह दूसरी वस्तुओंके संयोगसे और आपकी जो ममता है वह दूसरेमें जाकर बैठ गयी है। और आप कभी शरीरको सीधा करते हैं और कभी नाकके दोनों परदोंको देखकर त्राटक करते हैं, कभी आँखकी पुतली सीधी करते हैं, कभी गर्दन सीधी करते हैं, कभी सिर सीधा करते हैं, अब इससे आपका अहङ्कार-ममकार तो सीधा होनेवाला ही नहीं है; क्योंकि वह तो दूसरी जगह रखा हुआ है। दोष दूसरी जगह है और साधना दूसरी जगह हो रही है।

अभी तो आसनकी बात आपसे कर रहा हूँ। तो आसनका अर्थ होता है बैठना। 'धोबी का कुत्ता न घरका न घाटका' यह बैठना नहीं होता है। या तो आप अपने स्वरूपमें बैठो, तो कहीं जानेकी जरूरत नहीं है या तो मालिकके घरमें बैठो। माने, लड़की या तो मायकेमें रहे या तो ससुरालमें रहे। और या तो फिर ऐसी मोटर लो, ऐसे घोड़े पर चढ़ो जो बाबा आपको यहाँसे वहाँ ठीक-ठीक पहुँचा सके। तीन ही जगह बैठनेकी है। या तो साधना पर दृढ़ निष्ठाके साथ बैठो, या तो अपने स्वरूपमें बैठो या तो अपने इष्टदेवके साथ बैठो। और इसीको आसन बोलेंगे भला। आपका आसन कहाँ लगा है महाराज! कहाँ जम गया है आपका आसन ?

अपने स्वरूपमें जमनेके लिये विवेककी आवश्यकता होती है। अपना स्वरूप क्या है ? क्या नहीं है ? यह समझना पड़ता है। जो-जो अपना स्वरूप नहीं है उससे अलग होकर अपने

स्वरूपमें बैठो। और बिना विवेकके माने अपनेको अलग तो किया नहीं और बैठ गये।

जब तिल और चावल एकमें मिल जाते हैं तब उससे कौन-सी रसोई पकेगी? तिलको अलग किया, चावलको अलग किया तब भात बढ़िया बनेगा। परन्तु तिल मिला रहे तो भात बढ़िया नहीं बनेगा। तो यह जो अपना आत्मा है वह जबतक जड़ और अज्ञान और दुःखरूप परिच्छिन्न शरीरके साथ एक होकर बैठा है तबतक अपने स्वरूपमें स्थित नहीं हो सकता। इसके लिए, अपने स्वरूपमें बैठनेके लिए विवेक करनेकी आवश्यकता होती है।

संस्कृत भाषामें विवेक माने होता है, अलग करना। दो चीज एकमें मिल गयी हो तो इसके लिये विवेककी जरूरत है। आजकल तो शब्दोंका अर्थ नहीं समझते हैं और उनका प्रयोग इतना रूढ़ हो गया है। 'विचिर् पृथग्भावे' धातु है। 'विवेचनं विवेकः' दो चीज एकमें मिल गयी हों तो उनको अलग-अलग करनेका नाम विवेक है। तो यह जो अपना 'मैं' है ज्ञानस्वरूप यह जड़ शरीरके साथ मिल गया है। और जिसमें शान्ति ही शान्ति है, सुख-ही-सुख है, परमानन्द स्वरूप ही है वह दुःखके साथ मिल गया है। और जिसमें जन्म और मरण नहीं है वह जन्म-मरणवालेके साथ मिल गया है। जिसमें किसी प्रकारका कटना-पीटना-टूटना, छेदन-भेदन नहीं है वह छेद्य-भेद्यके साथ मिल गया है। तो विवेकका अर्थ यह होता है कि यह जो इतनी महान् आत्म वस्तु, जिसके बिना कुछ मालूम ही नहीं पड़ सकता। यह एक आश्चर्य है। यदि राम भी आपके सामने आकर खड़े हों, कृष्ण भी आपके सामने खड़े हों, अन्तर्यामी परमेश्वर भी यदि आपके सामने आकर खड़े हो जायँ और आप न हों तो वह किसको मालूम पड़ेंगे ? उनको जानेगा कौन ? और जब जाने ही नहीं जायेंगे तब उनके आनेका मजा कहाँसे

आवेगा ? इतना आश्चर्यमय आपका स्वरूप परन्तु आप हड्डी-मांस चामकी एक पुड़ियाके साथ मिल गये। जिसके भीतर चरबी है, विष्ठा है, मूत्र है, मांस है, हड्डी है। आपका यह प्रकाश स्वरूप, ज्ञान स्वरूप 'मैं' इसके साथ मिलकर बैठा है। इससे उठानेके लिये आपका आसन ठीक-ठीक लगना चाहिए। योगदर्शनमें आसनका अर्थ आपको पहले सुना रहा था।

अब शङ्कराचार्य भगवान्ने वेदान्तदर्शनमें आसनका अर्थ यह किया है कि चाहे त्वम् पदार्थमें बैठ जाओ, चाहे तत् पदार्थमें बैठ जाओ, चाहे दोनोंकी एकतामें बैठ जाओ इसका नाम आसन, उपासन। यह अपरोक्षानुभूतिमें आसन शब्दका अर्थ 'उपवेषण' लिया है। तो आपका आसन कहाँ लगा है यह देखिये। पैसेमें लगा है, कि कुर्सी पर लगा है ? हम आपके बड़प्पनको समझते हैं। मँगनीका बढ़िया कपड़ा पहनकर लाये, परन्तु नीचे गञ्जी तो फटी हुई है। डींग हाँकते हैं बहुत बड़ी लेकिन, भीतर कितने खोखले हैं यह बात मालूम पड़ जाती है भला! हम पहले स्टेशनों पर देखा करते थे। बड़े-बड़े सेठ लोग कुलीको एक आना दें कि दो आना दें। तब इतना ही दिया जाता था, एक रुपया या दो रुपया नहीं दिया जाता था। तो पहले तो कड़े पड़ जाते थे, कुलीके साथ कि नहीं, हम एक ही आना देंगे, दो आना नहीं देंगे। तो कुली अगर नरम पड़ गया तो एक आनेमें छूट जाते थे, परन्तु यदि कुली कड़ा पड़ गया तो फिर दो आना देकर पिण्ड छुड़ा लेते थे। लखपति आदमी टाँगेवालेसे दो आनेके लिये उलझ पड़ते थे और यदि वह कड़ा पड़ जाय तो झट दो आना दे देते थे। तो आप इतने बड़े होकर नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप होकर, यह वेदान्तकी बात नहीं, भक्तिकी बात है भला-

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

यह भक्तिकी बात है। आप परमेश्वरके अंश होकरके आप राजकुमार होकरके और फँसे कहाँ हैं ?

एक सच्ची घटना आपको सुनाते हैं। एक यूनिवर्सिटीके वाईसचांसलर बड़े भारी विद्वान्, पण्डित थे। रातके समय पुलिसने एक पनालेमें, नालीमें उनको पड़े हुए देखा। पुलिस उनको उठाकर थानेमें ले गयी। महाराज, जब वह होश-हवासमें आये तो उनके पास जो झोला था उसमें थी शराबकी बोतल। पुलिसवालोंने उनके घर फोन किया कि अब पकड़े गये हैं तो सब कार्यवाही होगी। घरवालोंने बाबू सम्पूर्णानन्द, जो उस समय उत्तर प्रदेशके मुख्यमन्त्री थे-उनको फोन किया कि हमारे विद्वान्‌की तो यह दशा है। उनका नाम मैं जान-बूझकर नहीं दे रहा हूँ। बाबू सम्पूर्णानन्दने कहा कि अरे! सारे विश्वविद्यालयकी बेइज्जती होगी, सारे विद्वानोंकी बेइज्जती होगी, लोग कहेंगे कि यह इतने बड़े विद्वान् होकर ऐसा काम करते हैं ? वह उनके स्वरूपके अनुरूप नहीं था।

यहाँ भी हम बड़े-बड़े सेठ लोगको जानते हैं, जिनको सुबहमें पनालेमें-से निकालना पड़ता है, कै करते हैं। यह है उनका बड़प्पन! यह जो आत्मदेव हैं, नित्य-शुद्ध-मुक्त, परमात्माके अंश हैं, राजकुमार हैं,

ईस्वर अंस जीव अबिनासी, चेतन, अमल, सहज सुखरासी।

परन्तु वे कहाँ गिरे हैं? ये गिरे हैं हड्डी, मांस, चाम, चरबीके पुतलेमें। जबतक विवेक नहीं करोगे, अपनेको देहसे ऊपर नहीं उठाओगे तबतक तुम्हारा सारा अभ्यास भी शरीरमें सीमित हो जायेगा। अभ्यास करो, लेकिन वह शरीरके बड़प्पनके लिये हो जायेगा। विवेकके बिना अभ्यास शरीरके बड़प्पनका हेतु बन जाता है। इसलिए अपनेको शरीरमें-से बाहर निकालना पड़ता है।

श्रीरामानुजाचार्य महाराजने सात साधन माने हैं। विवेक, विमोख, कल्याण, क्रिया, अभ्यास, अनवसाद और अनुद्धर्ष। यह सात उनके शब्द है। यह सात साधन जब मनुष्यके जीवनमें क्रियायोगके द्वारा आ जाता है तब उसकी पोशाक ऐसी हो जाती है कि परमात्मा, परमेश्वर उसको झट गलेसे लगा लेता है। तो आप इतने बड़े हैं और इतनी गन्दी पोशाक पहनकर बैठे हैं। तो बाबा पाँच मिनट शीशेके सामनेसे इसको हटाकर धो-पोंछकर अपने आपको जरा देखो तो! विवेकके आयनेमें देखो कि आपका स्वरूप क्या है ? अब उसके बाद यह शरीर कैसे बैठा है ? अपने आप! जब आपका सङ्कल्प आपका मन, स्वयं आप इस शरीरकी सीमासे पृथक् हो जायेंगे तब यह शरीर अपने आप स्थिर हो जायेगा। फिर आसन स्थिर करनेके लिए अभ्यासकी जरूरत नहीं पड़ेगी।

अच्छा अब कल।

●

प्रवचन : 4

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

एक तो होता है परमार्थकी प्राप्तिके लिए ध्यान और एक होता है संसारकी प्राप्तिके लिए ध्यान। ध्यान तो सबको भगवान्ने दिया है परन्तु कोई संसारके लिए उसको करता है, कोई ईश्वरके लिए करता है। उद्देश्यका बड़ा भारी महत्त्व है कि आप किसलिए क्या कर रहे हैं ? मानसिक क्रिया जितनी होती है उसमें लक्ष्यकी प्रधानता होती है। आप कहाँ पहुँचनेके लिये क्या सोच रहे हैं ?

एक सज्जन आये और बताया कि हमारा मन एकाग्र हो गया तो हमको बहुत आनन्द आया। ठीक है, आपकी विषयवासना कुछ कम हुई? बोले सो तो नहीं हुई। लेकिन जिस समय मन एकाग्र होता है उस समय बड़ा आनन्द आता है। ऐसे एकाग्रताका आनन्द बढ़ने लग जाय और बिना खटपटके हो तो उससे भी एकाग्र होनेकी इच्छा बढ़ेगी और विषयवासना घटेगी। तो ध्यान वहाँ पहुँचा देता है जिसका आप ध्यान करते हैं। इसकी महात्माओंमें तरह-तरहकी शैली है।

रमणमहर्षिसे पूछा कि ध्यान किसका करें ? तो उन्होंने कहा-ध्यान करनेवाला कौन है ? जो ध्यान करनेवाला है उसीका ध्यान करो। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजसे पूछा-ध्यान किसका करें ? बोले-चाहे जिसका करो। हमको पहले दिनकी याद है जो अब आपको बताया। अब दूसरे दिनकी बात बता रहा हूँ। मैंने पूछा शरीरका करें ? तो बोले 'करो'। इससे क्या लाभ होगा ? बोले कि यदि शरीरमें तुम्हारी उपादेय बुद्धि है कि हमारा शरीर बना रहे, हृष्ट रहे, पुष्ट रहे तो शरीरके ध्यानसे शरीर हृष्ट-पुष्ट होगा, स्वस्थ होगा। और, यदि शरीरमें त्याज्य बुद्धि होगी कि यह हड्डी,

मांस, चामका पुतला है और हम इससे छूटकर अपने स्वरूपमें बैठे हैं तो शरीरका ध्यान करनेसे उसकी असलियत दिखने लगेगी और इससे मुक्त हो जाओगे। तो एक बुद्धिकी प्रधानता है, देख रहे हैं शरीर परन्तु इसको हड्डी, मांस, चामका पुतला देख रहे हैं तो इससे अलग हो जायेंगे और इसको 'मैं' देख रहे हैं तो इससे मिल जायेंगे। यह ध्यानकी कक्षा है।

ध्यानकी एक छोटी-सी बात सुनाता हूँ उसमें न आसन बाँधनेकी जरूरत है, न हाथ ठिकाने करनेकी जरूरत है, न पीठकी रीढ़ सीधी करनेकी जरूरत है, न त्राटक लगानेकी जरूरत है और चलते-फिरते हो सकता है। आपको एक मिनटमें बताता हूँ। दुनियामें आप व्यवहार सबसे करते रहिये, परन्तु किसीको मेरा मत समझिये, तेरा भी मत समझिये। देखो, यह तो जीते-जागते, चलते-फिरतेका ध्यान है, आप इसको रख सकते हैं। और यदि आप नहीं रख सकते हैं इसको तो आसन लगाकर पीठकी रीढ़ सीधी करके, प्राणायाम करके और नेत्रको सम करके, ईडा-पिंगला जब सम चलने लगेगी तब उस समयका ध्यान न तो सच्चा लगेगा और न तो व्यवहारमें काम देगा। क्योंकि वैराग्यहीन ध्यान केवल एक अभ्यास मात्र है। तो भाई, वह पाँच मिनट लगानेवाला ध्यान, जिसमें मन एकाग्र हो जाता है वह तो नोटमें भी हो जाता है। वह तो भोजनमें भी हो जाता है, वह तो संभोगमें भी हो जाता है। तो, केवल मनके एकाग्र होनेका नाम ही ध्यान नहीं है वह तो चित्तकी भूमिका है। अपने लक्ष्यमें मनका एकाग्र होना ध्यान है। अपने लक्ष्यमें एकतान होना ध्यान है।

ग्राह्यग्राहकसंवित्तिः सामान्या सर्वदेहिनाम्।
योगिनां तु विशेषोऽयं सम्बन्धे सावधानता।।

(विज्ञानभैरव-106)

संसारमें जितने प्राणी हैं उनको यह मालूम पड़ता है कि

रूमाल दिख रही है और 'मैं' देख रहा हूँ। चींटीको भी ऐसा मालूम पड़ता है, चिड़ियाको भी ऐसा मालूम पड़ता है, गाय-बैलको भी ऐसा मालूम पड़ता है, स्त्री-पुरुषको भी ऐसा मालूम पड़ता है कि यह रूमाल दिख रही है और मैं देख रहा हूँ। लेकिन आपका ध्यान सफल तब होगा जब 'सम्बन्धे सावधानता योगिनां तु विशेषोऽयं'- जिसको हम देखते हैं उसके साथ सम्बन्ध बन जाता है। देखो, यह घड़ी हमारी नहीं है। इसको हम देख तो रहे हैं लेकिन उससे सम्बन्ध नहीं बन रहा है। परन्तु एक सम्बन्ध इसके साथ बना हुआ है कि यह 'वेदान्त सत्सङ्गमण्डल'की है। जब घड़ी वेदान्त सत्सङ्गमण्डल की हो सकती है तो हमारी भी हो सकती है। तो दुनियामें कोई चीज किसीकी नहीं होती। आकाश किसीका नहीं होता, वायु किसीकी नहीं होती, तेजस् तत्त्व किसीका नहीं होता। जल तत्त्व किसीका नहीं होता। पृथिवी तत्त्व किसीका नहीं होता। संसारकी कोई चीज किसीकी नहीं होती। यह शरीर भी आपका नहीं है। शरीरके रिश्तेदार भी आपके नहीं है। बहुत परिश्रम करके और बुद्धि लगाकर जो आपने कमाया है वह भी आपका नहीं है। यह तो जड़ ही कट गयी तब ध्यान करनेकी क्या जरूरत है ?

अच्छा तो, यदि बिलकुल सम्बन्धहीनता नहीं भासती है तो विवेकी लोग कहते हैं कि यह सब प्रकृतिका है और मैं असङ्ग हूँ। भक्तलोग कहते हैं कि यह सब भगवान्का है, मेरा नहीं है। 'इदं विष्णवे, न मम' यह सब विष्णु भगवान्का है, मेरा नहीं है। परन्तु असली बात यही है कि यह जो चीज दिख रही है जादूमें, अगर कोई जादूगर आपको कोई चीज दिखावे जादूके खेलमें। तो वह किसकी है ? प्रकृतिकी है कि ईश्वरकी है कि जादूगरकी है, कि आपकी है ? 'सम्बन्धे सावधानता' न अपने साथ किसीका सम्बन्ध जोड़ो कि यह मेरी है और न दूसरेके साथ किसी चीजका सम्बन्ध जोड़ो कि यह

इसकी है। जैसे सपनेमें जो गाय दिख गयी वह किसकी थी ? अपनी कि दुश्मनकी ? यह ध्यानका फल है। 'योगिनां तु विशेषोऽयं सम्बन्धे सावधानता'–यह सम्बन्ध ही बन्धन है। और जब दूसरेका सम्बन्ध हो सकता है तो मेरा भी हो सकता है। और सम्बन्ध जहाँ नहीं बना वहाँ तो असङ्गता अपने आप ही पद–पद पर प्रकट होती है।

अब आपको सिर्फ ध्यानकी बात बताते हैं। ध्यान कैसे करें? एक महात्मासे मैंने पूछा कि ध्यान कैसे करें ? अब आप सोचने लगें कि वह महात्मा कौन थे, कहाँ रहते थे, उनकी क्या उम्र थी, क्या नाम था ? यदि आप ऐतिहासिक या भौगोलिक अनुसन्धान करने लगेंगे तो मुझे हाथ ही जोड़ना पड़ेगा। मैंने पूछा कि ध्यान कैसे करें? तो, उन्होंने कहा कि तुम यह ख्याल रखो कि यह सवाल तुम्हारे मनमें कितनी देर रहता है ? यह प्रश्न कि 'ध्यान कैसे करें' चौबीस घण्टेमें–से कितने घण्टे 'ध्यान कैसे करें?' यह प्रश्न तुम्हारे मनमें रहता है। चौबीस घण्टेमें एक घण्टा, या तीस मिनट, जितनी देरके लिये यह प्रश्न तुम्हारे मनमें रहेगा कि 'ध्यान कैसे करें', उतनी देरतक संसारके सम्बन्ध छूट गये। माने तुम यह नहीं चाहते हो तुम वह चाहते हो।

सीधी–सीधी बात हम आपको बताते हैं, हम कोई श्लोक या वाक्य पढ़कर तो आपको सुना नहीं रहे हैं। हम बहुत सुगम–सुगम रीति आपको बताते हैं। आप सब काम करते रहो। लेकिन, आपका पाँवसे लेकर सिरतक कोई एक अङ्ग स्थिर कर लो। अँगूठा हिलने न पावे आप सारा काम करते रहें। आपकी जीभकी नोक सीधी रहे और सारा काम करते रहें तो आपका मन जीभकी नोक पर चला जायेगा, आपका मन तो अँगूठेमें चला जायेगा। चञ्चलता कहाँसे आवेगी ? ध्यानका ढोङ्ग नहीं करना चाहिए। सीधी–सीधी बात आपको बताता हूँ।

एक सज्जन एक दिन बोले कि हमको तो ऐसा ध्यान करनेसे बड़ा आनन्द आया। तो हम जानते हैं कि उन्होंने पहलेसे भगवान्‌का भजन किया, विचार किया, ममता छोड़ी तो झट मन एकाग्र होते ही उनके आनन्दका विकास हो गया। हम उनकी बातको झूठी नहीं मानते हैं। बात बिलकुल सच्ची है, आनन्द आ गया, परन्तु उस आनन्दके लिये, उस ध्यानके लिये सबकुछ छोड़नेकी तैयारी थी उनकी। वर्षोंका भजन था, वर्षोंका विवेक था। एकाएक खट्‌से हो गया। सम्बन्ध टूटता है तो एकाएक खट्‌से टूटता है।

अब आपको पहले भक्तोंका ध्यान सुना देंगे तो शायद आप कहेंगे कि ये तो कुछ विवेक-विचारकी बात ही नहीं करते हैं, भक्तोंका खेल–खिलौना सुनाते हैं। क्योंकि आजकल बहुत ऐसे लोग चेला बनानेवाले मिलते हैं जो तुम भगवान्‌का ध्यान करो तो कहेंगे यह सिर्फ खेल–खिलौना है। और एक सोलहों–आने कल्पना वह तुमको बतावेंगे तो कहेंगे कि इसका नाम ध्यान हो गया। निराकारकी कल्पना करना सच्चा ध्यान है और साकारकी कल्पना करना झूठा ध्यान है ? अरे, जब दोनों कल्पना ही है, तब कल्पनामें लड्डू खाओ या सत्तू खाओ जीभ तो जीभ ही रहेगी। हमारा मन विश्राममें है, आनन्दमें है, शान्तिमें है यह भी मनसे कल्पना ही करनी पड़ती है। इसकी दौड़ बहुत दूरतक है। ध्यानके लिये पहले भक्तोंकी बात सुनावें, मीठी लगेगी। और जबतक मिठास नहीं आती तबतक रुचि नहीं होती है।

हर्र लगे न फिटकरी रंग आवे चोखा।

असलमें, 'नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति'। (छान्दोग्य 9.22.1) उपनिषद्‌का कहना है कि जब आदमीको मजा आता है तब कोई काम करता है। जब मजा नहीं आता है, तब कोई काम नहीं करता। तो मजा बैठनेका नहीं है और

मजा देखनेका नहीं है। मजा है अपने प्यारेके साथ बैठनेका और अपने प्यारेको देखनेका। जिससे प्रेम होगा उसके पास बैठोगे तो आनन्द आवेगा। जिससे प्रेम होगा उसको देखोगे तो आनन्द आवेगा। असलमें आनन्दके लिये जो चिन्तन है, यह संसारसे वैराग्य भी देता है। क्योंकि जब बिना कुछ किये केवल ध्यान मात्रसे ही आनन्दका उल्लास होता है। 'उल्लास' माने थोड़े लोग शायद न जानते हों।

'उल्लास' माने नाचना, थिरकना। उल्लास माने छलक-छलककर कोई नाच रहा हो तो उसको संस्कृत भाषामें उल्लास कहते हैं। 'लास'का ही लास्य बनता है, लास्य माने नाचना, नृत्य और 'उत्' माने 'ऊपर'। ऊपर छलकते हुए नाचना, उसका नाम उल्लास होता है। तो, आपके हृदयमें आनन्दका उल्लास हो। आप अपने होठोंपर एकबार उल्लास ले आओ, मुस्कुराओ। अपनी आँखोंमें आनन्द ले आओ, एकबार प्यारसे देखो। आप देखो कि आपका आनन्द तरंगायित हो रहा है, लहरियाँ उठ रही हैं आपके हृदयमें।

अच्छा तो, एकने कहा ध्यान कहाँ करें ? इसके लिए यह जो पन्थाई लोग हैं इनमें आपसमें मारपीट हो जाती है। हम आपको किसी पन्थकी बात नहीं सुनाते हैं। एक पन्थ होता है जो कहता है कि पाँवके अँगूठेका नाखून दबाओ और दबानेसे जो वहाँ थोड़ा दबाव पड़ेगा तो उससे मन एकाग्र हो जायेगा। एक कहते हैं कि हाथके दोनों अँगूठेके नाखून आपसमें दबा दो, ध्यान रखना ढीले न पड़ जायँ तो उससे ध्यान लग जाता है। यह हमारे जितने वाणीके, वाक्के उपासक हैं वे वैखरीसे मध्यमामें, मध्यमासे पश्यन्तिमें और पश्यन्तिसे परामें ध्यान करते हैं और बौद्ध शून्यका ध्यान करते हैं।

मैं जबलपुर गया था तो एक सज्जन मिले। उन्होंने कहा—मैं तो अपने गोपालजीका ध्यान करता था। महाराज! बड़ा आनन्द था गोपालजीका ध्यान करनेमें। सो एक महात्मा मिले उन्होंने कहा कि

नहीं! नहीं!! गोपालजीका ध्यान नहीं, तुम्हारी कल्पना है, उनको हटाओ। तुम्हारी नाभिके पास एक शून्य है। जब साँस लेनेसे नाभि हिलती है न, तब शून्यमें नाभिके हिलनेका ध्यान करो। अब तो वह दुःखी हो गये। बोले, हाय! हाय!! हमारे गोपाललालजी छूट गये। यह शून्य क्या आ गया, महाराज, यह क्या चीज है ?

अब ध्यान कहाँ करें ? तो कोई हृदयमें ध्यान करते हैं। योगियोंका अनाहत चक्र अलग है और भक्तोंका अलग है। योगियोंके अनाहतचक्रको कुण्डलिनी खा जाती है और हृदयको नहीं खाती है। वहाँ तो परमेश्वर है। दहर विद्यावाला परमेश्वर है। 'दहरं पुण्डरीकं वेश्म'। हृदय तो ब्रह्मपुर है। कोई कहते हैं कि यह दोनों भौंहोंके बीच जो आज्ञाचक्र है वहाँसे ध्यान करना। ज्यादा करके राधास्वामीवाले, कबीरपंथी वे लोग आज्ञाचक्रसे ध्यान शुरू करते हैं। हमारे तान्त्रिकोंमें कई ऐसे हैं जो सहस्रारसे ध्यान करते हैं। सहस्रदल कमल है, उसमें गुरुदेव बैठे हुए हैं। वहाँसे ध्यान प्रारम्भ होता है। कोई शून्यशिखरका ध्यान करते हैं। तो, यह सब मैं आपको क्यों बता रहा हूँ, तो इसका लब्बोलुआब, माने इसका सार सुनो। असलमें जो चीज कहीं होती है, और कहीं नहीं होती है। उसके बारेमें यह सवाल होता है कि वह शरीरमें कहाँ है, और उसका कहाँ ध्यान करें? और, जो चीज सर्वत्र परिपूर्ण है माटीमें, पानीमें, आगमें, हवामें, आसमानमें, इन्द्रियोंमें, मनमें, बुद्धिमें जो अपना आत्मा ही है उसके लिए सवाल क्या है कि कहाँ उसका ध्यान करें? जहाँ देखता हूँ वहाँ तू ही तू है।

यदि आपके कोई गुरु हों और उसने कहीं खास जगह पर ध्यान करना बताया हो तो उसको बदलनेकी जरूरत नहीं है। यह तो एक गुरुका चेला फूटकर हमारा चेला बन जाय, इसके लिए लोग जोड़-तोड़ करते हैं, उसमें कोई फर्क नहीं है। और एकबार जो इस

जोड़-तोड़के चक्करमें पड़ जायेगा वह कभी कहीं नहीं टिक सकेगा। हमारे (यहीं) एक मित्र हैं तो वे रामका ध्यान करते थे। और, बड़े बढ़िया महात्माने, वृद्ध महापुरुषने हम जिनके ऊपर बड़ी श्रद्धा करते थे ऐसे महापुरुषने उनको रामका ध्यान बताया। अब महाराज, कोई ऐसे आए हँसानेवाले, चुटकुले सुनानेवाले आ गये और चुटकुले भी भर-भरके सुनावें। उन्होंने ऐसा उसको मोह लिया कि रामका ध्यान छुड़ाकर कोई दूसरा ही ध्यान कराना शुरू कर दिया। अब महीने, दो महीने जबतक चुटकुले सुने तबतक तो उनकी वृत्ति ठीक रही और जब वे चले गये तो मेरे पास आये और बोले कि महाराज, अब क्या करें? मैंने कहा-इतना बड़ा महात्मा, वृद्ध, अनुभवी पुरुष, उसने जो बताया उसमें तो तुम्हारा मन लगा नहीं। अभी चुटकुलेमें तुम्हारा मन लगेगा। तो, जो लोग बदलना शुरू कर देते हैं, उनको फिर कहीं भी टिकना शक्य नहीं होता है। वे बदलते ही जाते हैं। भर्तृहरिका एक बड़ा बढ़िया श्लोक है-

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गाङ्गेयं पदमुपगतं स्तोकमधुना
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।

(भर्तृहरि, नीतिशतक)

गङ्गाजीके बारेमें है यह श्लोक। गङ्गाजी भगवान्के चरणारविन्दसे गिरीं ब्रह्मलोकमें, वहाँसे हिमाचल पर गिरीं, वहाँसे मैदानमें आयीं। और, 'अधोऽधो गाङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा' गङ्गाजीकी वह जो धारा थी वह बड़ी गलत जगह पर पहुँच गयी। 'स्तोकपदम्' छोटी जगहपर पहुँच गयी। आप कहना क्या चाहते हैं ? कहना यह चाहते हैं कि 'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।' जब एक आदमी विवेकसे भ्रष्ट हो जाता है, जब एक अच्छी बातको

छोड़ देता है तो, 'भवति विनिपातः शतमुखः' वह तो बस हिनलाता हुआ, घमनिया खाता हुआ, लुढ़कता हुआ, ढ़िङ्गलाता हुआ (हमारे गाँवकी बोली है) चलता है। एकबार गिरे तो बस फिर गिरते ही जाओगे, कहीं ठिकाना फिर जल्दी नहीं मिलेगा। इसलिये एक जगह पकड़कर दृढ़ताके साथ मनुष्यको बैठना चाहिए।

वृन्दावनमें गिरिराज गोवर्धन हैं। पर्वतके समान दृढ़ता चाहिए। वहाँ देखो, यमुनाजी बहती हैं। जैसे यमुनाजीकी धारा बहती है ऐसे अपनी वृत्ति अपने इष्टदेवकी ओर बहनी चाहिए। निर्मल जलका सरोवर आपका हृदय होना चाहिए। इसका नाम है वृन्दावन। ध्यान करनेमें धामकी भी जरूरत होती है। ठाकुरजी वहाँ प्रकट होते हैं। ठाकुरजी वहाँ बच्चेकी तरह खेलते हैं खिलखिलाते हैं उँ-उँ करते हैं। रोते हैं। माताकी गोदमें दूध पीते हैं। उनको चलना सिखाया जाता है, उसका नाम धाम है। उनको खाना सिखाया जाता है। ठाकुरजीको मुत्ती करना सिखाया जाता है भला! बच्चोंके साथ खेलते हैं। ग्वालिनोंके साथ छेड़-छाड़ करते हैं। कभी साँप ही मार डालते हैं, कभी गधेको ही दो डंडे लगाते हैं, कभी घोड़ेसे ही भिड़ जाते हैं। कभी ग्वालिनोंके साथ नाचते हैं और कभी बिलकुल अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। लुप्त हो जाते हैं। कभी दिखते ही नहीं हैं। परन्तु धाम बना हुआ है। आपके ध्यानमें भी एक धाम चाहिए। जिसमें ठाकुरजी कभी दिखे, कभी न दिखे, परन्तु धाम तो बना रहे। ठाकुरजी कभी उसमें हिले, कभी न हिले-

तदेजति तन्नैजति-कभी वह हिलता है, कभी नहीं हिलता है।

तद्दूरे तद्वन्तिके-कभी दूर जाता है, कभी निकट रहता है।

'तदन्तरस्य सर्वस्य'-कभी सबके भीतर रहता है, कभी बाहर निकलता है। परन्तु धाम बना रहे। यह धामनिष्ठावाले कहते हैं-

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना।।

(उत्तरकाण्ड)

सबने वैकुण्ठकी प्रशंसा की है कि भगवान् वैकुण्ठमें रहते हैं। लेकिन भगवान् राम कहते हैं–*अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ'*–यह धाम हो गया। वैकुण्ठमें जाकर आप मरें यह आपके हाथमें नहीं है। परन्तु, अयोध्यामें आप रह जाय तो वहाँ आप मर सकते हैं। काशीमें रहें तो वहाँ मर सकते हैं। वृन्दावनमें रहें तो वहाँ शरीर छूट सकता है। इसका अर्थ क्या है ? वैकुण्ठमें जाकर वहाँ तो मरना होता नहीं है। देखो आप जप करते हो, ध्यान करते हो, पूजा करते हो, तो, वह, जब आप करोगे तब होगा न! नाम जीभसे लोगे तब न लिया जायेगा, पूजा करोगे तब वह होगी, और मन एकाग्र करोगे, लक्ष्यमें मन लगाओगे तब न ध्यान होगा! और वहाँ धाममें जाकर बस जाओ, वृन्दावनमें बस जाओ। वृन्दावन आपका ध्यान बनेगा। आपकी माटी मिल जायेगी। आप धामका ध्यान नहीं करोगे तब भी धाम आपको अपनी गोदमें ले लेगा। चाहे आप याद करो चाहे न करो। यह धामनिष्ठाका एक स्वरूप बताया। यह वेदान्तियोंका अधिष्ठान है। चाहे स्मरण करो चाहे मत करो। चाहे चिन्तन करो चाहे मत करो।

तीर्थे श्वपचगृहे वा नष्टस्मृतिरपि परित्यजन् देहम्।

जिसको अधिष्ठानका बोध हो गया, ब्रह्मज्ञान जिनको हो गया वे चाहे काशींमें मरें, चाहे चाण्डालके घरमें मरें, याद करते हुए मरें, बेयादके हाय-हाय करते हुए मरें परन्तु वह तो ज्ञानसमकाल ही मुक्त हो गये। तो, यह जैसे वेदान्तियोंका यादृश अधिष्ठान होता है वैसे ही माने तादृश (वैसे ही) भक्तोंका धाम होता है। हम धामकी याद करें कि न करें धाम हमको अपनी गोदसे कभी नहीं उतारता है।

श्रीरामानुज सम्प्रदायमें धरती पर बारह वैकुण्ठ माने जाते

हैं। 'भू वैकुण्ठ' उसको कहते हैं। जिसमें परमेश्वरको, परम सत्यको, धरती पर ले आना और उसको मनुष्यके रूपमें देखना, उनके साथ हँसना, खेलना, बोलना, नाचना, गाना, बजाना। आप आँख बन्द कर लीजिये और मौजसे भगवान्‌का ध्यान कीजिये। इसमें अगर आपको मजा आ जायेगा तो विषयका चिन्तन छूट जायेगा।

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे।।
जो मोहि राम लागते मीठे।

भगवान्‌से प्रेम करनेका अर्थ यही होता है कि यह जो छोटी-छोटी चीजोंमें अपना प्रेम जुड़ा हुआ है वह छूटे और भगवान्‌से जुड़े। परमेश्वरके आनन्दका, भगवान्‌के आनन्दका ध्यान करनेसे विषयानन्दकी निवृत्ति होती है। यदि विषयानन्दकी निवृत्ति न होती हो तो आप समझना कि आपका ध्यान ठीक नहीं लग रहा है। भगवान् परमानन्द स्वरूप हैं। भगवान्‌का ध्यान होगा, उनकी मुस्कान, उनकी चितवन, उनकी भौंहोंकी मटकन, उनके कुण्डलकी लटकन, उनके पीताम्बरकी चटकन यदि आपके ध्यानमें आ जाय तो ऐसा मजा आवेगा, ऐसा मजा आवेगा कि दुनियामें सब मजे फीके पड़ जायेंगे। भक्तिका काम असलमें यही है।

अब आपको ध्यानका एक दूसरा पहलू सुनाते हैं। अभी हम आसनसे ऊपर नहीं चल रहे हैं भला! तो सारे शरीरमें आप अपने इष्टमन्त्रका अथवा इष्टदेवका चिन्तन करें। जो आपके इष्टदेव हैं वे आपके सिरपर बैठे हैं, आपकी भौंहों पर बैठे हैं, आपके कपोल पर बैठे हैं, आपके कन्धेपर आपके इष्टदेव बैठे हैं, आपके हृदयसे लगे हैं। सारे शरीरमें आपके इष्टदेव विराजमान हैं, यहाँ तक कि आँख-से-आँख मिली है, कपोल-से-कपोल मिला है, नाक-से-नाक मिली है, मुँह-से-मुँह मिला है, हृदय-से-हृदय मिला है। ईश्वरसे

डरनेकी कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि ईश्वर हर जगह रहता है। आप ईश्वरको छातीसे लगानेमें डरेंगे क्यों? क्योंकि आपकी छातीमें वह पहलेसे है। आपके रोम-रोममें हैं। इसको न्यासविद्या बोलते हैं। न्यासविद्या कई तरहकी होती है जैसे अक्षरन्यास, पदन्यास, वाक्यन्यास, मन्त्रन्यास। जैसे ॐ भूः हृदयाय नमः। ॐ भुवः शिरसे स्वाहा। ॐ स्वः शिखायै वषट्। यह अक्षरका न्यास हुआ। व्याहृतियोंको स्थान-स्थान पर रख रहे हैं।

ऐसे नारायण मन्त्रका होता है, द्वादशाक्षरमन्त्रका होता है, राममन्त्रका होता है, कृष्णमन्त्रका होता है। मन्त्रके एक-एक अक्षरको शरीरमें स्थापित कर लिया। आपका शरीर नहीं है, मन्त्रोंका जाल है। उसमें एक अक्षरका न्यास, पूरे पदका न्यास, पूरे वाक्यका न्यास, पूरे मन्त्रका न्यास, व्यापक न्यास। और, अक्षरोंका न्यास होता है। अं नमः। आं नमः। उं नमः। ऊं नमः। कं नमः। हं नमः। यं नमः। रं नमः।-ऐसे अक्षरोंका न्यास होता है। मातृका-न्यास इसे कहते हैं।

सृष्टिन्यास, स्थितिन्यास, संहारन्यास, यह करते-करते मनुष्य इतना तन्मय हो जाता है कि उसको अपने देहकी और देहके सम्बन्धियोंकी सुधि बिलकुल भूल जाती है। वह तो जरा भी असावधान हो तो बोलनेमें भूल हो जायेगी न! तो, मन्त्रोंका न्यास, वज्रपञ्जर-न्यास और इष्टदेवकी मूर्तिका न्यास। वैष्णवोंमें एक न्यास चलता है उसको 'केशवादि न्यास' बोलते हैं।

केशवादिरयं न्यासो न्यासमात्रेण देहिने।
केशवत्वं ददात्येव सत्यं सत्यं न संशयः।।

सारे शरीरमें राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण... स्थापित कर लो। युगल सरकार सिरमें, युगल सरकार ललाटपर, युगलसरकार कपोलपर, युगल सरकार कन्धे पर सारे शरीरमें युगल सरकार.. युगलसरकार.., राधा-कृष्ण..राधा-कृष्ण.., गौर-

श्याम.. गौर-श्याम.. गङ्गा-यमुनाकी धारा बह रही है। इससे क्या होगा ? अपना और अपने सम्बन्धियोंका ख्याल छूटकर अब एक ऐसे ध्यानमें मग्न हो जाते हैं कि प्रपञ्चकी विस्मृति हो जाती है। प्रपञ्चकी विस्मृति और परमेश्वरके साथ आसक्ति।

यह जो गड़बड़ाध्याय चलता है न, जिसमें शराब बेचकर आये, और कभी-कभी तो शराब पीकर भी आते हैं। और ऐसे-ऐसे गुरुजी लोग होते हैं कि ध्यान करानेके लिए बैठा देते हैं। कहते हैं कि बैठ जाइये, ध्यानका शरीरके साथ क्या सम्बन्ध है ? ऐसे बोलते हैं हो! यह सब तो शारीरिक बात है। शरीरसे जो होता हो वह होने दो, तुम जो खाते हो वह खाते रहो, तुम जो करते हो वह करते रहो, जो भोगते हो वह भोगते रहो। ध्यान तो हृदयकी वस्तु है, आओ हम लगवा देते हैं। तब बाबूलोगोंको बहुत खुशी होती है कि अच्छा है-कुछ छोड़ना-थामना नहीं पड़ेगा। अपने बैठने-उठनेमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा, अपने भोग-रागमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। यहाँ संसारका मजा तो ले ही रहे हैं, और इधर ध्यानका भी मजा ले लें। एक पॉकिटमें दुनियाका मजा है, दूसरे पॉकिटमें ईश्वरका मजा ले लें। तो, सस्ता मजा लेनेके लिये जो लोग जाते हैं, वे नकलीमें ही फँस जाते हैं। उनको असलीका पता कभी नहीं चलता है।

अब ध्यानका दूसरा ढङ्ग आपको सुनाते हैं। आपको न मालूम हो तो हम मालूम करा देते हैं। हमको अपनी तारीफ करनी है। अपनी तारीफ सबको अच्छी लगती है। लेकिन हम अपनी तारीफ इस समय इसलिए करते हैं कि आप मन लगाकर हमारी बात सुनिये। हमने धर्मके सम्बन्धमें जानकारी पानेके लिए और साधनाओंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेके लिए अपने जीवनके बहुतसे दिन व्यतीत किये, बहुतसे महीने, बहुतसे वर्ष। पुराने आदमियोंको याद

होगा कि 'कल्याण'का 'साधनाङ्क' निकला था। उसमें साधनाके सम्बन्धमें कम-से-कम हमारे 30-35 लेख छपे हुए हैं। अब यह तो सन् चालीसके पहलेकी बात है। तब बहुतसे नवजवानोंका जन्म भी नहीं हुआ होगा। तो, साधनके सम्बन्धमें हमारा अध्ययन है। कम-से-कम सौ सम्प्रदायोंमें जैसी साधना की जाती है, वह तो हमारे कण्ठमें निवास करती है। हृदयमें नहीं, क्योंकि हम उसकी पोलपट्टी जानते हैं। उनके बाहर-भीतरका सब जानते हैं। ऐसा करनेसे क्यों ऐसा होता है उसको भी जानते हैं। सकाम साधनाका जानते हैं, निष्कामका जानते हैं, साकारका जानते हैं, निराकारका जानते हैं। आप हमारी बात ध्यानसे सुनिये इसलिए मैं अपनी तारीफ कर रहा हूँ। मैंने महात्माओंके चरणोंकी सेवा की है, उनसे साधनके रहस्य मैंने सीखे हैं। उनके अन्तरङ्गमें प्रवेश किया है, उनके भीतरकी बात देखी है। आप ध्यान दीजिये इस बात पर यदि आपको केवल मन एकाग्र करनेसे सन्तोष होता हो तो हम अभी एक मिनटमें आपका मन एकाग्र कर सकते हैं। मनको एकाग्र करनेकी युक्ति हमको मालूम है लेकिन हम नहीं करेंगे, हम मेश्मराईज नहीं करेंगे। उससे तो आपका मन शिथिल हो जायेगा। हम तो आपको युक्ति बता रहे हैं। आप एक मिनट, दो मिनट बैठ जाइये।

सम्प्रदायमिमं भद्रे शृणु वक्ष्याम्यशेषतः।
समाधिर्जायते सम्यग् नेत्रयोः स्तब्धमात्रयोः।।

आप सीधे बैठ जाइये और आपके आँखकी पुतली हिलने न पावे। एक मिनट चुप हो जाओ। आपके आँखकी पुतली न दाँयें-न-बाँयें, नीचे-न-ऊपर, सामने-न-भीतर, कहीं न जाय। आप अपने आँखकी पुतलीको ज्यों-का-त्यों, जहाँ-का-तहाँ रहने दीजिये। यदि आपकी आँखकी पुतली नहीं हिलेगी तो आपका मन नहीं हिलेगा।

समाधिर्जायते सम्यग् नेत्रयोः स्तब्धमात्रयोः।

नेत्र स्तब्ध कर देने मात्रसे, जैसे खम्भा हो ऐसे कर देने मात्रसे आपका मन नहीं हिलेगा। अब एक-दो मिनटके बाद यदि पूछो कि महाराज मन तो हमारा स्थिर हो गया, हमको मिला क्या? क्या आपको स्वरूपका साक्षात्कार हो गया ? क्या आपको ब्रह्मात्मैक्यका बोध हो गया? क्या आपको परमेश्वरकी प्राप्ति हो गयी ? एक ऐसा सम्प्रदाय है (जैसे आजकल सूई गड़ाकर (एक्यूपञ्चर) चिकित्सा करते हैं। किसीके पाँवमें दर्द हो जाता है तो सूई गड़ाकर चिकित्सा करते हैं।) तो, उस सम्प्रदायमें ऐसा ध्यान भी होता है। जङ्गलमें बैठ गये और किसी पेड़का काँटा लेकर अपने शरीरमें कहीं गड़ा दीजिये थोड़ा और वहाँ छनछनाने लगेगा और अपना ध्यान इसीके ऊपर टिकाइये, यह भी एक ध्यानकी पद्धति है। अब, इस ध्यानसे आखिर होगा क्या ? यह तो देखो! क्या आपका ध्येय, ध्यान और ध्याताकी जो त्रिपुटी है वह मिट जायेगी ? इससे वह मिट जायेगी ? तो, नहीं मिटेगी इससे। तब ध्येयका साक्षात्कार हो जायेगा ? नहीं कि ध्येयका साक्षात्कार नहीं होगा। तब होगा क्या ? कि मन थोड़ी देरके लिए और जगह न जाकर एक जगह जम जायेगा लेकिन मनका एक जगहपर जमनेका नाम ध्यान नहीं है। आपका लक्ष्य यदि आत्मा है तो, उसका साक्षात्कार होना चाहिए। यदि आत्मा ब्रह्मकी एकता है तो अविद्याका नाश होना चाहिए। यदि सगुण साकार परमात्माकी प्राप्ति है तो इष्टदेवका साक्षात्कार होना चाहिए। यह सब कि काँटा लगाकर मनको एक जगह कर लिया, कि आँखको स्थिर कर लिया इसका नाम ध्यान नहीं होता है।

अब आगे फिर आपको ध्यानकी चर्चा सुनावेंगे।

●

प्रवचन : 5

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

ध्यानमें दो चीजपर ध्यान रखना है। एक तो ध्यानका उपादानकारण क्या है ? और एक उसका निमित्तकारण क्या है ? इसका अर्थ यह होता है कि उपादानकारण तो समग्र सृष्टिका सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। परमात्माके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है। चाहे उसको कार्य-कारणभावसे निम्बार्काचार्य बोलते हैं। शरीर-शरीरीभावसे रामानुजाचार्य बोलते हैं। सङ्कल्पसे वल्लभाचार्य बोलते हैं और विवर्तसे शङ्कराचार्यजी बोलते हैं, परन्तु मूल धातु परब्रह्म परमात्माके सिवाय और कुछ नहीं है। मायाके निमित्तसे नानात्व दिखता है। यह भी एक पहेली ही समझो कि जबतक वेदान्ती बालक रहता है, तबतक अविद्याको उपादान और ईश्वरको निमित्त मानता है। और जब वेदान्ती पूर्णताको प्राप्त हो जाता है तब ब्रह्म उपादान हो जाता है और माया निमित्त हो जाती है नानात्वकी भाँति। इसको सब वेदान्ती, केवल जो छोटी-मोटी पुस्तक पढ़कर वेदान्ती बनते हैं उनको मालूम नहीं होता है। उपादान माने मैटर-मसाला। सम्पूर्ण विश्वसृष्टिका असली तत्त्व परब्रह्म परमात्मा है और मायाके निमित्तसे नाना भास रहा है। यह पक्के वेदान्तियोंका अनुभव है और कच्चे वेदान्तियोंका अनुभव है कि अविद्या उपादान है, अन्तःकरण उसका परिणाम है और परमेश्वरके निमित्तसे यह सारी-की-सारी क्रिया-प्रक्रिया होती है। निमित्तकारण परमेश्वर है। यह हमने अद्वैत वेदान्तकी बात प्रारम्भमें कह दी।

अब जब यह ध्यान करते हैं तो उसमें छानकी भी जरूरत होती है। माने कुछ त्याज्य होता है, कुछ ग्राह्य होता है। यदि भेद न करना हो तो ध्यान माने कुछ होगा ही नहीं। शत्रुका ध्यान छोड़कर

मित्रका ध्यान करना है। अहितका ध्यान छोड़कर हितका ध्यान करना है। संसारका ध्यान छोड़कर परमेश्वरका ध्यान करना है। जहाँ हेय नहीं होगा वहाँ ध्येय भी नहीं होगा। 'हेय' और 'ध्येय' माने हमें ध्यान किसका करना है और छोड़ना किसको है ? अब इसमें यदि कोई भौतिक विज्ञान है न, मशीनसे जाँच करनेवाला साईंस, उसको लगाकर यदि कोई देखना चाहेगा कि हम किसका ध्यान करें और किसका नहीं करें तो, इस अनिर्वचनीय सृष्टिमें कभी क़ोई ध्येय पक्का नहीं होगा और हेय भी पक्का नहीं होगा। इसके लिये चाहिए ध्यानकी नींव। तब निमित्तकारण ध्यानका क्या है ? वह है 'गुरु'। वह जिस चीजको बता दे कि इसका ध्यान करो, उसका ध्यान करना चाहिए। इसमें खोज करनेकी जरूरत नहीं है कि जो उन्होंने बताया वह परमेश्वर है कि नहीं ? जिसको उन्होंने परमेश्वर बताया वही परमेश्वर। कहीं झूठ बता जाय तो ? धोखा दे जाय तो ? बोले कि धोखा कोई ऐसे नहीं दे सकता कि परमेश्वरके सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं मूलमें। इसलिए वह मूलाधारमें बतावे तो वहाँ, मणिपूरकमें बतावे तो वहाँ, आज्ञाचक्रमें बतावे तो वहाँ, सहस्रारचक्रमें बतावे तो वहाँ, हृदयमें बतावे तो वहाँ, व्यापकरूपसे बतावे तो वहाँ, राम बतावे तो राम, कृष्ण बतावे तो कृष्ण, देवी बतावे तो देवी, ज्योति बतावे तो ज्योति। क्योंकि बतानेका अर्थ यह हुआ कि हमारे जीवनमें बुद्धिका, अहंका आधार न रहकर गुरुशास्त्रका आधार हो जाय। नहीं तो एक ईश्वरमें यह छोड़ो, यह पकड़ो यह भेद बनानेवाला कौन पैदा हो सकता है ? वह तो साधकके कल्याणके लिये, 'उपासकानां सिद्ध्यर्था ब्रह्मणोरूप-कल्पना'-गुरुजीने वैसा भेद बताया है। इसमें साङ्ख्यबुद्धिकी जरूरत नहीं है, योगबुद्धिकी जरूरत है। गीतामें दो बुद्धि हैं न-

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।

सांख्यबुद्धिमें-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

असत्का जन्म नहीं होता और मरण नहीं होता। वन्ध्यापुत्र न जन्मता है न मरता है। और, 'नाभावो विद्यते सतः'-जो आत्मा सत्य है, उसका न मृत्यु है, न जन्म है। इसका नाम साङ्ख्यबुद्धि है।

लेकिन, 'बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु'-साङ्ख्यबुद्धि दूसरी है, और योगबुद्धि दूसरी है। ध्यान 'योगबुद्धि'के अन्तर्गत आता है, क्योंकि किया जाता है, कर्तृतन्त्र है। जो वस्तुतन्त्र होता है वह साङ्ख्य होता है, जो कर्तृतन्त्र होता है वह योग होता है। करें, न करें, उलटके करें, जिसमें कर्त्ताका स्वातन्त्र्य होता है वह योग होता है। जिसको छोड़ने पकड़नेका किसीके अन्दर सामर्थ्य नहीं है, वह परमार्थ सत्य होता है।

अब जरा ध्यानकी बात आपको सुनाते हैं। पहले उसका मूल बताया। यदि आप गुरु-शास्त्रको नहीं मानेंगे तो ध्यान नहीं कर सकेंगे। कहनेका मतलब यह है कि ध्यान करनेके लिए गुरुशास्त्रको मानना आवश्यक है। और गुरु भी शास्त्रसे नियन्त्रित होना चाहिए। यह भी जरूरी है, नहीं तो उल्टा-पुल्टा हो जाता है। माने, उपदेश हमेशा शास्त्रानुसारी होना चाहिए। यही हमारी परम्परा यही हमारा संस्कार कहता है।

जितने विज्ञान होते हैं हमारे हृदयमें, वे साकार ही होते हैं, निराकार कोई नहीं होता। यहाँ तक कि जिसको हम निराकार कहते हैं उसको भी जब हम साकारसे अलग करेंगे तब तो निराकार बोलेंगे। तब, दो चीज हो गयी एक साकार और एक निराकार। तो, साकारसे पृथक् निराकारका भी आकार होगा। जहाँ विलक्षणता होगी, कि इससे अलग (जैसे 'यज्ञदत्तसे अलग') वहाँ भी साकार ही होगा। जैसे चैत्रसे अलग मैत्र है, मैत्रसे अलग चैत्र है, सोहनसे अलग

मोहन है, मोहनसे अलग सोहन है तो दोनोंमें अलगाव हो जाता है। इसलिए अन्तःकरणमें जितने विज्ञान होते हैं वे साकार होते हैं। देखो, हम घड़ेसे विलक्षणका ध्यान करते हैं, पृथिवीसे विलक्षणका ध्यान करते हैं, तब वैलक्षणमें द्वैत जरूर होगा। और, द्वैत होगा तो विज्ञानमें एक आकार होगा। जब विज्ञानमें आकार होगा तब आप ध्यान रखो कि जिसको आप बिलकुल शान्ति कहते हो, निराकार कहते हो, विश्राम कहते हो, आराम कहते हो और जिस निराकारका आप ध्यान कर रहे हैं, निःसङ्कल्पताका ध्यान कर रहे हैं तो सङ्कल्पकालसे अलग निःसङ्कल्पताका काल हुआ कि नहीं ? तो कालमें आकार बन गया तब हमेशा विज्ञान साकार होता है, इसलिए एक आकार विज्ञानमें बने, जैसे गणेशाकारवृत्ति रहे, कृष्णाकारवृत्ति रहे, रामाकारवृत्ति रहे, निःसङ्कल्पाकारवृत्ति रहे, ब्रह्माकारवृत्ति रहे इसके लिए एक वृत्तिको पकड़ना पड़ता है। वृत्ति माने व्यवहार होता है।

'वृत्ति' शब्दका अर्थ संस्कृत भाषामें व्यवहार है। यह झूठ ही हल्ला करते हैं कि राम बड़े हैं कि कृष्ण बड़े हैं, निराकार बड़ा है कि साकार बड़ा है ? एकदम झूठ ही लड़ते हैं। लड़ायी समझदारीकी पहचान नहीं है। जो आकार तुम्हें गुरु, शास्त्र, सम्प्रदायसे प्राप्त हुआ वही सबसे बड़ा है। अब उसको पकड़कर रखनेमें विवेकका आधार और विश्वासका आधार चाहिए। विवेकके आधारमें बुद्धि जाग्रत् रहती है। और, विश्वासके आधारमें बड़ी दृढ़ता होती है। एकदम परिपक्व निष्ठा होती है। विश्वासमें आत्मबल प्रकट होता है और बुद्धिमें, विवेकमें वस्तुबल प्रकट होता है ये दोनोंका नियम है। विश्वासी आदमी बड़ा आत्मबली होता है। अपने विश्वास पर टिके रहता है। हजार-हजार आँधी आवें, तूफान आवें, आग लगे, प्रलय हो और अपने विश्वास पर टिके रहना-यह आत्मबलके विकासका स्थान है। जबतक मनुष्य दृढ़ नहीं होगा, बलवान् नहीं होगा-

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिङ्गात् । (मुण्डकोपनिषद्)

बलहीनको आत्माकी प्राप्ति नहीं होती। इस झञ्झावातमें, तूफानमें टिकाऊ बुद्धि होनी चाहिए। जब हम विश्वास करके परमेश्वरके मार्गमें लगते हैं तब हमारी आत्मशक्ति, आत्मबल जाग्रत् होता है। दृढ़ता आती है। निष्ठा बनती है। चाहे कुछ भी हो जाय हमारा तो यही है।

महाभारतमें एक कथा है। उपमन्युने भगवान् शङ्करकी आराधना की तो, शङ्कर भगवान्‌को कुछ खेल सूझा, वे हाथी पर सवार और हाथमें वज्र लेकर इन्द्र बनकर उपमन्युके सामने आये। और कहा कि–उपमन्यु वर माँग लो! तब उपमन्युने कहा–'इन्द्र! अपि कीटः पतङ्गो वा भवेयं शङ्कराज्ञया'–शङ्करजी आकर कह दें तो हम कीड़ा होनेको तैयार हैं, पतङ्ग होनेको तैयार हैं। 'न तु शक्र त्वया दत्तं त्रैलोक्यमपि कामये'–परन्तु इन्द्र यदि तुम हमको त्रिलोकीका राजा बनाना चाहो तो मुझे नहीं चाहिए। हम शङ्करजीके बनाये कीड़ा–पतङ्गा बन सकते हैं लेकिन तुम्हारे बनाये त्रिलोकीका राजा भी नहीं बन सकते हैं। शाण्डिल्य भक्तिदर्शनके स्वप्रेश्वर भाष्यमें यह प्रसङ्ग उद्धृत किया गया है।

यह जो बल है कि हम त्रिलोकीका राज्य नहीं लेंगे यही आत्मबल है। यह कोई साधारण बात नहीं है। यह आत्मबल विश्वासके मार्गमें प्रकट होता है। आत्मामें बल तो है ही है। वह तो बिल्कुल अपरिवर्तनशील है, एकरस है, अद्वितीय है, अपरिणामी है, वह तो बलों–का–बल है, लेकिन जब हम विश्वास धारण करते हैं तब उसमें यह प्रकट होता है। आत्मबलकी अभिव्यक्ति, अभिव्यञ्जनाका स्थान विश्वास है। इसलिए आप अपने ज्ञानको, अपनी जानकारीको, अपने होशहवासको एक शक्लमें ले आइये।

इसमें एक ही शक्ल रहे। एक आकार लीजिये। बोले-कौन-सा आकार लें ? दुनियामें तो इतने आकार हैं। मिट्टी है, पानी है, सूर्य है, चन्द्रमा है और सब परमेश्वरके ही आकार हैं। महिम्नस्तोत्रमें एक श्लोक आता है कि पृथिवी तुम हो, जल तुम हो, अग्नि तुम हो-

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि।।46।।

जो तुम नहीं हो, ऐसा तो कोई तत्त्व नहीं है। तब हम अपने ध्यानमें कौन-सा आकार धारण करें ? यह वेदान्तियोंका ध्यान तब होता है जब सब आकार परब्रह्म परमात्मा हो जाते हैं।

पद्मपुराणमें एक अध्याय है इसका नाम ज्ञान ध्यानाध्याय है। उसमें, ज्ञानमें और ध्यानमें क्या विवेक है-इसका निरूपण है। किसी भी विलक्षण वस्तुको जानना, और जानकर उसको अपने अन्तःकरणमें रोक लेना, जान-बूझकर रोक लेना। ब्रह्मकी चर्चा नहीं हैं उसमें। निःसङ्कल्पताको देखना और उसको पकड़ लेना कि छूटने न पावे। रामको अपने हृदयमें देखना और पकड़ लेना कि छूटने न पावे। कृष्णको अपने हृदयमें देखना और पकड़ लेना कि छूटने न पावे। तो, इस हजारों आकारवाली सृष्टिमें बल्कि शास्त्रमें भी जहाँ सैकड़ों आकार दे दिये हैं। राम लो, कृष्ण लो, शिव लो, नारायण लो, दुर्गा लो, गणेश लो उनमेंसे एक आकार जब धारण करना पड़ेगा तो केवल शास्त्रसे भी काम नहीं चलेगा। शास्त्र तो हजार आकार और हजार शक्ल-सूरत देते हैं कि यह भी परमेश्वर है, यह भी परमेश्वर है। हमारे अन्तःकरणमें भगवदाकार बनानेके लिए कौन-सा आकार पकड़ना यह उन्हीं शास्त्रीय आकारोंमें-से एक आकार गुरु देता है कि इस आकारको पकड़ो और दृढ़ निष्ठ हो जाओ। लेकर पकड़कर

बैठ जाओ, अब दुनियामें जो हो सो होने दो। हम तो यह शक्ल, यह सूरत भगवान्की पकड़कर बैठे हैं। जिस आकारको पकड़कर तुम बैठोगे उसका ध्यान होगा। वह आकार ध्येय होगा, ध्यान तुम्हारे अन्तःकरणमें होगा और ध्याता तुम हो जाओगे। ध्याता, ध्यान, ध्येयकी त्रिपुटी हो जायेगी।

भक्तलोग मानते हैं कि ध्याताको ध्येयमें मिला दो। सायुज्य हो जायेगा। योगी लोग मानते हैं कि ध्येयको ध्यातामें मिला दो तो त्रिपुटी ही नहीं रहेगी। ध्येयका ध्यातामें मिल जाना यह योगका ध्यान है और ध्याताका ध्येयमें मिल जाना यह भक्तिका ध्यान है। सायुज्य बोलते हैं इसको भक्तिमें। और, ज्ञानके प्रसंगको छोड़ देते हैं। क्योंकि ध्यानमें उसको क्यों लगाना ? तो, आप जो भी ध्यान करते हैं, उसमें जिसका आप नाम लेते हैं वह एक और 'नाम' दो और आप नाम लेनेवाले तीन। तो, यह तीन हो गये। शब्द, अर्थ और दोनोंके सम्बन्धका ज्ञान। तो, ज्ञान, शब्द और अर्थ तीनोंको एक कर दो। अर्थमें मिला दो। हेय भगवान्के रूपमें मिला दो। भगवान् ही ध्यान है, भगवान् ही ज्ञान है। हमारे इष्टदेवके सिवाय और कोई नहीं है। यह भक्तोंका ध्यान हो गया।

उसमें सायुज्यको मुख्य मानते हैं। भक्तोंमें भी सालोक्यको, सान्निध्यको, सारूप्यको मुख्य नहीं मानते हैं। ये सिद्धान्ती जितने भक्त हैं–श्रीरामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य माने ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या करनेवाले जितने आचार्य हैं, जिसने ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या नहीं की है उसको परम्परामें आचार्य नहीं मानते हैं। वेदान्तदर्शनकी व्याख्या जरूर चाहिए। तो, जिसने भी व्याख्या की है ब्रह्मसूत्रकी, उन उपासक आचार्योंमें भी सालोक्य माने अपने नगरका नागरिक बना लेना। जैसे हमारे नेता लोग किसी देशमें जाते हैं तो उस नगरकी चाबी उनको अर्पित कर देते हैं। अब क्या मिलता है चाबीमें ? कि

आप हमारे यहाँके नागरिक हैं। उससे एक फायदा होता है कि कभी कोई विपत्ति पड़े अपने देशमें और भागकर उस देशमें चले जायँ तो वहाँ हमेशा रहनेके लिए मिलेगा। वे सिटीजन बना लेते हैं अपने नगरका। भगवान् अपने नगरका नागरिक बना लेते हैं तो इसे 'सालोक्य' कहते हैं। और, सारूप्य माने जैसी पोशाक हम पहनते हैं वैसी तुम पहनो। वैसे ही साँवरा बना देते हैं। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म भी दे देते हैं। परन्तु, लक्ष्मीजीको नहीं देते हैं। ऐसे ही सामीप्य देते हैं, वनमाला बनाकर पहन लेते हैं, भ्रमर बनाकर गुञ्जार करने देते हैं, दूध बनाकर पी लेते हैं। और सायुज्य माने बिलकुल एकता। तो, भक्ति सिद्धान्तमें सायुज्य माने मिल जाना। जीव परमेश्वरसे मिल जाता है। ध्याता ध्येयमें लीन हो जाता है। और, ध्येय और ध्यानको छोड़कर ध्याता अपने स्वरूपमें स्थित होता है तो सब ध्यातामें मिल जाता है। ऐसा भी कहो कि सब बाहर ही पड़े रह जाते हैं और ध्याता अपने असंग स्वरूपमें स्थित हो जाता है।

ध्यान जो है वह शब्द स्थानीय है। असलमें ध्यानमें शब्द रहता ही है चाहे तुम बोलो–चाहे न बोलो। नारायण....नारायण.... नारायण...., राम...राम.../कृष्ण...कृष्ण जिसको तुम देख रहे हो वह जब दूसरोंसे अलग होकर दिखायी देता है तब उसका नाम भी रहता है। तो, गुरु क्या करता है कि रूप बताता है और नाम देता है– ध्यान करनेके लिए। और, तुम ध्यानके अधिकारी हो जाते हो। तो, ध्यान करनेकी नींव शास्त्रानुसार ही गुरु उपदेशसे प्राप्त होती है।

यह ध्यान करनेकी नींव विज्ञानसे प्राप्त नहीं होती, साईंससे नहीं मिलती है। क्यों नहीं मिल सकती ? तो, विज्ञानमें, दर्शनमें तो सब एक ही परमात्मा है, द्वैत है ही नहीं। तब इसका ध्यान करना, इसका नहीं करना यह विभाग कौन करे ? इसमें वाचनिक विभाग होगा। तो, वाचनिक विभाग ही गुरु और शास्त्रका किया हुआ विभाग

है। वह शब्दसे विभाग होगा। अच्छा, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान बना तब कोई-कोई शहर या दुकान ऐसे बँटे कि उसका आधा हिस्सा हिन्दुस्तानी हो गया, आधा हिस्सा पाकिस्तानी हो गया। अब बताओ धरती तो बिलकुल एक है, आसमान एक है। सूर्य-चन्द्रमा एक है तब हिन्दुस्तान-पाकिस्तानका विभाग किसने किया ? वह तो जो कागज पर लिखा संविधान बना उसने हिन्दुस्तान-पाकिस्तान दो देश बना दिया। कोई बीचमें समुद्र नहीं आया, पर्वत नहीं आया, कोई चन्द्रमा नहीं आया, कोई सूर्य नहीं आया। वस्तुने भेद नहीं किया, शब्दने भेद किया, कानूनने भेद किया। इसी प्रकार ध्येय और हेयका जो भेद है वह वस्तु नहीं बनाती है, शास्त्र और गुरुका शब्द बनाता है। इसलिए जो गुरुदेव अपनेको मन्त्र बताते हैं वही मन्त्र होता है और जो रूप या आकार बताते हैं वही ध्यान होता है।

इसीसे गुरु या मन्त्र बदलनेवालोंकी निष्ठा कहीं नहीं होती है। निष्ठा नहीं होती माने वह कहीं भी परिपक्व नहीं होता है। एक गुरुसे दूसरा गुरु बड़ा मिल गया, उससे तीसरा गुरु बड़ा मिल गया। दूसरेसे कोई मन्त्रकी तारीफ सुनी कि यह बहुत बढ़िया। दूसरे रूपकी तारीफ सुनी तो यह बहुत अच्छा है। निराकार-साकारकी तारीफ सुनी तब वह बहुत बढ़िया है। तो, वह बदलता ही रहेगा, उसका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं। उसका विज्ञान जो है वह एक आकारके संस्कारको धारण नहीं करेगा। इसलिए वह संस्कृत नहीं होगा। इसका संस्कार नहीं होगा।

संस्कृत होनेका अर्थ क्या है कि यह जो दुनियाका नानात्व हमारे ज्ञानमें घुस गया है न, संसार जो हमारे अन्तःकरणमें घुस गया है इस संसारको झाड़ू लगानेके लिए, साबुन लगानेके लिए जो संस्कार चाहिए उसको धारण करना। संस्कार माने हाथमें मैल लगी है तो छुड़ानेके लिए दही, नींबूका पानी लगाकर उसका संस्कार

हुआ। दोषापनयन हुआ। कहीं खुर-खुरापन हो गया है तो वहाँ जरा चिकनायी लगा दी, मक्खन लगा दिया वह भी संस्कार हुआ। और, कहीं गड्ढा हो गया तो उसको भर दिया यह भी संस्कार हुआ।

दोषापनयन, गुणाधान और हीनाङ्गपूर्ति यह संस्कारके तीन भेद होते हैं। तो, हमारे ज्ञानमें विकार आ गया, विकार आ गया है माने क्या, ज्ञान विकृत नहीं हुआ है उसमें संसारका विकार भर गया है। उस विकारको दूर करनेके लिए यह ध्यान जो है वह जब एक मूर्ति ले जाकर हमारे ज्ञानमें रखता है, तो जो नाना प्रकारके विकार आते हैं उनका आना बन्द हो जाता है। और, ज्ञानका संस्कार हो जाता है। साबुनसे ज्ञान नहीं धुलता है, नींबूसे, दहीसे नहीं धुलता है वह कहीं पाउडर लगानेसे नहीं धुलता है। उसमें जब ईश्वरकी एक मूर्ति, वह भी ईश्वरत्वबुद्धिपूर्वक कि यह ईश्वरकी मूर्ति है, परमेश्वरकी मूर्ति है, ऐसा करके जब एक परमेश्वरको हृदयमें बैठाओगे तब वह तुम्हारे अन्तःकरणका संस्कार करेगा। उसकी सफायी करेगा, स्वच्छ-निर्मल बना देगा। इसमें भी बीच-बीचमें वेदान्तकी बात आ जाती है इसको क्या करें ?

दो मैल ऐसे हैं जो ज्ञान होनेसे पहले छूट सकते हैं परन्तु एक मैल ऐसा है जो ज्ञान होनेके साथ ही छूटता है इसके पहले छूटता ही नहीं है। ये मल, विक्षेप और आवरण तीन दोष मानते हैं! ये अन्तःकरणमें तीन दोष हैं। मैल माने बुराईकी वासना। अच्छाईकी वासना भी वासना ही है। अच्छा, कोई स्वर्ग भी चाहता हो और परमार्थका साक्षात्कार भी चाहता हो तो हो सकता है उसको ? नहीं हो सकता है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।।

(गीता 2.42)

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।।

(गीता 2.43)

जबतक निषिद्ध कर्म और काम्यकर्म करेंगे वे दोनों ही मलकी शुद्धिमें पूर्ण नहीं होते। क्योंकि कामना तो एक मल है। निषिद्धकर्म तो मल होते ही हैं। और, काम्यकर्ममें कामना एक मल है। तो, निष्कामकर्म और निष्काम उपासना ये चित्तके मलको धोते हैं। और रहा विक्षेप वह योगसे दूर होता है। अब रहा आवरण तो, आवरणभङ्ग होनेपर ज्ञान होगा कि ज्ञान होनेपर आवरणभङ्ग होगा ? आवरणको भङ्ग करनेवाला तो ज्ञान ही है। ज्ञानसे ही आवरणभङ्ग होता है। यह नहीं कि हम पहले ज्ञानस्वरूपमें बैठ गये और फिर आवरणभङ्ग हो गया। बिना आवरणभङ्गके ज्ञानस्वरूपमें बैठोगे नहीं। यह नहीं कि आवरणभङ्ग हो गया तब ज्ञान हुआ। तब, वृत्तिज्ञान उदय होकर आवरणभङ्ग करता है। दोनों एक साथ होते हैं, जागना और नींद टूटना। और अपना स्वरूप ज्यों-का-त्यों। वह तो यह ज्ञान होता है कि जिस समय आवरण था उस समय भी स्वरूप ज्यों-का-त्यों था जब टूटा है तब भी ज्यों-का-त्यों है, अपने स्वरूपमें तो कोई अन्तर आया ही नहीं था। इसलिए वृत्तिज्ञान आवरणभङ्ग करता है और स्वरूपज्ञान पहले भी, पीछे भी, बीचमें भी ज्यों-का-त्यों रहता है।

देखो, मल और विक्षेप तो निष्कामकर्म, निष्काम-उपासना और योगसे दूर होता है। अच्छा, योग भी निष्काम होना चाहिए, तब योगमें सकामता क्या होती है ? सिद्धियोंकी जो इच्छा है न वह योगमें सकामता लाती है कि हमको यह सिद्धि मिल जाय, हमको यह सिद्धि मिल जाय...तब योग भी सकाम हो जायेगा। और, कुछ पानेके लिए उपासना करेंगे तो, उपासना भी सकाम हो जायेगी और

जब लोक-परलोककी कोई वस्तु पानेके लिए धर्म करेंगे तो वह भी सकाम हो जायेगा।

तो, अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए संस्कारके लिए यह (संस्कार, संस्कृति, शुद्धि, शुचिता इन शब्दोंका प्रयोग प्राचीनकालसे ही चला आया है। अब आओ) जो आपने एक आकारको पकड़ा इसमें बड़ी भारी शक्ति है। और यदि अपने मनसे पकड़ोगे तो कभी छूट जायेगा। इसको भी हम अपनी भाषामें विज्ञान ही कहते हैं। और यदि आप विज्ञान दूरबीन, खुर्दबीनसे देखनेको ही मानते हों और कम्प्यूटरसे जो गिनती निकलती है, उत्तर निकलता है, उसको ही मानते हों तब तो यह विज्ञान नहीं है।

असलमें, निष्ठा जो है वह ध्यानका विज्ञान है। श्रीउड़िया-बाबाजीके मुँहसे यह बात सुनी कि एक महात्मा थे। सचमुचमें ऐसे कोई महात्मा थे और उनके समयमें ही थे। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजने उनको देखा था। तो महात्माका नाम था बरगदिया बाबा। उनका यह नियम था कि एक बरगदके वृक्षके नीचे रहते थे जहाँतक उसकी परछार्यी पड़े उसीके भीतर रहें, उसके बाहर न जायँ। इसको निष्ठा बोलते हैं।

'निष्ठा' माने गतिकी निवृत्ति। 'ष्ठा' माने गतिकी निवृत्ति और 'नि' माने 'वीतराग'। यह 'ष्ठा' धातु है न, तिष्ठति जिससे बनता है उसीसे 'ष्ठा' बनता है और 'नि' उपसर्ग है। निष्ठा माने नितान्त स्थिति, 'नितराम' स्थिति। अब आप पूछो कि इससे क्या होगा ? इससे यह होगा कि जो गर्मी-सर्दी वहाँ पड़ेगी सहनेकी तपस्या होगी। जो खानेको आ जायेगा उसके भीतर वही खायेंगे। सिनेमा देखना छूट जायेगा। किसीके घरमें जाना छूट जायेगा। नगरके सुख छूट जायेंगे। उन्होंने एक बरगदके पेड़के नीचे रहनेका निश्चय किया और उनके अन्दर तपस्या, समता, सहिष्णुता और संसारके भोगोंका त्याग, वैराग्य यह सब किसने दिया? कि बड़के पेड़ने दिया।

इसी प्रकार जब हम ध्यान करते हैं, तो जब हम एक गुरु, एक मन्त्र और एक रूपकी शरण ग्रहण करते हैं कि अब हम इसका परित्याग नहीं करेंगे। तो कोई दूसरा बहका नहीं सकता। नहीं तो जिसकी तारीफ सुनेंगे उसीमें रुचि हो जायेगी। कोई बहका नहीं सकता है। अच्छा जो कुछ गर्मी-सर्दी मिलेगी, कभी गुस्सा आवेगा तो इष्टदेव पर ही कर लेंगे। इसमें कोई गलत बात नहीं है या डरकी बात नहीं है। पत्नी अपने पति पर गुस्सा करती है, पति अपनी पत्नी पर गुस्सा कर लेता है। बेटा-बाप पर भी गुस्सा कर लेता है, बाप-बेटे पर गुस्सा करता है। इसका तरीका अलग-अलग है। किसीको अगर गुरुपर गुस्सा हो जाय, गुस्सा आ जाय-अब गुस्सा आनेको कोई कैसे रोक सकता है? तो यह नहीं कि गाली देने लगे, मारनेको पहुँच जायँ, उसका तिरस्कार करे सो नहीं। वह गुस्सा उतारनेका तरीका क्या है ? कि मौन हो जाना, चुप हो जाना। 'गुरौ मौनं समाचरेत्' थोड़ी देर जब मौन रहेगा, गुस्सा उतर जायेगा फिर अपने आप मेलजोल हो जायेगा।

तो, जहाँ हम निष्ठा ग्रहण करते हैं जैसे मन्त्रजप होगा तो हमारी जिह्वाको पवित्र करेगा, कण्ठको पवित्र करेगा और हृदयको पवित्र करेगा। उस शब्दके उच्चारणमें ही एक दिव्य शक्ति भरी हुई है। और, यह हमने कहीं किताब पढ़कर, अखबार पढ़कर आपको नहीं बताया है। हमको तो एकने बताया कि किसीने उनके पास तीन-चार मन्त्र लिखकर भेज दिये और बताया कि इनमें-से तुम्हारी जो मर्जी हो सो छाँट लो। तो, शिष्य अपना गुरु हुआ कि गुरु ही गुरु हुआ ? वह तो शिष्य ही गुरु हुआ न! किताबमें पाँच हजार मन्त्र हैं उनमें-से जो मौज हो उसको छाँट लो, ऐसे नहीं होता है। यह तो नारायणसे लेकर अबतक शक्ति सञ्चारकी एक प्रक्रिया है। शब्दोंमें एक प्रकारकी शक्ति आती है और वह शिष्य पर्यन्त आती है। उस गुरुके गुरुमें थी, उस गुरुके गुरुमें थी, वह परम्परासे प्राप्त हुई।

अच्छा, यदि आप इस नाम और रूपको परम्परासे ग्रहण नहीं

करोगे तो इसमें हानि क्या है ? इसमें हानि यह है कि संसाार माने ईंट-पत्थर नहीं होता है। संसार माने मैं-मेरा होता है। 'अहं ममेति संसारः' यह बात भक्त और वेदान्ती दोनों मानते हैं, कि मैं और मेरा संसार है। शङ्कराचार्यजीने लिखा है-'कर्त्तृत्व भोक्तृत्व लक्षणः संसारः' कर्त्तापन और भोक्तापनको संसार कहते हैं। विश्वनाथ चक्रवर्तीने लिखा है-'अहं ममेति संसारः'। अहं और 'मम' माने परिच्छिन्नमें 'अहम्' और किसी भी वस्तुको मेरा समझना यही संसार है।

तो, भगवान्‌का सब समझ लेने पर तो मेरा छूट जाता है। विवेकी लोग कहते हैं कि सब प्रकृतिका विलास है तो मेरापन छूट जाता है। अपनी असङ्गताके बोधसे मेरापन तो बिलकुल छूट जाता है। परन्तु 'मैं' पना जो है वह देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छिन्न, अद्वितीय हुआ कि नहीं ? यह बात अलग है।

अब हम छोटी-सी बात आपको सुना रहे हैं। आपके द्वारा चुना हुआ मन्त्र, आपके द्वारा चुना हुआ रूप, आपके द्वारा चुनी हुई उपासनाकी पद्धति आपके 'मैं'-को बढ़ावेगी कि नष्ट करेगी ? इसका नाम विज्ञान है। ध्यानका विज्ञान क्या है ? यदि आप कहोगे कि हजारों मन्त्रोंमें-से मैंने एक बढ़िया मन्त्र चुन लिया, हजारों रूपोंमें-से मैंने एक ऐसा बढ़िया रूप चुन लिया! तो, आपका 'मैं' रूप संसार नहीं मिटेगा। वह धनसे भी बढ़ता है, बुद्धिसे भी बढ़ता है, विद्यासे भी बढ़ता है, कुर्सीसे भी बढ़ता है। अपनेमें प्रकर्षका, उत्कर्षका जो आरोप होगा वह 'मैं'को बढ़ावेगा, घटावेगा नहीं। इसलिए संसारकी निवृत्ति नहीं होगी।

ध्यानका मूल जो है, ध्यानकी जड़ जो है, मैंने यहींसे बात शुरू की थी कि ध्यानका उपादानकारण तो सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है, ध्यानका निमित्तकारण शास्त्रानुसारी गुरु उपदेश है। वह ध्यानका निमित्तकारण है और वह आपके हृदयमें भगवान्‌के आकारको,

भगवान्‌की शक्ल-सूरतको लाकर बैठा देगा। और, जब भगवान्‌की शक्ल-सूरत आपके हृदयमें बैठ जायेगी, तब भगवान् तो बड़े कृपालु हैं-वे कहते हैं, ओह ओ... हमारी तस्वीरसे, हमारे चित्रसे, हमारे आकारसे, हमारी शक्ल-सूरतसे इसको इतना प्रेम है, तो कहेंगे कि इसका हृदय घर बनाने लायक है। जो हमारे चित्रसे इतना प्रेम करता है उसके घरमें चलकर हम स्वयं बैठेंगे।

ध्यानकी एक प्रक्रिया यह है कि चाहे साकारका हो चाहे निराकारका हो, चाहे असङ्गताका हो, चाहे ब्रह्मध्यान हो, आत्मध्यान हो अथवा शून्यध्यान हो। हमको शून्यसे कोई डर नहीं लगता है, क्योंकि शून्यका ध्यान करनेसे प्रपञ्चकी तो निवृत्ति हो जाती है। और, ध्यान करनेवाला दिखता नहीं तो शून्यसे डरनेका क्या कारण है? शून्यसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि शून्यका जो ध्यान करेगा ध्याता, उसका तो नाश होगा नहीं। वह तो शून्यको देखनेवाला, स्वप्नका द्रष्टा, शून्यका द्रष्टा, शून्यका साक्षी है तो डरनेकी कोई जरूरत ही नहीं है। और, संसार उससे मिट जायेगा, इसलिए वह उपयोगी है। वैराग्यमें और स्वरूपज्ञानमें उपयोगी हुआ। अब रहा परमात्मा, सो तो अनुग्रह करके जिसका अन्तःकरण निष्प्रपञ्च हो गया और जिसके हृदयमें आसक्ति नहीं रही सो अनुग्रह विग्रह भगवान् स्वयं उसके हृदयमें आ जायेगा। तो, इसमें डरने-डरानेकी कोई बात नहीं है। आप जिसके अंश हो, आपका जो अंशी है। आप जिसके शरीर हो, आपका जो शरीरी है और जिसमें शरीर-शरीरीभाव नहीं है, वस्तुतः स्वरूपतः परमार्थतः उस परमात्माके नाशका तो कोई डर ही नहीं है। इसलिए आपका शास्त्रानुसारी गुरु उपदेश ही ध्यानका निमित्तकारण होता है। और, उपादान सर्वत्र सद्‌चिदानन्दघन ब्रह्म है।

●

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

हमें क्या पाना है ?–यह मालूम पड़ना चाहिए और क्या छोड़ना है ?–यह भी मालूम पड़ना चाहिए। जिसको दुनियामें कुछ पाना नहीं है, जिसको कुछ छोड़ना नहीं है उसके लिए कोई विधान नहीं होता। उसकी तो सहज स्वभावमें स्थिति होती है। करना तो तब पड़ता है जब कुछ पाना हो, कुछ छोड़ना हो। छुड़ानेके लिए भी करना पड़ता है और पानेके लिए भी करना पड़ता है। पूर्व मीमांसाके आचार्य लोग ध्यानको तो मानते हैं, परन्तु इतनी देरके लिए कि जितनी देरतक मन्त्रोच्चारण करके देवताको हविष्य देते हैं।

यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात् तां ध्यायेद् वषट् करिष्यन्

जब इन्द्र देवताके लिए हविष्य उठावें, हाथमें लें तब इन्द्र देवताका ध्यान कर लें–वज्रहस्तः पुरन्दरः और इन्द्र देवताके मन्त्रका पाठ कर लें। फिर अग्निदेवताके लिए उठावें तो अग्नि देवताका ध्यान करें और उनके मन्त्रका पाठ कर लें। यह ध्यान जो है वह अपूर्वकी उत्पत्तिमें हेतु होता है। यदि सकाम है, स्वर्गादिके लिए है तो अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होगी और निष्काम है तो उससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है–यही पण्डित लोगोंका निर्णय है। जिन लोगोंको सकाम, लौकिक वासनाएँ पूरी करनी होती हैं। स्वर्गकी प्राप्ति करनी हो तो, वे लोग प्रायः–

भूत पिशाच निकट नहीं आवे, महावीर जब नाम सुनावे,
नासै रोग हरे सब पीरा, जपत निरंतर हनुमत वीरा।

यह जो बीज मन्त्र हैं महाकालीके और 'दक्षिणाकाली'के प्रायः उनमें उनका जप करनेकी आस्था होती है। ऐसे तो अपने इष्टदेवकी साधना सभी करते हैं। भक्तिमें अपने इष्टदेवके नामके साथ

चतुर्थी विभक्ति 'नमः' अथवा 'स्वः' पद और विजाती लोग प्रणव 'ॐ'कार लगाकर उसका जाप करते हैं। 'नमः' चाहे पहले बोलें चाहे पीछे बोलें परन्तु जैसा शास्त्रमें मन्त्र हो वैसा करें।

अब ध्यानके लिए जो जप किया जाता है तो इष्टदेवके ध्यानके लिए जप हो तब तो इष्टदेवके नामवाला जप भी चल सकता है। परन्तु वह नियमके अन्तर्गत आता है, ईश्वर प्रणिधानमें आता है। शौच, तपस्या, स्वाध्याय, सन्तोष और ईश्वर प्रणिधान। यह जप करना एक शरीरकी चेष्टा है। इसलिए यमका पालन दूसरोंके साथ व्यवहारमें, नियमका पालन अपने लिए और आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार यह बहिरङ्गयोग है।

यह बहिरङ्ग, अन्तरङ्गका भेद भी बहुत कम लोगोंके ध्यानमें रहता है। शरीरको शान्त-स्थिर कर लेना यह आसन होता है। एक स्थानमें रहे न दाहिने हिले, न बाँयें हिले, न सामने झुके, न आगे झुके, स्थिर हो जाय शरीर। तो एक देशमें जब शरीरको स्थिर करते हैं तो इससे धारणामें सहायता मिलती है। धारणा मनको, एक स्थानमें स्थिर करना है और आसन शरीरको एक देशमें स्थिर करना है। और, प्राणायाम ध्यानमें सहायता करता है; क्योंकि प्राणायाम कालमें होता है। पूरक-कुम्भक-रेचक, रेचक-कुम्भक-पूरक वह आगे-पीछे होता है। प्राणायाम कालमें होता है और ध्यान भी कालमें होता है। प्रत्येक वृत्तिका प्रवाह अपने इष्टदेवकी ओर हो। और प्रत्याहार समाधिमें सहायक होता है। बहिरङ्ग है प्रत्याहार और अन्तरङ्ग है समाधि। बहिरङ्ग है प्राणायाम और अन्तरङ्ग है ध्यान। और बहिरङ्ग है आसन और अन्तरङ्ग है धारणा। ये तीन बहिरङ्ग साधन तीन अन्तरङ्ग साधनोंमें सहायक होते हैं। तो, केवल किताबोंमें जो लोग योग पढ़ लेते है 'योगा', उनकी समझमें यह सब बात नहीं आती है।

अब आपको ध्यानके लिए उपयोगी एक-दो बात बताते हैं जो सबके कामकी होती है। एक तो भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिए।

जेहि बाँध्यो सोइ छोरै

ध्यानकी साधनाके लिए प्रार्थनामें चार बात होती है। एक तो अपने दैन्यका निवेदन। अपनी दीनता प्रकट करना। जैसे-

पापोऽहं पापकर्माहम्।

हरि हौं सब पतितनिको नायक। मो सम कौन कुटिल खल कामी।।

तो कोई पूछे कि इससे क्या होता है ? देखो इससे अभिमान तो साफ-ही-साफ टूटता है लेकिन इसकी जो फलवृत्ति है उसपर ध्यान दो। हम भगवान्के सामने खड़े होकर बोले कि-'पापोऽहं पापकर्माहम्' सो, मनमें आवेगा कि अब मैंने भगवान्के सामने अपनेको पापी स्वीकार कर लिया तो मैं निष्पाप हो गया। अगर यह बात आपके मनमें न आती हो, तो 'पापोऽहं पापकर्माहम्' यह फल नहीं दे रहा है। साधन तो हो रहा है परन्तु फल नहीं दे रहा है। जब भगवान्के सामने अपनेको बुरा स्वीकार कर लिया तो, करुणा-वरुणालय, क्षमाशील भगवान् क्षमा कर देंगे और हमको निष्पाप कर देंगे।

बच्चा आकर माँके सामने खड़ा हो जाय कि हमको यह दाग (कालिख) लग गयी है माँ, तो माँ उसको तुरन्त धो देती है। माँके सामने कालिख ले जाकर दिखाना उसको धुलवानेका उपाय है। उसको बोलते हैं दैन्य निवेदन।

प्रार्थनामें पहली बात है कि भगवान्के सामने अपनी दीनताका निवेदन करना। दूसरी बात है अभिलाषा। हम भगवान्से क्या चाहते हैं ? कि हमको आत्मज्ञान दे दो, हमको समाधि लगा दो, हमें अपनी गोदमें ले लो, हमें अपने हृदयसे लगा लो, हमारे सिरपर हाथ रख दो। यह अभिलाष-निवेदन प्रार्थनाका दूसरा रूप है। प्रार्थनाका तीसरा रूप है, भगवान्के गुणानुवादका स्मरण, इससे तत्

पदार्थके बोधमें और मनोवृत्तिके परमात्मामें लगनेमें मदद मिलती है। और, प्रार्थनाका चौथा रूप है 'मौन'। बिलकुल चुप हो जाना।

एक महात्मा कहा करते थे कि 'ईश्वर तभीतक चुप है जबतक तुम बोल रहे हो। इतना भलामानुष है, इतना सज्जन है कि जब एक सामनेवाला आदमी बोलता जा रहा हो तो दूसरा क्या बोले? उसको तो चुप होकर सुनना ही पड़ता है। तो यह जीव बोलता जा रहा है, बोलता जा रहा है इसलिए ईश्वरकी आवाज सुनायी नहीं देती। यदि तुम अपना बोलना बन्द कर लो, मौन हो जाओ तो ईश्वर तुमसे बोलने लगेगा, ईश्वरकी आवाज सुनायी देने लगेगी। तो, ये प्रार्थनाके चार रूप हैं। 1. दैन्य निवेदन, 2. अभिलाष निवेदन, 3. गुणानुवाद, और 4. मौन। यह चारों ध्यानमें सहायक है।

दैन्य निवेदनसे पवित्रता आती है। अभिलाष निवेदनसे उद्देश्य बनता है, गुणानुवादसे परमात्माके प्रति श्रद्धा बनती है और मौनसे शान्ति आती है। और, शान्तिमें परमात्मा प्रकट होता है। जो लोग ध्यान करना चाहते हों, उन लोगोंको प्रार्थनाके इन चारों रूपों पर ध्यान देना चाहिए। यह नहीं कि हम 'पापोऽहं पापकर्माहम्' करेंगे तो पापी हो जायेंगे। यह तो वे लोग कहते हैं जिनके यहाँ ध्यान-समाधिकी साधना ही नहीं मानी जाती है। और कोई इतने बड़े हों कि अपनेको नित्य-बुद्ध-शुद्ध ब्रह्म ही समझते हों तो, 'पापोऽहं पापकर्माहम्' न करें, उनको करनेके लिए कौन मजबूर करता है ? यदि अपने अन्दर दोष मालूम पड़ते हों तो भगवान्के सामने स्वीकार करके उनको दूर कर लेना चाहिए।

ध्यानके लिये खास मददगार भोजनकी पवित्रता है। जैसे शरीरको स्नान कराते हैं न, ऐसे भीतरसे भी शरीरका स्नान होना चाहिए। तो हमारे वैष्णवाचार्योंने भोजनमें चार अशुद्धि मानी है। एक अशुद्धि तो यह है कि वह वस्तु ही अशुद्ध हो जिसका भोजन बन रहा

है। वह वस्तु जन्मसे ही अशुद्ध हो। अब आजकलके बाबू लोगोंके सामने यह बड़ी भारी समस्या है। एक बड़े पढ़े-लिखे सज्जन, वरिष्ठ पुरुष हैं-बोले, महाराज हमारे कुछ मित्र आये हैं विदेशोंसे तो, वे कहते हैं कि हम स्वामीजीसे बात तो करना चाहते हैं परन्तु हमारा जो खान-पान है व्यक्तिगत जीवन है उसमें वे कोई हस्तक्षेप नहीं करें तब। अब यह शर्त रखकर वे हमारे पास बात करनेके लिए आना चाहते हैं। तो, वे लोग ध्यान भी कोई ब्रह्मात्मैक्यबोधके लिए नहीं करते हैं। और, न वे लोग द्रष्टा अपने स्वरूपमें स्थित हो जाय उसके लिए करते हैं। वे तो आसन करते हैं, प्राणायाम करते हैं, ध्यान करते हैं, इसलिए कि हमारा जो शरीर है, वह हृष्ट-पुष्ट रहे, स्वस्थ रहे। घण्टे-घण्टे, दो-दो घण्टे व्यायाम करते हैं और दम घोटते हैं साँसकी कसरत करते हैं; परन्तु उनका उद्देश्य कोई यह नहीं है कि हमको ब्रह्मात्मैक्यका बोध हो जाय इसलिए उनको मना करनेकी क्या जरूरत है ? जब हमारे पास आकर पूछेंगे कि अन्तःकरणशुद्ध कैसे हो ? हमारा द्रष्टास्वरूपमें अवस्थित कैसे हो ? हमारे ऊपर भगवान् प्रसन्न कैसे हों ? बाबू लोग कहेंगे कि तब तो सारी दुनिया ही छूट गयी! अब तो बिना भगवान्‌के रहेगी सारी दुनिया! आप रखो अपना भोजन पवित्र! तो, जिनके चित्तमें प्रचारकी वासना बहुत ज्यादा होती है, उनके मनमें ऐसी बात आती है। ऐसे ईश्वर तो नहीं छूटनेवाला है। ईश्वरको छोड़कर कोई कहीं रह सकता है ?

अच्छा, जो भोजनमें चार प्रकारका दोष मानते हैं। एक तो जन्मसे ही वह वस्तु अशुद्ध हो हम क्या बतावें आपको ? हम एक बड़े शहरमें गये। तो वहाँका सारा मैल, कचरा जो है उसको एक जगह जहाँ डाला जाता है वह गन्दा नाला था। और गोभीके फूल जो बड़े-बड़े होते हैं वे उसमें कभी-कभी डूब जाते हैं। वह तो खैर, नैमित्तिकदोष है। बहुत-सी ऐसी वस्तुएँ होती हैं जो जन्मसे ही

अशुद्ध होती हैं। पशुओंमें भी टीबी होता है, उनको दमा होता है, उनके मांसमें बड़े-बड़े दोष होते हैं। जन्मजात अशुद्ध होता है। मनुष्यको देवत्वकी ओर जाना है कि पशुत्वकी ओर जाना है? अच्छा, तो जन्मसे अशुद्ध भोजन न हो। यह ध्यान रखा जाय।

दूसरी बात है भोजनमें कि, वह निमित्तसे अशुद्ध न हो। उसमें कोई गन्दी चीज पीछेसे डाल न दी गयी हो। और तीसरा, आश्रय भी अशुद्ध न हो। जिस भूमिपर बने, जिस बर्तनमें बने, जो आदमी बनावे उसको भी पवित्र होना चाहिए। और, चौथी बात कि, कमायी अपने हककी होनी चाहिए भोजनमें। तब ध्यानमें मदद मिलेगी। तो, जातिदोष, निमित्तदोष, आश्रयदोष और अपने हककी कमायी ये चार बातें भोजनमें ध्यान रखनेकी होती हैं। यह हम इसलिए बता देते हैं, कि आगे यह सब बातें नुमाइशमें देखनेको मिलेगी या टीवी पर दिखायी जायेगी, या इतिहासमें पढ़ी जायेगी कि पहले ऐसे माननेवाले पुराने लोग भी थे। अब आजकलके बच्चोंको जो राजा लोग पहले मुकुट बाँधते थे अपने सिरपर और ऐसा-ऐसा उनका ठाठ था यह तो किताबोंमें ही पढ़नेको मिलेगा न! देखनेको कहाँ मिलेगा! यह जो पवित्रता सम्बन्धी चर्चा है उसका आगे ऐतिहासिक लोग ऐसा अनुसन्धान लिखेंगे, ऐसी थीसिस लिखी जायेंगी कि इसका बीज बना रहे। आप लोग घरमें जाकर ऐसा करना ऐसा हमारा कोई आग्रह नहीं है। आप तो वही करना जो करते आये हो।

शौचानाम् अपि सर्वेषां अर्थशौचम् परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।।

(मनुस्मृति)

मनुस्मृतिमें यह श्लोक है।

संसारमें पवित्रताके जितने नियम हैं, संविधान हैं उनमें धनकी पवित्रता सबसे बड़ी पवित्रता मानी गयी है। जिसका धन

पवित्र है, वह पवित्र है। और, जो हाथमें बहुत मिट्टी लगाता हो, हमारे वृन्दावनमें बहुत सेठोंने कोठी बनवायी। तो, माटी तो सत्रह बार हाथमें लगाते हैं, क्योंकि सत्रह बार लगानेका शास्त्रमें विधान है कि दसबार एक हाथमें और सात बार दूसरे हाथमें। माटी सत्रह बार लगाते हैं, स्नान तीन बार करते हैं, सन्ध्या-वन्दन तीन बार करते हैं और अपरसके जो कपड़े होते हैं वह पहनते हैं। परन्तु, महाराज जब टेलीफोन पर बैठते हैं तो कलकत्ता वाले लोग जानते हैं, और वो उसमें खरीदा-बेचा हो जाता है!

योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिः

तो, माटी लगानेसे ही वे पवित्र नहीं हो जायेंगे। वह भी लगाना आवश्यक है परन्तु इसका भी एक विज्ञान है। आपके हाथमें कोई मैल लगती है तो कोई सुगन्धित वस्तु उसपर लगा दो या साबुन लगा दो, या तेल लगा दो तो दुर्गन्ध नहीं मालूम पड़ेगी, परन्तु जो तेल लगाया, साबुन जो लगाया वह कार्य है। तो, कार्यसे कार्यकी शुद्धि नहीं होती है, कारणसे कार्यकी शुद्धि होती है। जब कोई भी कार्य अपने कारणमें लीन हो जाता है तब शुद्ध हो जाता है। माटीसे आयी हुई गन्दगी तब शुद्ध होगी जब वह माटीमें मिल जायेगी। एक ग्लास पानी यदि गङ्गाजीमें डाल देंगे तो, वह शुद्ध हो जायेगा। कारणमें मिलनेसे कार्य शुद्ध होता है।

पवित्रताका नियम यह है कि हमारा भोजन शुद्ध हो और, उद्देश्य केवल दैहिक पुष्टि न हो।

जैसे, योगाभ्यासका उद्देश्य कि, हम आसन करते हैं, हमारा देह हृष्ट-पुष्ट हो जाय। अखाड़ेमें जैसे पहले व्यायाम लोग करते थे, अब आप कमरेमें करते हैं। और, यह ठीक है कि उससे शरीरके रोग ठीक होते हैं, यह हम मानते हैं। परन्तु अब यह कहो कि उस आसनसे ध्यान लग जायेगा, तो उस आसनसे ध्यान नहीं लगेगा। उस

प्राणायामसे भी ध्यान नहीं लगेगा। तो, यह समाधि लगानेकी स्वरूप स्थितिकी प्रक्रिया नहीं है। साधनका फल जब अन्तःकरणमें होता है तब वह आध्यात्मिक हो जाता है। और साधनका फल जब हड्डी-मांस-चाममें होता है जब बाहर दुश्मनको हरानेमें होता है, या रुपया लानेमें होता है तब इससे आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती है। जब साधनका प्रयोग...ऐसे-ऐसे मन्त्र हैं जिनसे पैसा आ जाय, ऐसे मन्त्र हैं जिनसे रोग दूर हो जाय, ऐसे मन्त्र हैं जिनसे शत्रु पराजित हो जाय। तो, जिन साधनोंका फल भौतिक होता है, भौतिक फलके लिए प्रयुक्त साधन आध्यात्मिक उन्नतिका हेतु नहीं होता। कभी घटतालीय न्यायसे यदि कभी उस साधनसे अध्यात्मकी शुद्धि हो जाय तब भी वह लोगोंको उपदेश करने योग्य नहीं होता है।

इसलिए ध्यानके मार्गमें चलना हो तो, यह भी सावधानी बरतनी है कि हमारा उद्देश्य भौतिक न हो जाय, आध्यात्मिक रहे। अखबारमें नाम छपे, कि लोग हमें माला-फूल चढ़ावें कि छत्र-चँवर लगावे, कि सिंहासन पर बैठावें, कि हमको-हिज हाईनेस (His Highness) बोलें-यही शब्द है न ? भौतिक उद्देश्य होनेपर साधनका फल जड़ताकी ओर जाता है, आध्यात्मिकताकी ओर नहीं जाता है। इसलिए साधनका फल, हम खायें तुलसीका पत्ता परन्तु मलेरिया दूर करनेके लिए नहीं, ईश्वरकी प्रसन्नताके लिए और अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए। तो, वही तुलसीका पत्ता हमारे अन्तःकरणको शुद्ध करेगा और ईश्वरको प्रसन्न करेगा तो हमारी प्रसन्नता ही भगवान्‌की प्रसन्नता है। भगवान् प्रसन्न कहाँ होते हैं ? उन्होंने अपना अन्तःकरण तो अलग रखा नहीं है। हमारे अन्तःकरणमें बैठते हैं और वहाँ वे प्रसन्न होते हैं तो हम प्रसन्न हो जाते हैं।

अब आपको आसनकी बात जो पहले सुनायी, आसनमें स्थान विशेषमें शरीरको स्थिर करना होता है। आसनमें तीस-पैंतीस

आसनका अभ्यास पहले कर लेते हैं। तो, इसमें किस आसनसे कौन-सा रोग दूर होता है यह जानना जरूरी है सूर्यभेदी, उज्जायी, भस्त्रिका आदि प्राणायामोंमें किस रोगमें कौन काम देता है वह भी जानकारोंसे पूछकर करना अपने मनसे नहीं करना चाहिए। नहीं तो जोरसे प्राणायाम करने पर किसीकी आँत उतर जाती है, किसीके कानका पर्दा फट जाता है, किसीके सिरकी नस रुक जाती है। तो, अनजानमें प्राणायाम करने पर हानि होती है। जैसे, होमियोपैथी दवाके बारेमें दावा किया जाता है न कि नुकसान नहीं करती है वैसे जो लोग योगाके बारेमें यह दावा करते हों कि यह हानि नहीं करता वे गलत कहते हैं भला। योगासे भी हानि होती है और होमियोपैथीसे भी हानि होती है। एक महात्माने दो गोलीकी जगह चार गोली खा ली थी, तो तीन-चार महीने तक ऐसा भोगते रहे, ऐसा भोगते रहे कि जिसकी कोई हद नहीं। जो चीज शरीरमें जाकर कोई रासायनिक प्रक्रिया करती है, रोग दूर करनेके लिए भीतर जाकर कुछ करती है उसकी हरकत अगर विपरीत होगी तो वह नुकसान भी कर सकती है। तो, प्राणायाम भी आप गलत करेंगे तो वह भी आपके शरीरमें जाकर कोई-न-कोई हानि पहुँचा सकता है।

आपको एक सच्ची बात सुनाते हैं। समूचे योगदर्शनमें केवल चार प्रकारके प्राणायामोंका ही उल्लेख है। पाँचवें प्रकारका प्राणायाम है ही नहीं। वह भी असलमें तीन ही हैं और वे तीनों मिलकर भी असलमें एक ही हैं। एक ही प्राणायामका वर्णन योगदर्शनमें है। यह दूसरी जो पन्थाई पुस्तकें हैं, जैसे 'गोरक्षपद्धति' है वह गोरखनाथके पन्थकी पुस्तक है, घेरण्डसंहिता है तो वह योगपन्थकी पुस्तक है, दत्तसंहिता है, तो दत्तात्रेयपन्थकी पुस्तक है, हठयोग संहिता भी है जिसमें हठयोग पद्धति है।

एक होता है शास्त्र। वह सम्पूर्ण मनुष्य जातिको

सार्वकालिक, शाश्वत सत्यका उपदेश देता है। यह वर्णाश्रम पन्थ नहीं है। आश्रम पन्थ नहीं हुआ करता, वर्ण पन्थ नहीं हुआ करता। यह पन्थ नहीं है। ऐसे शास्त्र जो होता है वह सर्व विषय सम्बद्ध होता है। और, प्रकरण जो होते हैं वे एक-एक विषयके होते हैं। यह शास्त्र और प्रकरणमें भी भेद होता है। तो, यह जो पन्थ है वह प्रकरण है। उनका शास्त्रोंके साथ समन्वय करना पड़ता है।

तो, आओ आपको पूरक, कुम्भक, रेचक और कुम्भकके दो भेद–एक अन्दर, एक बाहर–उसको बताते हैं। हमारे यहाँ ऐसी बढ़िया प्रथा थी कि, ब्राह्मणके लिए आठ–दस वर्षकी उम्रमें ही बालकको सन्ध्या–वन्दन, यज्ञोपवीत संस्कार, गायत्रीजपके बीज डाल देते थे। और, यह क्रियाशक्तिका नियन्त्रण करता है। हमारे जमानेमें राममूर्ति बहुत प्रसिद्ध थे, वे अपनी छाती पर हाथी चढ़वा लेते थे ऐसा सुना था। हमारे गाँवमें एक देहाती था वह साँस रोक लेता था और पत्थरकी पटिया अपनी छातीपर रखकर और उसपर रखवाता ऊखल और ऊखलमें ईंट डालकर मूसलसे क़ूटवाता था। साँस रोककर लेटा रहता था। एक बार साँस छूट गयी महाराज और वह ऊखल छातीपर और ईंट कूटी जा रही थी इतनेमें साँस छूट गयी एक बार, तो खून निकलने लगा और वहीं मर गया। यह हमारे जीवनकालकी घटना है। मैंने देखी है इसलिए आपको सुनाया।

तो, इसमें भी पहले एकमात्रामें प्राण लेना चाहिए और चार मात्रामें रोकना चाहिए और दो मात्रामें निकालना चाहिए। महाराज, गिनती कैसे करें ? घड़ी देखते रहेंगे क्या प्राणायाम करते समय ? नहीं, घड़ी मत देखिये। आप एकबार गायत्रीका उच्चारण करके पूरक कर लीजिये, अगर आप गायत्रीका उच्चारण करते हों, यज्ञोपवीत आदिका संस्कार सम्पन्न हों और चारबार गायत्रीका जपकरके साँसको रोक लें और दो बार गायत्रीका जप करके निकाल

दें। अब ऐसे ही आप किसी भी मन्त्रके साथ कर सकते हैं। राम...राम...जय जय सीतारामके साथ कर सकते हैं। कृष्ण.... कृष्णके साथ कर सकते हैं। बस, उसका नियम यह है कि एकमात्रामें वायुको ग्रहण करें, चार मात्रामें रोकें और दो मात्रामें निकालें। अब इसमें कठिनायी सबसे ज्यादा होती है निकालनेमें, फट्से निकल जाता है। तो, अभ्यास रेचकमें ज्यादा करना पड़ता है।

केवले कुम्भके सिद्धे किं न सिद्धयति भूतले।

यदि, केवल कुम्भक सिद्ध हो जाय तो क्या सिद्ध नहीं हो सकता?

तो, यह दोनों ओरसे किया जाता है, पहले रेचक कर दिया बाहर हवा निकाल दी और बाहर ही रोक ली और फिर पूरक लिया और अन्तःकुम्भक किया और फिर रेचक लिया और फिर बाहर कुम्भक लिया। तो बच्चोंको अन्तःकुम्भक ही बताया जाता है, बाह्य कुम्भक नहीं बताया जाता है। इससे होता क्या है ? इससे आप अपने शरीरकी किसी नस-नाड़ीको कभी रोक सकते हैं। माने, शरीरकी चेष्टा पर नियन्त्रण हो जाता है। आसनसे क्रियापर नियन्त्रण होता है, प्राणायामसे चेष्टापर नियन्त्रण होता है। चाहो तो नाड़ीको रोक सकते हैं। बोले-प्राण पर काबू पानेमें क्या फायदा है ? कि इससे फायदा यह है कि आप कभी अपनी जीभको भी रोक सकेंगे और कभी मूत्रेन्द्रियको भी रोक सकेंगे। कभी रसनेन्द्रियको तो कभी जननेन्द्रियको भी रोक सकेंगे। यदि प्राण पर आपका काबू हो जाय तो प्राणसे ही तो सारी चेष्टाएँ होती हैं। इसलिए आप अपने शरीरके किसी भी अवयवको प्राणके द्वारा वशमें कर सकते हैं।

हमारे स्वामी अनन्तानन्दजी यहीं बैठे हैं। वे अपने कानको ऐसे नचाते हैं महाराज, जैसे कोई हाथी नचावे। ये अपने दोनों कानको नचा सकते हैं। तो, प्राण ही असलमें शरीरमें चेष्टा उत्पन्न

करता है। शरीरका फड़कना, आँखका उठना-गिरना, नाड़ीका चलना, पाचनका होना, बालका बढ़ना, खूनका चलना यह सब प्राणके द्वारा होता है। जब प्राण वशीभूत हो जाता है तब चेष्टाको वशमें कर सकते हैं। चेष्टा दूसरी चीज है और क्रिया दूसरी चीज है–यह तो आपलोग जानते ही होंगे। क्रिया हमारे करनेसे होती है और चेष्टा अपने आप होती रहती है। जान–बूझकर जब की जाती है तब संकेत आदिके लिए की जाती है नहीं तो चेष्टा जो है जैसे पलकोंका गिरना, साँसका चलना, रुधिरका अभिसरण, पाचन, मलाभिसरण, रोवेंका बढ़ना यह सब शरीरमें होता रहता है अपने आप परन्तु प्राणवायु वशमें हो जाय तो बालका बढ़ना रोक सकते हैं, खूनका चलना रोक सकते हैं, मलापसरण रोक सकते हैं–यह आगे चलकर समाधिमें बहुत बड़ा काम देता है। भूख–प्यासको भी इसके द्वारा रोक सकते हैं, कुछ हदतक।

अब कहो कि हम सीधे ध्यान ही करेंगे। यह प्राणायामके चक्करमें पड़नेवाले नहीं है। तब इसका भी शास्त्रमें वर्णन है। आप यह प्राणायाम मत कीजिये, शान्तिसे बैठ जाइये। यह नहीं कि कहीं आँख खोल दिया, कहीं आँखमें अँगुली डाल दी, कहीं सिर हिला दिया ऐसा नहीं। यह जब आसनमें बैठेंगे तब कई उपद्रव आयेंगे। मालूम पड़ेगा कि नाकमें मक्खी घुस रही है, तो उँगली जायेगी वहाँ। अब जब उँगली वहाँ जायेगी तो मालूम पड़ेगा कि मक्खी–वक्खी कुछ नहीं है वह तो आपका मन ही मक्खी बनकर घूस रहा था नाकमें। ऐसा मालूम पड़ेगा कि यह चींटी काट गयी, यह मच्छर काट गया। जब हाथ वहाँ ले जायेंगे तो चींटी, मच्छर कुछ नहीं, वह मन ही काट जाता है। जब मनको समेटने लगते हैं तब यह उनके काटनेका अनुभव होता है। इसमें भी सह लेना चाहिए, उसके द्वारा तप सम्पादन करना चाहिए। सह लेना चाहिए। उसके लिए न तो भौंहोंको भटकानेकी जरूरत है, न पलक नचानेकी जरूरत है, न हाथ

उठानेकी जरूरत है। शान्तिसे बैठे हैं। जो होनी होय सो होय। ऐसे कर लेना चाहिए।

आज तो हम प्राणायाम सुनाते हैं। प्राणायाम क्या है ? ईश्वरकृपासे साँस तो आपकी चलती ही है। असलमें कोई चीज नयी नहीं करनी पड़ती है। जरा अपने मनको आप लगाइये कि साँस कहाँसे उठती है। और, वह नाभिदेशमें कैसे आती है ? हृदयदेशमें कैसे आती है ? कण्ठदेशमें कैसे आती है ? भ्रूमध्यमें कैसे आती है ? इसके लिए शास्त्रमें मूलाधारसे लेकर पिङ्गला और उन्मना अमना पर्यन्त बारह स्थान बताये हैं। साँस तो चल ही रही है, फिर वहाँसे लौटकर नासिकाके द्वारा बारह अङ्गुष्ठ तक स्वाभाविक साँस बाहर जाती है। ज्यादा जाती हो तो समझना चाहिए कि कोई भावुकता आ गयी है। कामवासना आनेपर, क्रोध आनेपर, दौड़नेपर, परिश्रम करने पर, खानेपर साँसकी गति कुछ बढ़ जाती है। तो, जब आप ध्यान करनेके लिए बैठें तो नासिकासे बारह अङ्गुष्ठ तक साँस निकलती रहती है।

देखो, प्राणायाम बताते हैं। अब इसमें करना क्या है ? कि करना कुछ नहीं है केवल ध्यान, अवधान, तवज्जू, ख्याल करना है। केवल आपको अपनी साँसके साथ नाकके द्वारा बाहर निकलना, अपने ख्यालको निकालना, तवज्जू देना और बारह अङ्गुल जानेके बाद जरा एक सेकेण्ड, दो सेकेण्ड रोक दें। अपने आपको, अपने ख्यालको रोक दो। और फिर वहाँसे लौटें तो उसके साथ-ही-साथ आज्ञाचक्रमें होकर, उसी रास्तेसे जहाँसे साँस उठी थी वहाँ चले जाओ। करना कुछ नहीं। साँसको छेड़ना नहीं है, उसपर जोर नहीं लगाना है, केवल ख्याल अपना साँसके साथ जोड़ना है। अब उसमें होगा क्या ? अब इसका विज्ञान क्या है ? इसका विज्ञान यह है कि साँस भूल जायेगी और ख्याल-ही-ख्याल रहेगा। ध्यान-ही-ध्यान रहेगा, साँस छूट जायेगी। साँस आपकी सहज चलती रहेगी और आप

ध्यानमें मग्न हो जाओगे। तो, बलवान् कौन होगा ? ध्यान, क्योंकि आप चेतन स्वयं, आप स्वयं चेतन होकर अपना अवधान, अपना ध्यान, अपनी सूरत, अपनी तवज्जू अपना ख्याल इसमें लगा रहे हैं, इसलिए ध्यान आपके साथ चिपक जायेगा और साँस शरीरमें छूट जायेगी। या बहुत होगा तो प्राण और मन एक होकर प्राण भी शान्त हो जायेगा और मन भी शान्त हो जायेगा। अब इसमें कुछ नहीं करना पड़ेगा, केवल साँसपर दृष्टि रखने मात्रसे ही आपकी मनोवृत्ति शान्त हो जायेगी।

हमारे एक योगी मित्र हैं। विदेशोंमें तो बहुत पुजते हैं- योगीराज हैं, तो एकदिन उनसे बात हुई। वे कहने लगे चित्त निरोध ऐसे होता है, वैसे होता है। मैंने कहा–बाबा, पतञ्जलिजीने तो चित्तनिरोधकी चर्चा नहीं की है, चित्तवृत्तिनिरोधकी चर्चा की है। 'योगः चित्त-वृत्ति निरोधः'-चित्तका निरोध नहीं होता, वृत्तिका निरोध होता है। वृत्ति माने बर्ताव। जब आप सत्य बोलते हैं, तो असत्यका निरोध होता है। जब आप अहिंसाका व्रत धारण करते हैं तो हिंसाका निरोध होता है। जब आप शौच धारण करते हैं, तो अपवित्रताका निरोध होता है। जब आप आसन धारण करते हैं तो शरीरकी चञ्चलताका निरोध होता है। यह हिलना, डोलना यह शरीरकी वृत्ति है। आसनसे शरीरकी वृत्तिका निरोध होता है।

शरीरकी वृत्ति क्या है ? 'उत्क्षेपण' ऊपर फेंकना, 'अपक्षेपण' नीचे फेंकना, 'आकुञ्चन'-सिकुड़ना, 'प्रसारण' फैलाना और चलना यह शरीरकी वृत्ति है। शरीरमें यह पाँच कर्म होते हैं। तो, जब आप आसन करते हैं तो शरीरकी वृत्तिका निरोध होता है। जब, प्राणायाम करते हैं तो प्राणका निरोध नहीं होता, वह तो रहता ही है शरीरमें। प्राण नहीं होगा तो मर ही जायेंगे। प्राण रहता है परन्तु प्राणकी वृत्तिका माने व्यवहारका निरोध हो जाता है। और, जब प्रत्याहार करते हैं तो इन्द्रियोंका निरोध नहीं होता, इन्द्रियोंकी वृत्तियोंका निरोध होता है। असलमें, इन्द्रियाँ सब-की-सब असङ्ग हैं।

जैसे आत्मा असङ्ग है, वैसा ही है। इन्द्रियाँ भी सब असङ्ग हैं। आजतक हजारों रूप आपके सामने आये और गये आँख किसीके साथ निकलकर गयी नहीं, जहाँ कि तहाँ है। अगर किसीके साथ चिपक जाती तो वह सुन्दरताके साथ चली जाती न ? कान किसी शब्दके साथ चिपका नहीं, असङ्ग है। यह तो चैतन्य ही इस गोलकमें आकर कान बना है। चैतन्य ही इस गोलकमें आकर आँख बना है। चैतन्य ही इस गोलकमें आकर मन बना है। चैतन्य ही इस गोलकमें आकर जीभ बना है। तो, चैतन्य तो असलमें होता है असङ्ग। तो, यह जो लोग मानते हैं कि हम आसक्त हो गये या हमको आसक्ति हो गयी। तो, किसकी आसक्ति हो गयी? रूप आँखमें चिपका कि आँख रूपमें चिपकी ? कान शब्दमें चिपका कि शब्द कानमें चिपका ? मन किसीके साथ चिपककर कहीं चला गया कि जहाँ-का-तहाँ है? तो, असलमें इन्द्रियाँ भी चैतन्यका एक स्थान विशेषमें, अवयव विशेषमें चैतन्यका होना ही इन्द्रियका लक्षण है। इसलिए कहीं भी इन्द्रिय चञ्चल नहीं होती है। इन्द्रियाँ बिलकुल अपने स्थानपर रहती हैं।

प्रत्याहारका अर्थ यह है कि इन्द्रियकी जो वृत्ति है, शब्द और इन्द्रियोंका जो संयोग है, उस संयोगको काट दिया जाय। इसको प्रत्याहार बोलते हैं। इन्द्रियोंसे विषयोंका आहार मत करो। आहारका उल्टा है प्रत्याहार। उनको जहाँ-का-तहाँ रहने दो। शब्द-शब्दमें रहे, स्पर्श-स्पर्शमें रहे, रूप-रूपमें रहे, रस-रसमें रहे, गन्ध-गन्धमें रहे और हमारी इन्द्रियाँ अपनी इन्द्रियोंमें रहें। यही जाकर बादमें प्रत्याहारका अन्तरङ्ग रूप समाधि हो जायेगा। और, प्राणायामका अन्तरङ्ग रूप ध्यान हो जायेगा और आसनका अन्तरङ्ग रूप धारणा हो जायेगा।

आगे आपको कल सुनावेंगे!

●

प्रवचन : 7

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

संस्कृत भाषामें 'आहार' शब्दका अर्थ होता है कि हम अपनी इन्द्रियोंसे संसारके विषयोंको देख-देखकर जो अपने अन्तःकरणमें इकट्ठा करते हैं उसका नाम 'आहार' होता है- 'आह्रियन्ते इति'-जिनका आहरण किया जाता है। जैसे मुखसे हम भोजन करते हैं वैसे ही आँखसे भी भोजन करते हैं, कानसे भी भोजन करते हैं, त्वचासे भी भोजन करते हैं। भोजन तो होता ही रहता है। जिसका संस्कार अपने अन्तःकरणपर पड़ रहा है, उसका भोजन हो रहा है। 'आहार' शब्दका शङ्कराचार्यने यह अर्थ किया है-

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिशुद्धौ सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

(छान्दोग्यपनिषद् 7.26.2)

और, यह हृदयको हृत् जो कहते हैं वह भी इसीलिए, हृत् कहते हैं कि 'आहरति संस्कारान्'-'हरति संस्कारान्' यह लूट लेता है महाराज! किसीको देखा और वह अच्छा लगा, उसको प्रिय माना और उसको तो पता ही नहीं है और लूटके उसने उसको अपने भीतर बसा लिया। उसको तो मालूम ही नहीं है। लुटेरा है इसलिए उसको हृत् कहते हैं। जिसको लूटता है उसको खुद मालूम नहीं पड़ता, और वह स्वयं लूट-लूटकर इकट्ठा करता जाता है। तो, आहार शब्दका अर्थ होता है कि हम इन्द्रियोंके द्वारा संसारमें जो भी विषय ग्रहण करते हैं वह सब आहार ही है।

तो, एक होते हैं 'अविविक्ताः' जो विवेक नहीं करते हैं कि हमको क्या चाहिए? वे सब खल ही हैं। पशुओंमें भी विवेक होता है। जो चीज खानेकी नहीं होती है उसको सूँघकर छोड़ देते हैं।

उसको नहीं खाते हैं। कोई जङ्गली घास हो तो पशु सूँघकर विवेक करके उसको छोड़ देते हैं। हमने गाँवमें देखा है। तो, जो अविविक्त आहार है कि बिना विवेकके ही, बिना कुछ सोचे-विचारे जो कुछ मिला उसको इन्द्रियोंसे ग्रहण किया और उसका जो कुछ संस्कार है उसको ग्रहण किया। वह तो पशुकी कोटिमें जाता है–'अविविक्ताः'।

और, एक होते हैं 'दुष्टाहार'। जानते हैं कि यह पदार्थ दूषित है, लेकिन उसीको ग्रहण करते हैं। जो नहीं देखना चाहिए उसीको देखते हैं। जो नहीं सुनना चाहिए उसको सुनते हैं। आपके हृदयमें अशान्ति करनेवाली जो वस्तु है उसको देखते, सुनते, खाते, पीते हैं। ऐसा फर्निचर हो जाय हमारे घरमें, ऐसे कपड़े आ जायँ हमारे घरमें, ऐसी शान-शौकत आ जाय हमारे घरमें, आँखसे देखकर ऐसा होता है। तो, उसके न होनेकी हीनता आपके हृदयमें आवेगी और बहुत दुःख देगी। यदि उसको पानेकी कोशिश करेंगे ईमानदारीसे और वह चीज नहीं मिलेगी तो उसके लिये बेइमानी करेंगे। तो, यह जान-बूझकर वासना बढ़ानेवाला जो आहरन है–कानसे सुनना, आँखसे देखना इसमें समय खराब होवे, इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो, मन बिगड़े। जानते हैं, फिर भी उसीको ग्रहण करते हैं–यही दुष्टाहार है।

और, एक होता है 'शुद्धाहार'। 'शुद्धाहार' माने कानसे बढ़िया बात सुनना जिससे हमारी वासना कम हो। आँखसे बढ़िया वस्तु देखना। जिह्वासे शुद्ध वस्तुका ग्रहण करना। त्वचासे शुद्ध वस्तुको छूना। माने, भोजनमें केवल भोजन पर ही दृष्टि नहीं रखनी है, हर एक इन्द्रियसे, प्रत्येक इन्द्रियसे जो ग्रहण करते हैं उसमें विवेककी दृष्टि रखनी चाहिए। माने वह अविवेक गया। कौन-सा अविवेक ? वह पशुवाला जो घास-फूस, खलीवाला अविवेक था; वह अविवेक दृष्टि और दुष्टाहार छोड़कर 'शुद्धाहार' करें। इसमें भी वस्तुका सौन्दर्य नहीं देखना चाहिए ज्यादा। जैसे कोई बहुत बढ़िया

फल है, पेड़ पर लगा हुआ है। उसकी शक्ल–सूरत अच्छी है, उसका स्वाद अच्छा होता है यह मालूम है और बिलकुल परिपक्व हो गया है, खाने योग्य और वह हमारे हाथकी पहुँचके भीतर है। हम उसको तोड़कर खा सकते हैं। तो, केवल वह चीज बढ़िया है इसलिए हमारे खाने योग्य नहीं हो जाती है। उसपर न्यायोचित हमारा अधिकार होना चाहिए। धर्मानुकूल अधिकार होना चाहिए। नहीं तो ध्यानमें भी आप अच्छी चीजको पकड़ नहीं सकेंगे। अच्छी चीजको छोड़ देंगे आप। एक ध्यान नहीं कर सकेंगे, दूसरा करने लगेंगे, दूसरा नहीं कर सकेंगे, तीसरा करने लगेंगे। जरा, इस बातको और खोलकर बोलता हूँ। वह स्त्री बहुत सुन्दर है, सुशील है, मृदुभाषिणी है केवल इसीलिए वह किसी पुरुषकी भोग्य हो जायेगी ? या कोई पुरुष बहुत सुन्दर है, स्वस्थ है, सुडोल है, मृदुभाषी है क्या इसीलिए वह किसीका भोग्य हो जायेगा ? केवल वस्तुका सौन्दर्य ही भोग्य होनेका हेतु नहीं है, उस स्त्री पर हमारा धर्मानुकूल अधिकार होना चाहिए, उस पुरुषपर हमारा धर्मानुकुल अधिकार होना चाहिए तब वह भोग्य होगा। इसी प्रकार कोई भी वस्तु केवल स्वादमें बढ़िया है, गुणशाली है, शरीरको स्वस्थ रखनेवाली है इसीलिए भोग्य नहीं हो जायेगी। तो, आहार शुद्ध होना चाहिए इसका अर्थ यह होता है कि वस्तुकी सुन्दरताको न देखकर हमें अपने हृदयकी सुन्दरताको देखना चाहिए। जिससे हमारे हृदयमें वासनाकी वृद्धि न हो, शान्ति हो, ऐसी चीजको देखें, चीजको छूएँ, ऐसी चीजको सुनें, ऐसी चीजको चखें, ऐसी चीजको सूँघे, ऐसी चीजको पकड़े, ऐसी जगह जायँ। यह है 'शुद्धाहार' माने विविक्त आहार। विवेक करके, विचार करके हमारे लिए जो न्यायोचित धर्मसे प्राप्त हो, धर्मानुकूल हो, धर्म्य हो, धर्मसे प्राप्त हो, जिससे अपने स्वभावका, अपने स्वरूपका अतिक्रम न हो ऐसे आहारको शुद्धाहार बोलते हैं।

अब एक और आहारकी बात आपके सामने करते हैं, वह ध्यानके लिए आवश्यक है। उसका नाम है प्रत्याहार। यह 'अविविक्ताहार', 'दुष्टाहार' और 'शुद्धाहार'से अलग है उसका नाम है प्रत्याहार। प्रत्याहारका अर्थ यह होता है कि हमारी इन्द्रियाँ विषयोंसे प्रायः उलझी रहती हैं तो थोड़े समयके लिये आप उस उलझावसे मुक्त होनेका सामर्थ्य रखते हैं कि नहीं ? हम ऐसे कई पुरुषोंको और माताओंको भी जानते हैं जैसे रेडियो हर समय बोलता रहता है वैसे हर समय वह चलते-फिरते, उठते-बैठते, यहाँ-से-वहाँ जाते समय भी बोलते रहते हैं हम देखते हैं कि हमारे कमरेसे निकलकर हॉलमें गये वहाँ कोई नहीं है तब भी बोलते रहते हैं, रसोई घरमें गये वहाँ भी बोलते रहे हैं। उनके मुँहसे कुछ-न-कुछ फुव्वारा छूटता ही रहता है। अच्छा, लोगोंके बीचमें हैं, तो लोगोंकी बात सुन रहे हैं। एकान्तमें बैठे हैं तो रेडियो बजा दिया, वहाँ भी सुने बिना नहीं रहा जाता है। तो प्रत्याहारका अर्थ है कि कुछ समय तक हम अपनी इन्द्रियोंको निराहार भी रखें। जो आहारके उलटा हो वह निराहार होता है। प्रत्याहार, जैसे हमको किसीने बताया था, कि बचपनमें कोई चीज मिलती थी तो मुँहमें डाल लेते थे। जो आया, चना आया, चना मुँहमें डाल लिया, मिश्री आयी-मिश्री डाल लिया, गुड़ आया गुड़ डाल लिया मुँहमें। हमारे बाबाने बताया था कि भाई, हर समय पेटको भरते नहीं रहना चाहिए। कुछ समय उसको खाली भी रहने देना चाहिए। तो, ऐसे यह जो हमारे इन्द्रियोंके मार्ग हैं, हर समय चालू नहीं रहने चाहिए। हर समय मोटर चालू नहीं रहनी चाहिए, नहीं तो गरम हो जाती है न! फट जाती है। यह शरीर बिल्कुल मशीन ही है, इनको कुछ समय तक प्रत्याहृत करके रखना चाहिए। माने विषय और इन्द्रिय दोनोंको, विषय है संसारमें शब्द है, स्पर्श है, रूप है, रस है, गन्ध है, कर्त्तव्य बहुतसे हैं, गन्तव्य बहुतसे हैं; परन्तु देखो जानेके

लिए तो बहुत काम हैं परन्तु थोड़ी देरके लिए पाँवको विश्राम देते हैं कि नहीं ? करनेके लिए बहुतसे काम हैं लेकिन थोड़ी देरके लिए हाथको विश्राम देते हैं कि नहीं? बोलनेके लिए बहुत-सी बातें हैं परन्तु थोड़ी देर बोलनेसे जीभको विश्राम देते हैं कि नहीं ? इस प्रकार सभी इन्द्रियोंको थोड़ी देरके लिये उनके विषयोंसे बिल्कुल अलग ही रखना चाहिए। इसका नाम होता है प्रत्याहार।

जब परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है तब एक और, दूसरा आहार शुरु हो जाता है। वहाँ न अविविक्ताहार है और न विविक्ताहार है, न दुष्टाहार है, न शुद्धाहार है, न प्रत्याहार है। वहाँ सहजाहार होता है। जो सामनेसे आया सो आया, जो गया सो गया। जो मिला सो मिला, जो बिछुड़ा सो बिछुड़ा-उसको सहजाहार बोलते हैं। अभी तो हम ध्यानके लिये जो उपयोगी प्रत्याहार है, उसके बारेमें बताते हैं। सहजाहार तो तत्त्वज्ञके लिए है। यह आजकलके जो अपनेको, पहुँचे हुए लोग बोलते हैं न, वे भी कभी-कभी बड़ा अन्याय करते हैं। वे कहते तो यह हैं कि हम पहुँचे हुए हैं, लेकिन वे सबको यही कहते हैं कि जैसे हम सहजाहार करते हैं वैसे सब लोग करें। तो, वह तो जैसे बिना सीढ़ीके छतपर उछलकर चढ़नेको कहा जाय, वह बिचारा चढ़ नहीं पाता है, गिर जाता है, वैसे दुष्टाहार तो छूटा नहीं और उसको सहजाहारमें डाल दिया तो वह दुष्टाहारमें ही रहेगा। वह ऊपर नहीं उठेगा।

अब आओ! प्रत्याहारकी बात करते हैं। प्रत्याहार भी अनेक प्रकारका होता है। एक होता है व्यतिरेकी प्रत्याहार, एक होता है अन्वय प्रत्याहार और एक होता है सहज प्रत्याहार। प्रत्याहार माने, विषय सम्मुख होने पर भी इन्द्रियोंका अपने गोलकसे विचलित न होना। कल आपको सुना रहा था कि असलमें यह ज्ञानस्वरूप आत्मा जो है वह कभी विचलित नहीं होता। यह तो, बुद्धिसे तादात्म्य करके

मनसे तादात्म्य करके, इन्द्रियोंसे तादात्म्य करके विचलित मालूम पड़ता है।

अब देखो, आप कहते हो न कि हमारा मन कोलकाता पहुँच गया अथवा कोलकाता मेरे मनमें आ गया महाराज! मैं बैठा तो हूँ सत्सङ्गमें; परन्तु मेरे मनमें कोलकाता आ गया। असलमें ज्ञानस्वरूप आत्मा जहाँ-का-तहाँ है, मनमें कोलकाताकी कल्पना हुई। केवल कल्पित कोलकाता आपके मनमें प्रकट हुआ। न मन वहाँ गया, न कोलकाता यहाँ आया। कोलकतेकी कल्पना ही हो गयी। इसी प्रकार यह इन्द्रियों और विषयोंका जो सम्बन्ध है इसमें भी सम्बन्धकी कल्पना ही होती है। न जीभ पर कोई खायी हुई चीज रहती है, न नाकमें गन्ध रहती है, न आँखमें रूप रहता है, न त्वचामें स्पर्श रहता है, न कानमें शब्द रहता है। यह विषय जो है वह तो समष्टिके साथ बिलकुल मिले हुए हैं। तो, आपको व्यतिरेकी प्रत्याहार, अन्वयी प्रत्याहार और सहज प्रत्याहारके बारेमें बताते हैं। क्योंकि बातको अगर अन्तिम सीमातक न पहुँचाया जाय तो जो समझदार लोग होते हैं वे कहते हैं कि अरे, यह तो बच्चोंकी बात कहते हैं।

आप प्रत्याहारका अर्थ शुरूसे देखिये! आपकी आँख सुन्दरताकी ओर आकृष्ट होती है। सुन्दरता अपनी जगहपर रहती है और आँख अपनी जगहपर रहती है। असलमें विषयका ज्ञान तब होता है जब बीचमें इन्द्रिय गोलकको माध्यमके रूपमें रखें।

चाहे मनका गोलक हो, चाहे इन्द्रियोंका गोलक हो। आपके सामने विषय है, पीछे आत्मा है और बीचमें गोलक है। जैसे हम दूरबीन-खुर्दबीनके माध्यमसे या चश्मेके ही माध्यमसे किसी वस्तुको देखते हैं तो बीचमें चश्मा है और सामने विषय है और चश्मेके पीछे, आँखके पीछे बैठे हुए हम उसको देख रहे हैं। जबतक वह चीज मनमें या इन्द्रियोंमें नहीं दिखती है तबतक सम्बन्ध नहीं बनता है। और जब

मन और इन्द्रियोंके द्वारा दिखने लगती है तो असलमें हमारा अन्तःकरण तदाकार हो जाता है। यह आँखके द्वारा जो घड़ा दिखायी देता है तो वह जो घड़ा अपनी जगह पर है वह तो वहीं रहता है। अध्यात्मवादीकी दृष्टिमें वह हटता नहीं है; परन्तु आँखके द्वारा दिखनेपर हमारे हृदयमें भी उसकी फोटो पहुँच जाती है। तब जिस हृदयमें आँखसे देखनेकी शक्ति है उसी हृदयमें घड़ेकी कल्पना भी आ जाती है। तो, जो अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य, अन्तःकरणको देख रहा है वही घटाकारवृत्तिको देखता है। यह विषय दर्शनकी प्रणाली है, विषय चाहे बाहर हो 'पृथकतावादी' मानते हैं कि विषय बाहर है। विज्ञानवादी मानते हैं कि विषय बाहर नहीं है। चाहे विज्ञान हो, चाहे अध्यात्म हो दोनों ही दशामें जबतक हमारी वृत्ति तदाकार नहीं होती, तबतक किसी भी हालतमें उसका ग्रहण नहीं होता है। इसमें भी विषयोंके आभासभास्य और साक्षीभास्य दो भेद होते हैं। तो साक्षीभास्य विषय बन्धनका हेतु तबतक नहीं हो सकता जबतक साक्षी आभाससे तादात्म्य न करे। यह वेदान्तकी रीति सुनायी। कई लोगोंकी उसमें बहुत रुचि होती है न! बहुत रस होता है।

'प्रत्याहार' करनेका अर्थ यह है कि यह विषय और आत्मा दोनों बिलकुल अलग-अलग चीजें हैं। रुमाल हमारी हथेली पर है और इसको जाननेवाला हृदयके पीछे बैठा हुआ है। हृदयके पीछे बैठा हुआ साक्षी है। साक्षी जो है वह हृदयके पीछे बैठकर हृदयके द्वारा इसको देख रहा है। अब बीचमें है आँख। आँख आत्मासे एक नहीं हो पाती है और न ही रुमालसे एक हो पाती है। तो, आप रुमाल और आँखके अलगावको ध्यानमें ले आओ। मन और इन्द्रियोंको विषयोंके साथ मत मिलने दो। इन्द्रिय और मनको विषयोंसे अलग करके रखो। इसका नाम होगा व्यतिरेकी प्रत्याहार।

अब आपको एक दूसरी बात सुनाते हैं। रूपका आकर्षण

आपके हृदयमें है न ? तो, जरा प्रत्याहार कीजिये। प्रत्याहार कीजियेका अर्थ यह है कि शराबका पानी देखनेके बदले गङ्गाजलको देखिये। प्रत्याहार माने आपको भोजनके लिये कुछ-न-कुछ तो चाहिए। यदि आपको सौन्दर्य चाहिए तो रामका, कृष्णका सौन्दर्य देखिये। उनके शरीरमें जो सुगन्ध है उसको लीजिये। असलमें विषयोंका ग्रहण बिना मनके तो होता ही नहीं, तो जब मनसे ही आपको ग्रहण करना है, तो भगवान्‌का सौन्दर्य माधुर्य देखिये।

आपने सुख देखा है कभी ? बोले-हाँ महाराज, रोज-रोज नयी बातोंका सुख होता है। आपने दुःख कभी देखा है ? महाराज, वह तो सत्रह बार आता है दिनमें। परन्तु, आप जानते हैं सुख-दुःखका रङ्ग क्या है? इसकी लम्बाई-चौड़ाई कितनी है वह मालूम है ? उसका वजन कितना है मालूम है ? और वह दुःख कितनी देरतक रहेगा मालूम है ? असलमें सुख कल्पनाके रूपमें ही आता है। दुःख भी कल्पनाके रूपमें ही आता है। और, यह जो संसारमें सुगन्ध और मिठास, सुन्दरता, और सुकुमारता, सङ्गीत और सुन्दर भाषण-ये भी कल्पनाके भीतर आकर ही मालूम पड़ते हैं। किस माताको अपना बच्चा सुन्दर मालूम नहीं पड़ता ? और, किस आदमीको अपनी सुन्दरता नहीं मालूम पड़ती ? बोले-भाई! आँख तो जरा टेढ़ी है। तो बोले-यह नहीं देखा कि हमारी नाकका उठाव कितना बढ़िया है ? किसीको भी कहकर देख लो आप। वह कहेगा कि हमारे होंठकी कट ऐसी है जैसी दुनियामें और किसीकी नहीं है। कहीं-न-कहीं अपने सौन्दर्यकी कल्पना हो ही जाती है। तो, असलमें यह जो विषयोंका सौन्दर्य है वह विषयोंका नहीं है अपनी कल्पनामें जो सौन्दर्य बैठ जाता है-उसका है। और यह बात मैं इसलिए सुना रहा हूँ कि जब आप कल्पित सौन्दर्यसे ही सन्तुष्ट होते हैं।

आप किसी कर्णाटकके व्यक्तिसे पूछो कि उत्तरी भारतका

सङ्गीत उत्तम होता है कि कर्णाटकका सङ्गीत उत्तम होता है ? वह कहेगा कि कर्णाटकका उत्तम होता है। यह आपके जितने उत्तरी भारतके घराने हैं उसमें-से वह किसीको पसन्द नहीं करता है। और उत्तरीभारतका व्यक्ति कहेगा कि दक्षिणी सङ्गीतमें क्या है, वह तो जैसे घड़ेमें कङ्कड़ डालकर खनखनाओ, तो उसमें क्या रखा है ? यह जो हमारे आ...आ..में जो स्वाद है वह उनके घटकमें थोड़े ही है ? उनके घटकमें, उनकी वीणामें यह सौन्दर्य नहीं है। तो, असलमें जो माधुर्य है, जो सौन्दर्य है वह अपनी कल्पनाके अनुरूप ही बनता है। इस सत्यको यदि आप समझ लेते हैं कि जहाँ-जहाँ हमारी इन्द्रियाँ फँसती हैं, असलमें कल्पित सौन्दर्यके कारण ही फँसती हैं। तो, प्रत्याहार देनेका अर्थ यह है कि आप श्रीकृष्णकी वंशीध्वनिको कल्पनामें ही श्रवण कीजिये। उसके स्पर्शका अनुभव कीजिये कि उसने हमको अपने हृदयसे लगा लिया है। वह दिखता तो नहीं है लेकिन वह छू गया....आहा...उनके कोमल करोंका स्पर्श मालूम पड़ गया।

एक बार हमारी आँखोंके सामने चमक गया। एकबार उसका चरणामृत, अधरामृत मिल गया। एकबार उसके अङ्गकी सुगन्ध हमारे नाकमें आगयी। अब आप कहोगे कि यह कल्पना-कल्पनाकी बात क्यों कर रहे हो ? तो, बाबू लोगों! अगर आप इस कल्पनाके अन्दर नहीं आओगे तो आपकी भावना बनेगी नहीं, इसको कल्पना नहीं बोलते हैं, शास्त्रकी भाषामें 'भावना' बोलते हैं। जब किसी साध्यकी प्राप्तिके लिए साधनके रूपमें हम कल्पनाको स्वीकार करते हैं तब वह कल्पना-कल्पना नहीं होती है। वह लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए साधन बन जाती है तब उसका नाम भावना हो जाता है।

यह भक्तिका प्रत्याहार आपको सुनाया, रामका, कृष्णका, शिवका। आपको संसारमें किसी वेश्यामें बहुत गुण दिखते हैं ? आप अचिन्त्य, अनन्त, कल्याण गुणगण परमेश्वरके गुणका चिन्तन

कीजिये। अरे, किसी महात्माके गुणका चिन्तन करो तो फँसावट तो नहीं होगी न! और इसका नाम प्रत्याहार हो जायेगा। जैसा आहार आपकी इन्द्रियाँ कर रही हैं उससे विलक्षण आहार आपकी इन्द्रियोंको दो तो वह प्रत्याहार हो गया, 'प्रतीक आहार' हो गया, इसको 'अन्वयी आहार' कहते हैं।

विषयोंको छोड़कर इन्द्रियोंको अपने गोलकमें स्थापित करो तो 'व्यतिरेकी आहार' हो गया। और यदि विषयोंमें ही परिवर्तन कर दो, उसको भगवान्‌की ओर लगा दो तो वह 'अन्वयाहार' हो गया। और आप बिलकुल निश्चित समझो कि संसारमें जितना भी आनन्द होता है, जितना सुख होता है यदि आपकी कल्पना न बने तो इसका लाभ नहीं होता है। जैसे एक करोड़पति सेठसे कोई मिलना चाहता है और वह सेठ रोज उनकी आँखोंके सामनेसे निकल जाता है लेकिन मनमें यह कल्पना नहीं बनती कि वह यही है। तो, उस सेठके दर्शनका सुख आपको नहीं मिलेगा। ऐसे कई लोगोंके जीवनका वर्णन आता है कि उनके सामनेसे भगवान् निकल गये। गोस्वामी तुलसीदासजीके सामनेसे घोड़ेपर चढ़े हुए राम–लक्ष्मण निकल गये, परन्तु उनको कोई मजा नहीं आया, उन्होंने पहचाना नहीं। तो, महाराज हमको तो भगवान्‌का दर्शन नहीं हुआ। तब बताया कि हुआ तो सही लेकिन तुम्हारे हृदयमें भाव ही नहीं उदय हुआ कि ये भगवान् हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी मन्दाकिनीके तटपर बैठे हैं। अब महाराज यजमान बनकर भगवान् आये।

चित्रकूट के घाट पर, भई संतन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसे, तिलक देत रघुबीर।।

हनुमान्‌जीने कहा–देखो! तुमको तिलक लगानेवाले स्वयं भगवान् रामचन्द्र हैं। अरे, रामचन्द्र हैं ? रोमाञ्च हो गया शरीरमें। तो, मालूम पड़ना चाहिए। यदि वस्तुका दर्शन होनेपर भी हृदयमें कल्पना

न बने तो उसका आनन्द नहीं आवेगा। और, न मिलनेपर भी यदि पूरा भाव बन जाय तो उसमें तन्मय, समाधिस्थ हो सकते हैं। इसलिए प्रत्याहारकी आवश्यकता होती है। 'प्रत्याहार' माने जो हबर-हबर माने जल्दी-जल्दी खानेकी आदत पड़ गयी है। जो आया सो ही खा लिया, जो आया सो देख लिया, जो आया वह सुन लिया बिना सोचे-बिचारे, उसकी जगह पर जान-बूझकर उससे विपरित कल्पना या भावना करके उसको भगवान्‌के साथ जोड़ना 'प्रत्याहार' है।

आयुर्वेदिक चिकित्सामें इस सिद्धान्तको स्वीकार करते हैं कि यदि किसीको डायबीटिज हो गया हो, तो वह चैत्रके महीनेमें नीमकी पत्ती खाये। नीमकी पत्ती खानेसे क्या होगा ? कि उनके शरीरमें जो रस (रक्त) है उसमें परिवर्तन होगा। आयुर्वेदमें उसको विपरीत चिकित्सा बोलते हैं। जैसी वस्तु खानेसे रोग हुआ है उससे विपरित खाना। होमियोपैथी चिकित्सामें बोलते हैं कि जिस वस्तुके खानेसे, पीनेसे रोग हुआ है उसीको शुद्ध करके उसका सेवन करना तो वही वस्तु तुम्हारे रोगको मिटा देगी। यह होमियोपैथीका सिद्धान्त है। देखो, एक सिद्धान्त यह हो गया कि जो विषय तुम्हारे दिलमें घुस गया है उसको छोड़ दो। और, एक यह हुआ कि उसको शुद्ध करके रामके रूपमें, कृष्णके रूपमें, सन्तके रूपमें, गुरुके रूपमें उसीको बैठाओ।

अभी हम आपको प्रत्याहारकी छोटी-छोटी बात सुना रहे हैं। ये साधन जो होते हैं-आप लोग तो जरा आँख बन्द हो जाय और एक मिनटके लिए निष्क्रिय हो जाय मन तो कहेंगे कि यह समाधि है। हमारे एक सज्जन थे उनको खीर खानेको कभी मिल जाय, तो कहते थे-आज 'ब्रह्मानन्द' आ गया। उन्होंने जैसे खीर खानेका नाम ब्रह्मानन्द रख दिया था, ऐसे ही मन एक मिनटके लिए निष्क्रिय हो जाय तो उसका नाम समाधि रख देते हैं।

अब एक दूसरी प्रणाली आपको सुनाते हैं। वेदान्तमें भी अन्वय प्रणाली और व्यतिरेक प्रणाली दोनों हैं।

अब वेदान्तियोंकी बात सुनाते हैं। और वेदान्तके ग्रन्थोंमें जिसका उल्लेख है वह सुनाते है। 'अन्वय प्रत्याहार' क्या होता है ?

यद् यत् पश्यति चक्षुर्भ्यां तत् तद् ब्रह्मेति भावयेत्।
यद् यत् शृणोति कर्णाभ्यां तत् तद् ब्रह्मेति भावयेत्।।

यह पृथिवी क्या है ? यह ब्रह्म है। दिख रही है पृथिवी परन्तु; बोले कि ब्रह्म है। यह हुआ 'प्रत्याहार'। दिख रही है शालिग्रामकी शिला गण्डकी नदीमें पैदा हुई छोटी-सी शिला, वह छोटी-छोटी भी होती है। हमारे पड़ोसमें एक वैष्णव महात्मा रहते हैं तो उनके पास छत्तीस प्रकारके शालिग्राम हैं। हम उनके मन्दिरमें दर्शन करने जाते हैं क्योंकि; बहुत पड़ोसमें हैं तो पड़ोसी धर्मका निर्वाह करना पड़ता है। जब जाते हैं तो बड़े भावके साथ सब लाकर बिल्कुल खोलकर दिखाते हैं कि महाराज ये नृसिंह हैं, ये वामन हैं, ये वराह हैं, ये राम हैं। वह सब गण्डकीकी शिला काली-काली, अब बोलो वे वामन कैसे हो गये? वे दामोदर कैसे हो गये? वे श्रीधर कैसे हो गये? तो यह क्या है? कि जैसे देखो भक्तिमें दिखती है शालिग्रामकी शिला, दिखता है कुछ और भाव करते हैं कुछ। इसी प्रकार अद्वैत वेदान्तियोंने भी यह बात मानी है कि हमको दिखती है यह धरती परन्तु है ब्रह्म। हमको दिखता है जल और है यह ब्रह्म। तो, पृथिवीमें ब्रह्मभाव, जलमें ब्रह्मभाव, तेजमें ब्रह्मभाव, रोज आपलोग पाठ करते हैं कि 'वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि'-क्या मतलब होता है इसका कि हे वायुदेवता आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। 'कं ब्रह्म, खं ब्रह्म'-यह आकाश ब्रह्म है। किसी भी निमित्तसे जो सुखाकारवृत्तिका उदय होता है उसमें सुखस्वरूप ब्रह्मका ही प्रतिबिम्बन है, ब्रह्म ही है। लो, अब

तो अन्वय प्रत्याहारकी हद हो गयी न! कि कोई भी वस्तु जो मालूम पड़ती है वह साक्षात् परब्रह्म परमात्मा है।

इसीका व्यतिरेकी प्रत्याहार भी है। प्रत्याहार माने हमारे मन और इन्द्रियोंको जैसा संसारका भोग करनेका अभ्यास हो गया है उससे उल्टा भी कुछ बताया जाय। आपको हमने सुनाया होगा लेकिन फिर सुना देता हूँ। यह मिट्टीकी बनी जितनी चीजें दिखती हैं यह अन्न भी मिट्टीसे ही बनता है, मकान भी मिट्टीसे ही बनता है, शरीरमें भी मिट्टी होती है। देखो, यह जो अलग-अलग मूर्तियाँ दिखती हैं, आकृतियाँ दिखती हैं, यह केवल मृतिका ही मृतिका है। यह प्रत्याहार हो जायेगा। अच्छा पृथिवीकी बनी कोई चीज आप मत देखिये। मिट्टीकी बनी कोई चीज नहीं, पेड़ नहीं, पौधा नहीं, पहाड़ नहीं, स्त्री नहीं, पुरुष नहीं उसको आप अपने ध्यानमें मत आने दीजिये। तब क्या ? तो केवल जल-ही-जल। वह महाराज! जल लहरा रहा है और ज्योतिर्मय छटा उसमें पड़ रही है और महान् समुद्र, अनन्त समुद्र जिसका न ओर-न छोर। उपर कहा तक तरङ्गें जाती हैं पता नहीं। नीचे कहाँ तक गहरायी है मालूम नहीं। केवल जल-ही-जल। इसमें प्रत्याहार क्या हुआ ? आप तो छोटी-छोटी बातके लिए लड़ायी करते हैं। एक ग्लास पानी यदि गिर गया नौकरसे, तो उसको दो चपत लगा देते हैं कि तुमने हमारा एक ग्लास पानी क्यों गिरा दिया ? एक स्वादके लिये, एक ग्रासके लिए बच्चोंमें लड़ायी होती है। और यहाँ सारा समुद्र, सारी पृथिवी ईश्वरकी है। अब इसका काम क्या होगा ? कि धीरे-धीरे पृथिवी जलमें लीन हो गयी जल-ही-जल है। जल तेजस्में लीन हो गया तो तेज-ही-तेज है। उसके बाद सब वायु-ही-वायु है, फिर आकाश-ही-आकाश है।

अब, एक और प्रत्याहारका रूप देखो। हमको भाई बड़ी खुशी हुई थी जिस दिन यह बात मालूम हुई थी। कोई भी वस्तु अपने

विजातीयको नहीं देखती है। प्रत्याहारका नियम पहले बताते हैं। असलमें मिट्टीका सात्त्विक अंश, मिट्टीके भौतिक अंश गन्धको ग्रहण करता है। मिट्टी–ही–मिट्टीको ग्रहण करती है। जीभमें जो रस है वह रस–ही–रसको ग्रहण करता है। आँखमें जो ज्योति है वह ज्योति–ही–ज्योतिको ग्रहण करती है। त्वचामें जो वायुकी स्थिति है वही स्पर्शको ग्रहण करती है। स्पर्शका ही सात्त्विक अंश स्पर्शको ग्रहण करता है। रूपका ही सात्त्विक अंश रूपको ग्रहण करता है। जैसे समझो आँख अध्यात्म है, सूर्य अधिदैव है और रूप अधिभूत है। तो असलमें सूर्यका ही अध्यात्म अंश, सूर्यके ही अधिदैव अंशकी मददसे सूर्यके ही अधिभूतरूपको ग्रहण करता है। तो, इसका अर्थ क्या हुआ ? एक तो आप लोग सोचते हैं न कि मैं घड़ेको देखता हूँ इसलिए घड़ेसे न्यारा हूँ। एक विवेक यह है। विचार चन्द्रोदयमें आप लोगोंने बड़े विस्तारसे पढ़ा होगा। विचारसागरमें देखा होगा, पञ्चदशीमें देखा होगा। क्योंकि मैं घड़ेको देखता हूँ इसलिए घड़ेसे न्यारा हूँ। और अब दूसरा प्रत्याहार देखो, यह भी वेदान्तका ही है। क्योंकि मैं घड़ेको देखता हूँ इसलिए घड़ा मुझसे न्यारा नहीं हो सकता है। जो मैं हूँ सो ही घड़ा है। यह भी प्रत्याहार हो गया। विजातीयका ग्रहण कहीं देखनेमें आता ही नहीं, हमेशा सजातीयका ग्रहण देखनेमें आता है। ज्योति–ही–ज्योतिको देखती है। शब्द–ही–शब्दको सुनता है। स्पर्श–ही–स्पर्शको ग्रहण करता है। तो, हम चेतन–चेतनको ही ग्रहण करते हैं। जिस सृष्टिको हम जड़के रूपमें ग्रहण कर रहे हैं वह जड़ नहीं है चिन्मात्र है। यह भी वेदान्तका प्रत्याहार है।

जिन योगियोंके प्रत्याहारकी मैं चर्चा कर रहा हूँ वह शुरू–शुरूमें व्यक्ति दृष्टिसे होता है। व्यक्ति दृष्टिसे होनेके कारण जब हम आसन बाँधकर एक देशमें अपने शरीरको स्थिर करते हैं और प्राणायाम करके शरीरकी चेष्टाओंको नियन्त्रित करते हैं तब

प्रत्याहारके द्वारा हम इन्द्रियोंको भी नियन्त्रित कर सकते हैं। अरे ओ आँख! तू आँखमें रह, रूपमें मत जा। अरे ओ कान! तू कानमें रह, अपने गोलकमें रह। जैसे बच्चेको कहते हैं अपने घरमें बैठ, पराये घरमें मत जाय। बच्चा आकर कभी-कभी रोने लगता है कि मैं उनके घर गया था तो उन्होंने हमको गाली दी। उन्होंने हमको मारा। उनके बच्चेने हमारा अपमान किया तब माँ-बाप कहते हैं कि बेटा! तुम पराये घरमें क्यों जाते हो ? अपने घरमें बैठो। वैसे आप अपने कानसे कहो कि तुम अपने घरमें बैठो, शब्दके पीछे मत भटको। कहा हाँडते हो दुनियामें ? यह मारवाड़ी लोग हाँडना बोलते हैं। बारह बजे-एक बजे जब पति लोग कारखाने जाते हैं तो पत्नियाँ पर्स उठाती हैं और अब तीन-चार बजे तक उनको छुट्टी मिल जाती है। *'मेरे पिया घर नहीं, मुझे किसीका डर नहीं'*-तो पर्स उठाया और हाँडनेके लिए निकल गयीं! तो, यह हमारी इन्द्रियाँ भी हाँडनेके लिए विषयोंमें जाती हैं उनको आप सिखा-पढ़ाकर कि बाबा घरसे बाहर जाकर घूमना ठीक नहीं है। एयरकंडीशनकी लालचसे, कोका-कोलाकी लालचसे, बढ़िया-बढ़िया चीजोंकी लालचसे किसी दुकानमें जाकर दुकानदारके पास बहुत देर तक हेल-मेल बढ़ाना अच्छा नहीं है। ये जैसे स्त्रियोंसे बोलते हैं वैसे आप इन्द्रियोंसे भी बोलिये कि यह जो तुम विषयोंके पास जाते हो कि यहाँ बहुत बढ़िया सङ्गीत सुननेको मिलता है, यहाँ सुकोमल हवा मिलती है, यहाँ देखनेके लिए सुन्दर-सुन्दर दृश्य मिलते हैं, यहाँ सूँघनेको सुगन्ध मिलती है, यहाँ जिह्वाकी तृप्ति करनेके लिए नये-नये रस मिलते हैं। ये जो इन्द्रियाँ लालचमें आकर विषयोंके घर चली जाती हैं, उनको समझा-बुझाकर अपने घरमें रोकनेका नाम प्रत्याहार है। यह योगकी दृष्टि है।

●

प्रवचन : 8

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहका पालन करनेसे लौकिक व्यवहारमें जो अनियन्त्रित वृत्तियाँ हैं उनका निरोध होता है। नियमोंका पालन करनेसे अपनी व्यक्तिगत चेष्टाओंका निरोध होता है। पवित्रतासे रहना, सन्तोषसे रहना, तपस्या करना। असलमें जो कष्ट उठाकर अपना लक्ष्य पाना नहीं चाहता है, उसके मनमें लक्ष्यकी अभीप्सा नहीं है, प्यास नहीं है। जो कहता है कि हमको कोई तकलीफ न उठानी पड़े और माल हमारे घरमें आ जाय वह जुआरी हो सकता है परन्तु व्यापारी नहीं हो सकता। जुआरी तो यही चाहता है कि कोई तकलीफ न हो पत्ते फेंके या कौड़ी फेंकी या पासा फेंका और पैसे आ जायँ! ईमानदार आदमी परिश्रम करता है और कमाई करना चाहता है। तो जो अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए कोई तकलीफ उठानेको तैयार नहीं है, उसके जीवनमें लक्ष्य प्राप्तिकी योग्यता नहीं आवेगी। तो, व्यक्तिगत जीवनके उत्कर्षके लिए पवित्रता, तपस्या, स्वाध्याय, सन्तोष, ईश्वरप्रणिधान यह करना पड़ता है।

एक स्थानमें अपनेको अचल करनेके लिए आसन बाँधना पड़ता है। शरीरके व्यवहारका निरोध है यह। और प्राणोंके व्यवहारका निरोध करनेके लिए प्राणायाम होता है। और, इन्द्रियोंके व्यवहारका निरोध करनेके लिए प्रत्याहार होता है। अब इसके आगे चलते हैं। क्योंकि 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' है न! तो यह बाहर सब चित्तवृत्ति ही है। लोगोंसे व्यवहार करनेमें, व्यक्तिगत व्यवहार करनेमें, शरीरकी चेष्टा होनेमें यह सब चित्तवृत्ति ही है। अब जैसे कह दिया कि भाई, जबतक पूजा नहीं करेंगे तबतक भोजन नहीं करेंगे।

अब देखो कि सबेरे उठकर यह हुआ कि पूजा कर लो नहीं तो जल्दी भोजन नहीं मिलेगा। यह नियम होता है। इसमें रुकावट पड़ी, और नहीं करेंगे तो थोड़ी देर तक चायकी प्यास सहनी पड़ेगी और सिर चायकी प्याससे उछलने लगेगा।

अब हम आपको आसनके बारेमें सुनाते हैं। आसन माने एक स्थानमें स्थिर होना। यह नहीं कि पद्मासन बाँध लिया और दाहिने-बाँये घूम रहे हैं। और, प्राणायाम माने एक कालमें स्थिर होना। प्राणवृत्तिका निरोध। और, प्रत्याहार माने विषय अपने स्थानपर रहें, इन्द्रियाँ अपने स्थानपर रहें। ये इन्द्रियाँ उछल-कूद ज्यादा न मचावें, इन्द्रियाँ शान्त रहें अपने स्थानपर रहें, अपने घरमें रहें।

अब हम इसके आगे धारणाकी चर्चा प्रारम्भ करते हैं। अब जिसको लक्ष्य ही नहीं है वह ध्यान करना चाहेगा ही क्यों ? लोग सिद्ध तो बहुत जल्दी हो जाते हैं; परन्तु साधन करना नहीं जानते हैं। तो धारणाका अर्थ होता है कि अब हम अपनी मनोवृत्तिका, चित्तवृत्तिका निरोध प्रारम्भ करते हैं। तो, चित्तवृत्तिको कहीं-न-कहीं तो स्थिर करना पड़ेगा। तो स्थानमें, कालमें और वस्तुमें माने बीजवस्तुमें, मूल वस्तुमें चित्तस्थापना होती है। यह चित्तस्थापनाका तीन क्रम है।

धारणाका अर्थ होता है एक घेरेमें और ध्यानका अर्थ होता है अमुक समयतक और समाधिका अर्थ होता है मूल वस्तुमें सम्पूर्ण वृत्तियोंको स्थिर रखना। और स्वयं असङ्ग द्रष्टाके रूपमें उनको देखना।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। (पतञ्जलियोगसूत्र 1.3)

वैसे तो हम जन्मसे सनातनी टाईपके हैं। जबतक साधुओंका, महात्माओंका ज्यादा सङ्ग नहीं मिला था तबतक हम दूसरोंका खण्डन

करते थे। हम शास्त्रार्थमें भी कमजोर नहीं थे। परन्तु जब सन्त सङ्गमें आ गये तो दूसरोंका खण्डन छूट गया। चलो भाई ऐसा ही सही! साकारका ध्यान नहीं होता तो निराकारका करते हैं और यदि निराकारका नहीं होता तो साकारका ध्यान करते हैं। परन्तु कोई कुतर्क करे तो उसको जवाब देनेमें हम रुचि नहीं रखते हैं।

एकने कहा कि मूर्तिपूजा क्यों करे ? कई लोग कागज पर ऐसी भाषा लिखते हैं कि प्रत्येक वाक्यके बाद प्रश्नचिह्न ही होता है। वहाँ (Full Stop) माने वाक्यकी समाप्तिका सूचकचिह्न नहीं होता, यदि हो तो कोमा (,) कहीं-कहीं हो, परन्तु वाक्यके अन्तमें प्रश्नचिह्न जरूर होगा। किसी-किसीका मन ही ऐसा हो जाता है कि वह क्यों...क्यों...क्योंसे भर जाता है। अब जैसे किसीने विवाहिता स्त्रीको कहा कि अपने पतिको परमेश्वर मानो। तो, उसने पूछा क्यों ? अरे! जैसे सब हैं वैसे ये भी हैं इसमें इनको परमेश्वर माननेकी जरूरत क्या है ? तो असलमें अपने पतिके प्रति जो निष्ठा है और दूसरे पुरुषसे सङ्ग न हो, आसक्ति न हो इसका मूल मन्त्र है कि अपने पतिमें महत्त्वबुद्धि हो, कि ये परमेश्वर है। यह नहीं कि हमारे पति हमारे लिए परमेश्वर हैं दूसरे पति दूसरेके लिये परमेश्वर हैं। तो, परमेश्वर-परमेश्वर एक हो गये और पतिव्रता-पतिव्रता एक हो गयी। ऐसे नहीं होता है, अपने पतिको परमेश्वर मानना पड़ता है। तो, इसका क्यों करके उत्तर नहीं दिया जाता है। इसका सम्बन्ध निष्ठासे है। और उस निष्ठामें भी महत्त्वबुद्धि होनी चाहिए!

एकने आकर कहा कि हमको ईश्वरकी पूजा करनी है। आपको धारणाकी बात सुनाते हैं कि हमको ईश्वरकी पूजा करनी है। तो, करो भाई! हम आपको एक श्रीकृष्णकी मूर्ति तुमको देते हैं, गोपालजीकी अँगूठेके बराबर मूर्ति देते हैं और लो ईश्वरकी पूजा करो यह ईश्वर है। उसने कहा भला, यह माटीकी, लकड़ीकी,

प्लास्टिककी, चाँदीकी बनी हुई मूर्ति और अमुक कारीगरने बनायी और अमुक समयमें बनी और इसको अपने हाथसे तौल लेते हैं तो यह ईश्वर कैसे ? इसको तो हम ईश्वर नहीं मानते हैं। तो, हम कहेंगे कि अच्छा इसको तुम ईश्वर मत मानो। और बताओ कि ईश्वर कैसा है ? तो बोले कि ईश्वर सर्वव्यापक है। तो तुम्हारे मुँहमें घी-शक्कर! 'चिरञ्जीव्यताम्'-आपकी आयु लम्बी हो। आप सर्वव्यापीका ही ध्यान कीजिये। तो, देखो, सर्वका तो उसको ज्ञान ही नहीं है। तो, वह जो सर्वव्यापकका ध्यान करना चाहता है वह क्या 'सर्व'को जानता है? अरे! सर्वको जो जानता है वह 'सर्वज्ञ' ईश्वर होता है। अगर वह सर्वको जानता है तो 'सर्वज्ञ' ईश्वर हो गया। परन्तु सर्वको नहीं जानता है और कहता है कि हम सर्वव्यापीका ध्यान करते हैं तो, कल्पित 'सर्व'में कल्पनातीत परमेश्वरकी भावना करता है। उसके मनमें जो सर्व है वह कल्पित है। सच्चा सर्व तो है ही नहीं। क्योंकि वह सर्वज्ञ नहीं है। तो, हम कहते है कि 'सर्वव्यापी' किसको कहते हैं ?

'सर्वव्यापी' उसको कहते हैं जो सर्वमूर्तसंयोगी हो। जितनी स्थूल वस्तुयें दिखती हैं उनके भीतर रहकर, उनमें व्याप्त हो। जैसे देश नामकी जो वस्तु है, वह सर्वव्यापी होती है। काल भी सर्वव्यापी होता है। और, कारणवस्तु भी सर्वव्यापी होती है। तो, अब देखो, आपको सर्वव्यापीका यदि ध्यान करना है तो सर्वकी कल्पना करके उसमें ध्यान करोगे। अच्छा, सब देशमें परमात्मा व्याप्त है यह आप कैसे सोचेंगे ? पश्चिमका अन्त कहाँ है ? पूरबका अन्त कहाँ है ? दक्षिणका अन्त कहाँ है ? उत्तरका अन्त कहाँ है ? ऊपरका अन्त कहाँ है ? नीचेका अन्त कहाँ है ? दिग्तत्त्व अनन्त है कि नहीं है? असीम है। तो, देखो उसका अन्त कहाँ है ? कि आपके मनमें। उसके अन्तकी कल्पना आप कर सकते हैं। उसके विस्तारकी कल्पना आप कर सकते हैं। देश पूरा-का-पूरा आपके मनमें कभी आ ही नहीं

सकता। क्योंकि पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे जिसका अन्त ही नहीं हैं उस देशके सूक्ष्मतम प्रदेशमें प्रविष्ट परमात्माका आप ध्यान कैसे करोगे ? इसका शास्त्रार्थ है!

देखो, पहले आप एक देशको समझो, फिर सर्व देशको समझो, फिर सर्वव्यापीको समझो। तो हमारे पुराण बड़े मजेदार हैं, वे ऐतिहासिक वस्तुओंका वर्णन करें यह कोई आवश्यक नहीं होता है।

एक दिन श्रीरामानुजाचार्य और श्रीशङ्कराचार्य दोनों मिले। अरे भाई! यह कब हुआ ? क्योंकि एक हुआ न जाने किस शताब्दीमें और दूसरा हुआ न जाने किस शताब्दीमें; तो दोनों मिलेंगे कैसे ? तो, लाओ हम पुराण खोलकर दिखा दें, पुराणोंमें वर्णन है कि दोनों मिले हैं यह पुराणकी बात मैं सुना रहा हूँ। भविष्यपुराणकी बात है। श्रीरामानुजाचार्यने शङ्कराचार्यजीसे पूछा कि श्रुतिमें तो ईश्वरको अँगूठेके बराबर लिखा है तुम उसको सर्वाधिष्ठान, अनन्त, अद्वितीय वस्तु कैसे बोलते हो ? ईश्वर तो अँगूठेके बराबर होता है। यह तो श्रुतिमें है कि, 'अङ्गुष्ठमात्रपुरुषः'। शङ्कराचार्यने कहा कि यह तो ठीक है परन्तु आत्माको अणुमात्र लिखा हुआ है श्रुतिमें कि आत्मा अणु है। उसको तुम अँगूठेके बराबर कैसे मानते हो ? अच्छा! तो बोले कि हृदय है न वह चूँकि अँगूठेके बराबरका है तो हृदयकी उपाधिसे हम आत्माको अँगूठेकी उपाधिके बराबर मानते हैं। तो, अणुको अँगूठेके बराबर मानते हैं हृदयकी उपाधिसे। और, सर्वव्यापी परमेश्वरको भी गोपाललालके रूपमें अँगूठेके बराबर मानते हैं हृदयकी उपाधिसे। क्योंकि हमारा हृदय ही अँगूठेके बराबर है। यह धारणाकी बात कर रहे हैं।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

अपनी चित्तवृत्तिको एक स्थानमें बाँध लो। एक वह भी है कि उसको उन्मुक्त कर लो। यह दूसरी धारणा है, वह भी सुना देंगे।

एक स्थानमें अपनी चित्तवृत्तिको बाँध लेनेका नाम धारणा है। यह योगदर्शनका सूत्र है–'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।'

अच्छा, तो अपने चित्तको स्थानमें कहाँ बाँधे ? आप चौबीस घण्टेके लिए यह ध्यान रखो कि मुम्बईसे बाहरकी कोई बात आपके मनमें न आवे। अरे! बाबा मोटर अमेरिकासे बनी हुई आयी है, हवाई जहाज उड़ते हैं अन्तर्राष्ट्रीय। अमेरिका और लन्दनमें तुम्हारे व्यापार हैं। यूरोप-अमेरिकामें तुम्हारा व्यापारका सम्बन्ध है। तब कैसे यह नियम करोगे कि मुम्बईके बाहरकी बात हमारे चित्तमें न आवे। अपने चित्तमें मुम्बईके सिवाय और कोई कोलकाता न आवे, मद्रास न आवे ऐसा नियम करो। अच्छा छोड़ो, नरीमान प्वाइन्टके बाहरकी कोई बात न आवे। यह 'देशबन्ध' हुआ। अच्छा, प्रेमकुटीरके हॉलमें बैठे हैं तो, घण्टे भरके लिये आप ध्यान रखो कि इस हॉलके बाहरकी कोई बात अपने मनमें न आवे। धारणाका अर्थ ऐसा होता है।

अच्छा, तो शरीरके किसी अंशमें यह छिद्र जो है, नाक छेद है, कान छेद है, आँख छेद है, यह रोम-रोममें छेद हैं, मुँहका छेद है, हृदयका छेद है। छिद्र तो हैं न तो वह देश हैं। खुले देश हैं। तो, अपने मनको मूलाधारसे लेकर सुषुम्ना पर्यन्त किसी भी स्थानमें अपनी चित्तवृत्तिको सीमित करके बाँधकर रखना धारणा होती है। अब आप इसका प्रथम चरण लो। साधारण रूपसे केवल शुद्ध देशका ध्यान नहीं हो सकता, क्योंकि; यह जो शरीरके अवयव देशको सीमित करते हुए मालूम पड़ते हैं कि नाकका छेद गोल-गोल है, कानका छेद कनेरके फूलकी तरह है और मुँहका छेद पूरा गस्सा लेने भरका है। तो, ये जो छिद्र छोटे-छोटे मालूम पड़ते हैं वे वस्तुतः छोटे-छोटे नहीं हैं। यह दिक्-तत्त्व ही है। उपाधिके कारण छोटे-छोटे मालूम पड़ते हैं। यदि आप शुद्ध देश तत्त्वका ध्यान करना

चाहोगे तो आपके ध्यानमें वह नहीं आवेगा। तो उसके लिये आप भगवान्‌की एक मूर्ति ले लीजिये। यह देखो भक्ति हो गयी।

देखो, कोई भी मूर्ति ले लेते हैं। जैसे एक लड़कीको ले लिया, एक लड़केको ले लिया। सूफी लोग ऐसे भी करते हैं, ऐसा भी सम्प्रदाय है। सूफियोंके सम्प्रदायमें दो तरहका एक हकीकी (असली, सच्चा) और एक मजाजी (कल्पित, लौकिक) ऐसे दो तरहका इश्क मानते हैं। तो, वे किसी लड़की, लड़केका भी ध्यान करते हैं। यह भी एक पद्धति है। परन्तु किसी लड़कीका और किसी लड़केका ध्यान करेंगे तो जब उससे बढ़िया उससे सुशील, उससे सुन्दर, उससे स्वस्थ मिलेगा तो वह ध्यान बदल जायेगा।

तो, अपनी माताको ईश्वररूप समझो, यह जरूरी है! पिताको ईश्वररूप समझो, पतिको ईश्वररूप समझो, माताको जगदम्बा, जगत्- जननीरूप समझो। तो, इसमें ईश्वरताका सम्बन्ध जोड़ना जरूरी है। और उसमें महत्त्वबुद्धि होगी तो उस धारणामें निष्ठा हो जायेगी। इसलिए कृष्णकी मूर्ति लो, रामकी मूर्ति लो, जिसमें आँख बनी हो, कान बना हो, नाक हो, पाँव हो, मुस्कान हो, चितवन हो, थोड़ा आकर्षण भी हो और अपनी मनोवृत्तिको देखो। वह मूर्ति चाहे एक हिस्सेकी मालूम पड़े चाहे एक हाथकी मालूम पड़े।

हमारे एक मित्र महात्मा थे। वह कहते थे कि अपनेसे सवा हाथ दूर, धरतीसे सवा हाथ ऊपर, सवा हाथके भगवान्। वह सवा हाथकी माप बताते थे तो, उसमें जो सवा हाथ है वह तो है धारणा। और उसमें जो सवा हाथके भगवान् हैं उनमें जो महत्त्वबुद्धि है वह वहाँसे मनको डिगने नहीं देती है। तो, असलमें आपका मन सवा हाथमें आया, परन्तु ईश्वर- बुद्धिको लेकर माया और शुद्ध देश नहीं, मूर्तिको लेकर आया। तो, जो कुतर्क करेंगे कि मूर्तिमें हम ईश्वरको क्यों माने ? उनको हमें समझानेकी कोई जरूरत नहीं है। परन्तु जो

कहेंगे कि हम धारणा कैसे करें महाराज ? अपने मनको स्थिर कैसे करें ? तो उनसे कहेंगे कि हमारे चेले बनो, हम बताते हैं कि अपने मनको यहाँ लगाओ। हमारी आज्ञा मानो, आदेश मानो। शास्त्रका आदेश मानो, गुरुका आदेश मानो।

आदेश गुरुको, मेरी भक्ति, गुरुकी शक्ति, फुरो मन ईश्वरोवाचा।

यह आदेश गुरुका जो है इसका रहस्य भी सबको नहीं मालूम है। वह तो जिसको प्यास होती है वही इसको समझता है। हम ऐसी सैकड़ों बातें जानते हैं, जैसे हरिबाबाजी महाराजका बाँध है। दूर-दूर तक माने करीब सात सौ गाँवके करीब उस बाँधसे सम्बन्ध रखते हैं। पहले तो पढ़े-लिखे ज्यादा लोग नहीं थे, प्रायः गँवार ही थे। ज्यादातर गृहस्थी करते थे और किसान थे। तो किसीको बिच्छू मार गया और वह पकड़े हुए आया। अब महाराज, बाँधपरका कोई भी आदमी, सेवक मिल जाय तो बोले बैठो। और कहते कि *'आदेश हरि को'*, माने हरिबाबाका आदेश है कि *'ओ बिच्छू के विष उतर जा'*-और थोड़ी देरके बाद बिलकुल ठीक हो जाता! उनके मनमें विश्वास था कि हरि बाबा साक्षात् भगवान् हैं।

जिन लोगोंको अध्यात्मकी प्यास नहीं है उन लोगोंकी समझमें ऐसी बातें नहीं आतीं और उनको समझाना भी बेवकूफी है। जब वे खुद प्यासे होकर आवें, उनको जब जरूरत हो, जब जरूरतमन्द होकर आवे तब उनको समझाना चाहिए। लाउडस्पीकर पर, डांडी पिटवाकर, अखबारोंमें छपवाकर लोगोंको बुलाया और बोलते हैं कि तुम जो मैं कहता हूँ सो करो। तब कैसे करेंगे बाबा ? उनको जब जरूरत होगी तब करेंगे कि तुम्हारे डांडी पिटनेसे तुम्हारी बात मानेंगे? इसीसे पहले अध्यात्मविद्याका प्रचार नहीं होता था। प्यासे लोग कुएँके पास जाते और फिर तो उनको जो बता दो, जहाँ बता दो, फिर तो सिलपिल्लेको भी भगवान् मान लें।

देखो! अपने मनको एक स्थानमें बाँधनेके लिए एक तो मूर्ति चाहिए। यह भक्तोंकी धारणा है। मूर्ति कोई भी हो, गोल मटोल रख लो–शालिग्राम, लम्बी रख लो देह हो जायेगा, उसमें आँख, कान, नाक हो जायँ। साँवरा कर दो तो कृष्ण, राम, नारायण हो जायँ और गोरा कर दो तो शिवजीकी मूर्ति हो जायेगी। यह उपासनाका एक रूप लोगोंके ध्यानमें साधारण रूपसे नहीं आता है। उपासना होती कहाँ है ? दिखता हो कुछ और, और मनसे माना जाय उसको कुछ और तब उपासना होती है। दीखे शालिग्रामकी बटिया और मानो चतुर्भुज विष्णु, नारायण, तब उपासना होगी। दिखे, पीतलकी–अष्टधातुकी मूर्ति और मानो उसको साक्षात् नारायण।

भगवान् शङ्कराचार्यजीने उपासना जहाँ समझायी है तो अपने भाष्यमें उदाहरण ही यह दिया है कि, 'यथा शालग्रामे विष्णुबुद्धिः' उपासनाका स्वरूप क्या है ? कि आँखसे गोलमटोल काला एक पत्थर, दिख रहा है, गण्डकी शिला दिख रही है उसको पत्थर मानना अपराध है। गण्डकी शिला दिख रही है और उसको नारायण समझ करके ध्यान करो। तो, सामने बटिया और हृदय हो जायेगा नारायणाकार। तुम्हारे दिलको बदलनेकी यह युक्ति है। तो, शक्तिके रूपमें करो। ज्योतिके रूपमें करना हो तो सूर्यके रूपमें करो। पशुके रूपमें करना हो और मूर्ति बहुत पसन्द हो तो गणेशके रूपमें करो। परन्तु, दिखे कुछ और, माने दिखे आदमी और उसको मानो भगवान् । तो, आदमी–आदमी ही रहेगा परन्तु तुम्हारी मान्यता भगवान् बन जायेगी। हमें अपने दिलको बदलना है। यह धारणाका स्वरूप है।

मूर्तिपूजासे धारणा बनती है। श्रीमद्भागवतके दूसरे स्कन्धमें दो प्रकारकी धारणाओंका उल्लेख है। और दो प्रकारकी वेदान्तियोंकी ले लेंगे तो चार प्रकारकी हो जायेगी। योगियोंकी भी दो प्रकारकी है

तो छः प्रकारकी हो जायेगी। तो भागवत्में ईश्वरका ध्यान है। ईश्वरमें धारणा। तो, वे कहते हैं कि अपने हृदय प्रदेशमें आप कभी प्रेमसे, उपादेय बुद्धिसे श्रीमद्भागवतको पढ़ें। कुतर्क बुद्धिसे न पढ़ें। कैंची लेकर काटनेके लिए उसको नहीं पढ़ें। अपने मनके निर्माणके लिये आप देखें कि उसमें-से क्या सामग्री आती है ?

तो, हृदय कमल है। अब काटकर ढूँढो तो बिलकुल नहीं मिलेगा। कहते हैं एक महाशयने एक मुर्देका शरीर कैंचीसे काट-काटकर देखा तो उनको कोई चक्र नहीं मिला। न मूलाधार, न स्वाधिष्ठान, न मणिपूरक, न अनाहत, न विशुद्ध कोई चक्र नहीं मिला। अरे! भाई यह मनको एक कायदे, एक रेखा पर चलानेके लिए है। धारणा जो होती है वह जैसे ज्यामितिकी रेखा होती है-ऐसे उन यन्त्रों पर, उन रेखाओं पर मनको घुमानेसे मनका निरोध हो जाता है। मनका एक खास तरहका रूप बन जाता है। इसीसे यन्त्र भी होता है, यन्त्र होता है रेखा। लकीरें जो खींच देते हैं, जैसे डिजाईन बनाते हैं मशीनका वह यन्त्र है और उसको चलानेकी एक टेकनिक होती है उसको तन्त्र बोलते हैं। और उसकी जो विद्या होती है उसको मन्त्र बोलते हैं। तो, यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र इन तीनोंके द्वारा अपना हृद्यन्त्र क्रियाशील होता है और वह काम करता है। तो, यह जो मूर्ति बनाते हैं उसमें कुछ रेखाएँ होती हैं। भगवान्के एक चरणमें उन्नीस रेखाएँ हैं। ध्वज है, अंकुश है, वज्र है, कमल है, यव है। एक चरणमें सोलह रेखाएँ हैं। तो, भगवान्के लाल-लाल तलवेमें अपने मनको उन रेखाओंमें घुमाओ। उनके वक्षःस्थलपर एक सुनहरी भौंरी है। उसमें अपने मनको घुमाओ। उनके होंठोंकी जो कट है पानकी तरह, पीपलके पत्तेकी तरह तो उस रेखापर अपने मनको घुमाओ। यह यन्त्र है हो। और प्रेमसे घुमाओ। ईश्वर बुद्धिसे, महत्त्वबुद्धिसे घुमाओ। इसमें जो लाल-लाल छलकता हुआ जो अमृत भरा हुआ है। यह जो

सफेद-सफेद, मन्द-मन्द हँसी निकलती है उसमें अपने मनको घुमाओ। यह तन्त्र है मनको बाँधनेका। और बारम्बार इनका नाम लोगे तो स्मरण होगा। तो, यन्त्र, तन्त्र, मन्त्रके द्वारा इस मनरूप भागते हुए पिशाचको, उसकी वृत्तियोंको एक परमेश्वरमें स्थिर करनेका नाम धारणा है। आप भागवतके दूसरे स्कन्धमें प्रारम्भमें ही इसको पढ़ें। पहले ही अध्यायमें इसका वर्णन है।

अच्छा, अब दूसरी धारणा देखो भक्तोंकी, वहाँ उसका नाम 'धारणा' ही लिखा है। 'यया धारणया' 'कया धारणया'; 'योग' शब्दमें 'युज्' धातु है-'युज्-समाधौ', 'युज्-संयोगे'; तो यहाँ युज् (जुड़ना) शब्दका प्रयोग करो। 'धारणा' शब्दका ही प्रयोग किया गया है वहाँ, कि केवल मेरे शरीरमें ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व शरीर ही विराट् है, परमेश्वरका रूप है। असलमें जो सूक्ष्म होता है वही स्थूलके रूपमें प्रकट होता है। प्रकृति ही महत्तत्त्व आदिके क्रमसे प्रकट होती है। देखो, हमारा आत्मा कहाँ है ? बुद्धि और आत्मा दोनोंके बीचमें एक कल्पित रेखा है उसका नाम है प्रकृति, माया। बुद्धिसे अन्तरङ्ग हम हैं, बुद्धिवृत्तिके साक्षी हम हैं। तो, हमारी बुद्धि ही जगत्के रूपमें प्रकट हुई है-यह साङ्ख्यमत है। लो भला! चित् सत्त्व है, प्रख्याशील उसमें होती है यह प्रवृत्ति, प्रवृत्तिसे यह जड़ता पैदा हो जाती है। मूलमें चित् सत्त्व एक है और उसका द्रष्टा मैं एक हूँ। बात वहीं पहुँचती है।

अच्छा, जगत्के मूलमें ईश्वर है। वह चेतनयुक्त चित् सत्त्व है। वही हिरण्यगर्भ हुआ और वही विराट्के रूपमें प्रकट हुआ तो 'पातालम् एतस्य हि पादमूलम्' उसका पाँव है पाताल, उसकी कमर है धरती, उसका सिर है ब्रह्मलोक और सारी दिशाओंमें उसकी बाहुएँ हैं। और वह नित्य अविनाशीपुरुष है। एक पुरुष खड़ा है जिसके रोम-रोममें ब्रह्माण्ड हैं। उस ब्रह्माण्डमें धरती है। धरतीके भीतर कहीं यह एक शरीर भी है, इसको भूल जाओ। इसको विराट्की धारणा

बोलते हैं। यह भी धारणा है। धारणा माने अपने मनको एक स्थानमें बाँधनेकी युक्ति। अब यही धारणा ध्यान बन जायेगी। कि, कब बनेगी? जब कुछ कालतक रहेगी या तो आप हृदयके भीतर ईश्वरको देखें, सेठ जयदयालजी बोलते थे, हृदयके भीतरके अन्दरके बीचके माँहि। यह मारवाड़ीमें बोलनेकी ऐसी कोई पद्धति होगी। तो आप चाहे 'हृदयके भीतरके बीचके माँहि'–परमेश्वरको देखिये या चाहे सम्पूर्ण विश्वसृष्टिके रूपमें परमात्माको देखिये। इसमें न कोई शत्रु है, न मित्र है, न भला है, न बुरा है, न सुख है, न दुःख है, न नरक है, न स्वर्ग है यह उपासनाकी पद्धति है। यह स्थूल निर्माणकी पद्धति नहीं है, हृदय निर्माणकी पद्धति है।

पद्धति माने प्रणाली, शैली, ढङ्ग, उपाय, युक्ति। पद्धति माने जिस रास्ते बहुत लोग चलते हैं तो उनके पाँवके निशान बनते–बनते रास्ता बन जाता है। तो, उसको हिन्दीमें पगडण्डी बोलते हैं और संस्कृतमें उसको पद्धति बोलते हैं। पद्धति माने जिस रास्तेसे बहुतसे महात्मा गये हों उसका नाम पद्धति होता है। इसपर महात्माओंके चरणके निशान पड़े हुए हैं। आप इस मूर्तिमें ईश्वरबुद्धि करो, वह मूर्ति आपकी बुद्धिमें समा जायेगी और आपकी बुद्धिमें ईश्वर रह जायेगा। मूर्ति लुप्त हो जायेगी, गुप्त हो जायेगी, सुप्त हो जायेगी और बुद्धिमें जो ईश्वरका आपने चिन्तन किया है वह बुद्धि रह जायेगी।

अब धारणाको दूसरा मोड़ दें, वेदान्तियोंकी धारणाका मोड़ यह है कि अपने शरीरमें ही अन्नमयकोषका चिन्तन बिलकुल धारणामात्र है। यह अन्नमय पुरुष मैं हूँ, यह धारणा है। कि नहीं जी, अन्नमयपुरुष तो मैं क्या होऊँगा! वैसे जो खाते हैं थालीमें लेकर अन्न उसका नाम भी ब्रह्म है। 'अन्नं ब्रह्म इत्युपासीत' (तैत्तिरीयोपनिषद्)। और, खानेवाला ? तो, खानेवाला भी ब्रह्म है। 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः'–गीतामें तो है न!

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्।
अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः।। (तैत्तिरीयोपनिषद्)

यह तो श्रुति ही है। अन्न भी मैं हूँ और अन्नका भोक्ता भी मैं हूँ। तो यह पाँचभूतोंसे बना हुआ, जिसमें शक्ल-सूरत एक गढ़ दी गयी है, यह अन्नमयकोश इसमें जब मैं करके हम बैठते हैं तब अन्नमयपुरुष होते हैं। चेतन हम ही हैं। जब चेतन शरीरसे मैं करके बैठा तब वह अन्नमयपुरुष हुआ। और अन्नमयको छोड़कर प्राणसे एक होकर बैठा तो प्राणमयपुरुष हुआ। चेतन वही-का-वही, जो अन्नमयमें था वही प्राणमयमें। मनोमय, यह जो हम जिस करणके द्वारा सब इन्द्रियोंसे विषय ग्रहण करते हैं। एक विषयको ग्रहण करनेके लिए एक इन्द्रिय होती है। जैसे रूपको आँख देखती है। असाधारणकरण है रूपको देखनेमें आँख और मन साधारणकरण है। वह कानमें रहकर सुनता है, जीभमें रहकर चखता है, आँखमें रहकर देखता है। एक-एक इन्द्रियाँ एक-एक विषयको ग्रहण करती हैं। ये इन्द्रियाँ अपञ्चीकृत हैं इसलिए। और, विषय पञ्चीकृत हैं इसलिए विषय एक-एक होते हैं। यह शरीर जो है वह पञ्चीकृत है और इन्द्रियाँ अपञ्चीकृत हैं। और मन भी अपञ्चीकृत सात्त्विक है, सूक्ष्म है, इसलिए वह सबमें रहता है- 'मनोमय'। कर्त्ता विज्ञानमयकोश है और भोक्ता आनन्दमयकोश है और चेतन सबमें एक है। जो अन्नमय है, जो प्राणमय है, जो मनोमय है, जो विज्ञानमय है, इनमें चेतन एक ही है। यह कोषोंकी असलमें धारणा ही है। यह नहीं कि शरीर काटकर कोई निकालना चाहे कि अन्नमय कहाँ है ? प्राणमय कहाँ है ? मनोमय कहाँ है? विज्ञानमय कहाँ है ? यह धारणा होती है। तो काहेके लिए होती है ? तो, एक तो आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए यह धारणा होती है। अपनेको समझनेकी यह युक्ति है। जैसे मनके निग्रहमें युक्ति है योगकी, वैसे ही अपने आपको समझनेमें यह युक्ति है।

अच्छा, इस तरहकी कई धारणायें होती हैं। पञ्चीकरणकी धारणा है, त्रिवृत्करणकी धारणा है, पञ्चकोशकी धारणा है, कार्य-कारणभावकी धारणा है। एक समझनेके लिए होती है। होनेके लिए जो होती है वह तो योग है। और, भगवान्‌को सर्वात्माके रूपमें देखनेके लिए जो होती है वह भक्ति है। और, अपनेको ब्रह्म जाननेके लिये जो होती है वह विवेककी प्रक्रिया है, परन्तु सब जगह यह नियम सामान्य है कि, मालूम कुछ दूसरा पड़ रहा है और भाव उसमें दूसरा कर रहे हैं। यह नियम बिलकुल सामान्य है। नहीं तो आप गुरुको ईश्वर मानते हो, क्या गुरुके बापको नहीं जानते हो आप? गुरुके गुरुको जानते हो कि नहीं ? गुरुके शरीरमें इंजेक्शन लगता है, खून निकलता है, हड्डी मालूम पड़ती है, मांस मालूम पड़ता है, एक किलो मल-मूत्र निकलता है उनके शरीरमें-से, एक किलो रोज भोजन करता है, वह शरीर परमेश्वरका कैसे हो सकता है ? तो, असलमें कल्पना-कल्पना कहकरके आप इसका उपहास न करें। यदि आपको अपने मनमें परमेश्वरको बसाना हो तो, श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भाव करें। भाव करनेसे धारणा होती है।

यह पृथिवी जलमें लीन होती है। घड़ा फूटकर पृथिवीमें लीन होता है, यह प्रत्यक्ष है। और, पृथिवी जलमें लीन हो जायेगी यह अनुमान है। जल अग्निमें लीन होगा यह अनुमान है। अग्नि वायुमें लीन होगा यह अनुमान है। वायु आकाशमें लीन होगा यह अनुमान है। और आकाश आत्मामें लीन होगा यह शास्त्र है। और, सम्पूर्ण प्रकृति-विकृति, सम्पूर्ण माया अपनेसे भिन्न नहीं है यह अनुभव है। बिना अनुभवके यह नहीं मालूम पड़ेगा। यह विभाग है इसका-

प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा।
आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेदिह।।

घटका नाश हम प्रत्यक्ष देखते हैं। पृथिवी, जल, अग्नि आदि

सावयव हैं इसलिए उनके नाशका अनुमान करते हैं। और, आकाशकी उत्पत्ति और लय शास्त्रसे जानते हैं कि आत्मासे होता है। यह आत्मा अद्वितीय ब्रह्म है यह अनुभूति है। शास्त्रसे प्रमा होती है और प्रमा होनेके बाद अपने स्वरूपके विषयमें प्रमा होनेकी जरूरत नहीं रहती है इसलिए प्रमा भी बाधित हो जाती है और आत्माका ब्रह्मके रूपसे साक्षात् अनुभव हो जाता है।

तो, यह जो है कि पृथिवी जलमें लीन हुई, यह जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश मनमें, मन बुद्धिमें-जानकारीमें और यह जानकारीमात्र है यह आत्मा है। इसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। 'आह च तन्मात्रम्' तो, यह सब पृथिवीका जलमें, जलका अग्निमें लीन होना क्या है ? कि यह धारणा है। यह भी अन्वय-व्यतिरेककी विधासे दो प्रकारकी होती है। ये बच्चे लोग तो डर जाते हैं। मैं पृथिवी हूँ यह धारणा है। पञ्चभूतोंकी धारणाका शास्त्रोंमें इतना विस्तारसे वर्णन है। असलमें हम लोग तो किस्से-कहानियोंसे ही वेदान्त सीख लेते है न! मैं पृथिवी हूँ।

स्वामी रामतीर्थ बोलते थे-'मैं भारत, हिमालय मेरा सिर है, कन्याकुमारी मेरा पाँव है और हमारी बाँहें पूर्व और पश्चिमके समुद्रका स्पर्श करती हैं।' यह देखो, देहमें जो मैं है, उसको निकालकर भारतमें मैं कर दिया और वहाँसे निकालकर पृथिवीमें 'मैं' कर दिया कि मैं पृथिवी हूँ। मैं ही जल हूँ, समुद्रोंके रूपमें लहरा रहा हूँ। मैं ही कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्रमा और ज्योतिषचक्रके रूपमें चमक रहा हूँ। मैं ही वायुके रूपमें सबकी साँस बन रहा हूँ, सबका प्राण बन रहा हूँ, मैं ही आकाशके रूपमें बिखरा हुआ अवकाश हूँ। मैं ही वह ज्ञान हूँ जिससे सब-के-सब प्रकाशित होते हैं। और, मैं ही वह अद्वितीय सच्चिदानन्दघन ब्रह्म पदार्थ हूँ जिसमें द्वैतकी सत्ता नहीं है। यह भी धारणा है।

जबतक अज्ञानको नष्ट करनेवाली ब्रह्मविद्याकी उत्पत्ति होकर अज्ञानको नष्ट करनेवाली, ब्रह्मके अज्ञानको नष्ट करनेवाली ब्रह्मविद्याकी उत्पत्ति होकर जबतक एकबार द्वैतका बाध नहीं हो जाता, तबतक जो हम सोचते हैं कि हम पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश हैं तबतक यह धारणाके अन्तर्गत आता है भला! इसका नाम धारणा होता है। और, एकबार प्रपञ्चकी विस्मृति हो जाय और यह स्थिर हो जाय तो इसका नाम ध्यान होता है। स्थिरतामें क्या बात है कि धारणाको ध्यान कब बोलेंगे कि जब उठती-गिरती धारणा जो है वह प्रत्येक बार अपने लक्ष्यको ही विषय करने लग जायेगी।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।।

अब आगे धारणा और सुनावेंगे और धारणाके साथ-साथ ध्यान भी सुनावेंगे। साकारवादी भक्तोंका क्या ध्यान है वह भी बतावेंगे। यह शरणागति जो है वह बड़ा भारी ध्यान है। साकारमें प्रेम, अन्तर्यामीमें शरणागति और शुद्धमें एकता, नियममें नियामक भावसे जो रहित है उसमें एकता। यह असलमें अलग-अलग विषय हैं। जो लोग काट-कूट करते हैं वे गड़बड़ झाला कर देते हैं। जहाँ साकारका विषय है वहाँ साकारकी दृष्टिसे देखो। जहाँ अन्तर्यामी परमेश्वरका विषय है वहाँ उस दृष्टिसे देखो। जहाँ शुद्धका विषय है वहाँ शुद्धकी दृष्टिसे देखो। आपको कहीं न शास्त्रमें असङ्गति मालूम पड़ेगी, न कुछ काटनेकी वस्तु मालूम पड़ेगी, सब उपयोगी मालूम पड़ेगा और सबका समन्वय मालूम पड़ेगा। जब आप अनुभवके मार्गसे इनका निरीक्षण, इनका परीक्षण, इनका समीक्षण करने लगेंगे तब मालूम पड़ेगा कि यह कितना स्पष्ट अनुभव है।

●

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

बात हम कर रहे हैं ध्यानके विज्ञानकी। उद्देश्य यदि पवित्र हो और महान् हो, तब ध्यानका आध्यात्मिक लाभ हो सकता है। और यदि उद्देश्य अपवित्र हो और अल्प हो तब ध्यानका आध्यात्मिक लाभ नहीं होता है। जो लोग शत्रुके मारणके लिये पुरश्चरण करते हैं, वे भी क्षुद्र देवताओंका ध्यान करते हैं। परन्तु वहाँ उद्देश्य अपवित्र है। शास्त्रमें बताया है कि भले उनकी कामना सिद्ध हो जाय, लेकिन उनको पाप जरूर लगेगा। मीमांसकोंने निर्णय किया है कि कोई 'शेन' याग करेगा तो उसको फलप्राप्ति तो होगी, परन्तु अधर्म भी होगा साथ-ही-साथ। तो, उद्देश्य पवित्र हो और वह अल्प न हो, महान् हो। जो सबसे बड़ा है, परमार्थ है, सत्य है, परमेश्वर है, भगवान् है उसकी प्राप्तिके लिए हो। आत्म साक्षात्कारके लिए हो, ब्रह्मात्मैक्यके अनुभवके लिए हो। और, जो महान्‌को चाहता है वह अल्पका परित्याग करता ही है। लाखका फायदा होनेवाला हो तो दस हजार फेंक देनेमें कोई हर्जा नहीं होता है। लोग करते ही हैं पाँच किलो अनाज बोया और सौ किलो उसमें-से निकाल लिया। तो, महान्‌की प्राप्तिके लिए अल्पकी ओरसे दृष्टि हटानी पड़ती है।

अब आपको पहले बताया कि स्थान पवित्र हो, समय पवित्र हो, अपना भोजन पवित्र हो, अपना कर्म पवित्र हो, शरीर पवित्र हो, भगवान्‌की प्रसन्नता-ईश्वरकी प्रसन्नता अपने ऊपर बरस रही हो।

हमारे एक महात्मा हैं, वे कहते हैं आप ईश्वरको हर बार काहेको जोड़ देते हैं ?

आपको सुनाते हैं कि ईश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न है इसका अभिप्राय यह है कि वह अपने उपर कोई पर्दा देकर नहीं रख रहा है। हम जो देखते हैं, जो सोचते हैं वहाँ परमात्माका दर्शन होता है। संस्कृत भाषामें 'प्रसन्न' शब्दका अर्थ होता है 'निर्मल'। 'दिशः प्रसेदुः' (भागवत १०.३.२)

प्रसन्नं सरः।

आज सरोवर प्रसन्न है, माने निर्मल है, प्रसादगुण युक्त है। आज दिशाओंमें कुछ उहापा नहीं है, निर्मल है, प्रसन्न हैं दिशाएँ। तो, जब ईश्वर प्रसन्न होता है उसकी पहचान यह है कि उसके ऊपर जो परदा पड़ा हुआ है वह न मालूम पड़े। और हमारा हृदय, हमारा चित्त प्रसन्न हो। ईश्वरने अपने लिए अन्तःकरण अलग नहीं रखा है। जैसे हम लोगोंने घर अलग-अलग बनाकर रखा है ऐसे ईश्वर अपने रहनेके लिए अलग-अलग घर नहीं बनाता है, वह हमारे हृदयमें ही रहता है। तो, हमारे ऊपर ईश्वर प्रसन्न है, यह बात कब मालूम पड़े ? जब हमारा हृदय प्रसन्न हो। बिना विषय सम्बन्धके बिना भोगके, बिना क्रियाके और हृदयमें प्रकाश-ही-प्रकाश, प्रसाद-ही-प्रसाद, शान्ति-ही-शान्ति मालूम पड़े अपने हृदयमें समझो कि ईश्वर प्रसन्न है।

ध्यानमें रुचि होती है व्यक्तिगत सम्बन्धों और इच्छाओंके कम होनेपर, और परमेश्वर सम्बन्धी मनोरथ, अभिलाषाके जाग्रत् होने पर। यह अध्यात्मशास्त्रका सिद्धान्त है कि जो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-आत्मा ब्रह्म है इसमें तो आना-जाना नहीं है लेकिन यह जो अन्तःकरण है वह भीतरसे बाहर जाता है और बाहरसे भीतर आता है। तो, इसको पवित्र करनेका उपाय करना पड़ता है। जरा बाबू लोगोंके ध्यानमें यह बात कम आती है। यह बाहरसे भीतर मनमें जाता है। जैसे हम आप लोगोंको देख रहे हैं और आँख बन्दकर लें

तो भीतर सबको देख सकते हैं। और, भीतर जो देखी हुई वस्तु है उसको हम खुली आँखसे भी बाहर देख सकते हैं। तो, यह जो मनकी नदी है-

चित्त-नदी उभयतो वाहिनी। (पातञ्जलयोगदर्शनम्)

योगदर्शनका कहना है कि बाहरसे चीजें मनमें जाती हैं और जो भीतर हैं वे बाहर निकलती हैं। मनमें आवागमन होता रहता है। तो, अब कोई बढ़िया वस्तु अपने हृदयमें डालना हो, तो उसको बाहरसे डालना शुरू कीजिये। जैसे आपको अपने हृदयमें नारायणका दर्शन करना हो, तो बाहर नारायणकी मूर्ति रख दीजिये और उसको देखिये। तो, बाहर रहेगी मूर्ति और आँख उसको धीरे-धीरे-धीरे अनजानमें ही आपके हृदयमें पहुँचा देगी। और आप हृदयमें देखने लगेंगे। और जब हृदयमें देखने लगेंगे तो फिर आँख खुलेगी तो वही मूर्ति बाहर दिखने लगेगी। वह मूर्ति हृदयमें बैठ जायेगी।

ध्यानकी पद्धति यह है कि बाहरसे भीतर ले जायँ, और भीतरसे बाहर ले आवें और दोनों ओर परमात्माका साक्षात्कार करें। बादमें बाहर-भीतर सब एक हो जायेगा। लेकिन साधना प्रारम्भ यहाँसे होगी कि जहाँ हमारी पहुँच न हो और वहाँ कोई चीज पहुँचानी हो तो बाहरसे ही उस चीजको डालना शुरू कीजिये। धीरे-धीरे-धीरे वह भीतर पहुँच जाती है।

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम्।
हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः।।

(11.14.32)

श्रीमद्भागवतमें जहाँ ध्यानका वर्णन है 'सम आसन आसीनः' चलते-चलते ज्यादा ध्यान मत लगाना क्योंकि; ठोकर लगेगी तो गिर जाओगे। और, सोते-सोते भी ज्यादा ध्यान मत

लगाना, नींद आ जायेगी! तो ध्यानके लिए बैठना आवश्यक है। और उसमें भी टेढ़े-मेढ़े बैठना नहीं। बैठे-बैठे झूमना नहीं चाहिए। और, प्राणायाम भी जिसमें श्वास सम्मेलन होनेकी सम्भावना हो, श्वास सम्मेलन माने जब बहुत आदमी इकट्ठा होते हैं तो जन सम्मेलन हो जाता है और जब बहुत आदमी इकट्ठा होकर भस्त्रिका करने लगते हैं तो किसीको दमा हो, किसीको टी.बी. हो, तो श्वास सम्मेलन होनेसे एकका रोग दूसरेमें सञ्चार होनेकी सम्भावना होती है। तो, यह योग एकान्तकी वस्तु है।

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः।।
(11.14.33)

हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत्।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम्।।
(11.14.34)

प्राणायाम भी पूरक-कुम्भक-रेचक अथवा रेचक-कुम्भक-पूरक ऐसे करना चाहिए। बाह्य कुम्भक हो चाहे अन्तः कुम्भक हो, इसमें श्रीमद्भागवतका ऐसा कहना है कि यदि प्रतिदिन तीन समय हल्का-सा प्राणायाम मनुष्य कर ले-

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत्।
दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग् जितानिलः।।
(11.14.35)

दिनभरमें तीन बार और दस-दस प्राणायाम कर ले। पूरक-कुम्भक-रेचक और वह भी अल्पमात्रामें, जैसे आपको बताया था, एक-चार-दो। 'मासादर्वाग् जितानिलः'-एक महीनेसे पहले ही प्राणवायु पर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। इसमें समय भी दिया है क्योंकि यह प्राणायाम काल प्रधान होता है। एक मात्रा-चार मात्रा-दो

मात्रा, माने एक मिनट–चार मिनट–दो मिनट काल प्रधान प्राणायाम होता है, उसमें कालकी अवधि बना दी। एक महीनेमें आपका प्राणायाम काबूमें आ जायेगा। इसमें जोर नहीं लगाना चाहिए कि कान फट जाय, कि आँखमें–से हवा निकल जाय, कि अँतड़ीमें उतर जाय। तो, ज्यादा जोर नहीं लगाना चाहिए, हल्का–फुल्का प्राणायाम करना चाहिए।

अब उसके बाद भागवतकी प्रणालीमें जो ध्यान है उसमें सगर्भ प्राणायामका विधान है। एक सगर्भ होता है, एक निर्गर्भ होता है। सगर्भ क्या है ? कि उसके साथ शब्द भी जोड़ दें। जैसे ऊँचे स्वरसे प्रणवका उच्चारण करते हैं! रा..........म तो, उसको भीतर–ही–भीतर करें, मुँहसे बोलनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु 'पुनः संवेशयेत् स्वरम्' उसमें स्वरका संनिवेश होना चाहिए। और स्वरके संनिवेशसे शक्तियोंको ऊर्ध्वगामी बनाना चाहिए।

हृत्पुण्डरीकमन्तः स्थमूर्ध्वनालमधोमुखम्।
ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम्।।

(11.14.36)

भागवतके ग्यारहवें स्कन्धके चौदहवें अध्यायमें इस ध्यानका वर्णन है–

हृदयमें एक कमल है। और उसमें आठ दल (पँखुड़ियाँ) हैं। उसमें बीचमें कर्णिका (गद्दी) है। मंजरी चारों–ओर है और आठ दल हैं। उसकी गद्दी पर ॐकारका विन्यास करना है। तो, उसमें पहले सूर्य और बादमें चन्द्रमा और चन्द्रमाके बाद अग्नि। ऐसे भागवतमें लिखा है।

कर्णिकायां न्यसेत् सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम्।
वह्निमध्ये स्मरेद् रूपं ममैतद् ध्यानमङ्गलम्।।

(11.14.37)

हम लोग टीका करते हैं तो ऐसे लिख देते हैं कि हृदयमें पहले सूर्य, फिर चन्द्रमा और फिर अग्निका ध्यान करना चाहिए। और, अग्निमें अपने इष्टदेवके स्वरूपका ध्यान करना चाहिए। तो, ईश्वर कृपासे अग्निमें ध्यान करनेसे यह जो दिव्यमूर्ति है वह जलती नहीं है। यह कोई भौतिकरूप होता, लकड़ी पत्थर होता, तो अग्निमें ध्यान करनेसे जल जाता। इस प्रकारके ध्यानमें सूर्यको देखा, चन्द्रमाको देखा और फिर अग्निको देखा और उसके बाद उसको अपने इष्ट देवताको देखा। तो, इसका यह अर्थ सामान्यरूपसे मालूम पड़ता है। वहाँ उसका अर्थ असलमें दूसरा है। सूर्यका अर्थ है कि पहले आप अपने हृदयमें प्रकाश देखिये। सूर्य जो वह नेत्रका देवता है, इसलिए प्रकाशरूप है। तो, हमारे शैव लोग तो कहते हैं कि प्रकाशका भी दर्शन होता रहे हमारे हृदयमें। केवल यह देखो कि हमारे हृदयमें प्रकाश-ही-प्रकाश है। वहाँ न कोई हड्डी है, न मांस है, न चाम है, न अन्धेरा है, न कोई शक्ल-सूरत है।

जहाँ न सूरत जहाँ न मूरत सूरत भनी दिनेश।

सूर्यका, प्रकाशका ध्यान करना। और सूर्यके बाद चन्द्रमाका, आह्लादका, चाँदनीका और उसके बाद अग्निका ध्यान करना। इसका अर्थ होता है कि पहले दृष्टि ले जायँ और वहाँ प्रकाश देखें। फिर वहाँ आनन्दका अनुभव करें और, उसके बाद वाग् अधिष्ठात्री देवता अग्निमें अपने इष्टदेवताका ध्यान करें।

●

प्रवचन : 10

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

ध्यानके प्रसङ्गमें धारणा अपेक्षित है। यह जो भगवान्‌का ध्यान है इसमें अनेक बातें एक साथ आ जाती हैं। जो लोग समर्थ हैं और ध्यान नहीं करते हैं उनको तो हम सिद्ध कहते हैं। परन्तु जिनका मन शान्त नहीं होता उनको अपने स्वरूपमें या परमात्माके स्वरूपमें स्थित होनेके लिये भगवान्‌के ध्यानसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है।

एक बात अवश्य है कि अधिष्ठानके रूपमें मूल आधार-शिलाके रूपमें सर्वत्र वेदान्त है। जैसे हम लोगोंको उपासनाका वर्णन करना हो तो हम अग्निको, सूर्यको, पृथिवीको, जलको, ईश्वरके सिंहासन पर बैठाकर उसका ध्यान कर सकते हैं। हमारे राम, कृष्ण, शिव किसीको भी मुख्य सिंहासन पर बैठाओ, कोई भी नाम हो, कोई भी रूप हो, हमारी वृत्ति अधिष्ठान स्पर्शिनी होती है। यह वेदान्तीका ही सामर्थ्य है कि वह किसी भी नाम-रूपको सर्वोच्च सिंहासन पर बैठा सकता है। रामका वर्णन करेंगे तो ब्रह्मके रूपमें, कृष्णका वर्णन करेंगे तो ब्रह्मके रूपमें, गणेशका वर्णन करेंगे तो ब्रह्मके रूपमें। परब्रह्म परमात्मा ही सर्वस्व है।

आपको कल सुना रहा था सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि। पहले देश आया, बाहरसे भीतर हृदयाकाश यह स्थान ही है हो। जो अपने हड्डी-मांस-चामके घेरेमें अवकाशात्मक हृदयाकाश है वह एक घेरा है। घेरा है इसलिए देश है। 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।'

देशमें एक धारणा हुई। धारणामें आप सचमुच अपने क्रियाकलाप-भावकी धारणा कीजिये।

उसमें एक कमल नीचे मुँह करके लटका हुआ है। 'ध्यात्वोर्द्ध्वमुखम्'। वह कमल धीरे-धीरे ऊपर उठकर खिल गया। उसमें आठ दल हैं। उसमें कर्णिका है। कर्णिका माने कमलमें बीचकी जो गद्दी होती है। यह कमल दो जातिके होते हैं- एक स्त्री जातिके एक पुरुष जातिके। तो, यह कहो कि यह सब क्या गड़बड़ है ? तो, असलमें आपका मन जो हजारों चीजें बाहर देख रहा है वहाँसे हटकर हृदयमें एक आकृति बना रहा है। यह कमल भी एक यन्त्र है। और, इसकी गोल-गोल जो गद्दी है उसमें भी धारणा होती है। आठ दल हैं, बीचमें सैकड़ों मञ्जरी हैं और पीला-पीला पराग है गद्दीके ऊपर और मञ्जरीमें, भी और उससे मकरन्द रस, मधुका प्रवाह होता है बहुत मीठा-मीठा। अपने मनको आप वहाँ ले जाइये तो आप देखेंगे कि कितना मधुर है!

एक बार हमारा साथी हमारा हाथ पकड़कर हमको खींच रहा था और हम खिचना नहीं चाहते थे तो हमने एक हाथसे जो पत्थरका खम्भा बना हुआ था बरामदेमें, उसको पकड़ लिया। अब वह कितना भी जोर लगाकर हमको खींचे परन्तु हम तो खिचे ही नहीं। क्यों नहीं खिचे कि हमने वह पत्थरका खम्भा पकड़ लिया था। तो, आपके मनको संसारकी हजारों वस्तुएँ खींचती हैं। यदि आप अपने मनसे एक खम्भा पकड़ लें, इसको आप बिलकुल कल्पना मत कहिये। यह तो आपका, आपके ध्यानका आधार है। आपके लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए एक दृढ, स्तम्भका काम यह देता है।

अच्छा, तो उस कमलके ऊपर सूर्य, चन्द्रमा और अग्निको ले आओ। ऐसे भी आप देखें कि सूर्य प्रकाश देता है और चन्द्रमा आनन्द देता है और अग्नि पाप-तापको जला देता है। तो, जिस

समय आप अपने हृदयके कमल पर सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका ध्यान करेंगे, उस समय अज्ञानान्धकारको सूर्य मिटा देगा और दुःखके तूफानसे चन्द्रमा बचावेगा और जो पाप-ताप हैं, जिनका दाह करना है उनसे अग्नि बचावेगा।

अध्यात्म दृष्टिसे इनका अर्थ होता है सूर्य माने आप भीतर देखिये प्रकाश! कमलकी गद्दी पर एक प्रकाश है और उसमें मनका प्यार लगाइये यह चन्द्रमा है। आँखका अधिष्ठातृ देवता सूर्य है और मनका अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा है। और उसमें अग्नि है। तो, अग्नि वाक्‌का अधिष्ठातृ देवता है माने शब्द है। तो, आपके पास कोई शब्दकी धारणा है कि नहीं ? किसी मन्त्रका आप जप करते हैं कि नहीं ? एक़ अक्षर, दो अक्षर, तीन अक्षर-तो जो लोग बिना मन्त्रके ही अपने मनको लक्ष्यमें लगा सकते हैं उन्होंने लक्ष्यका ज्ञान भी प्राप्त किया होगा तो शब्दके द्वारा ही किया होगा। आँखसे देखकर नहीं किया होगा। और जब शब्दके द्वारा किया होगा तो उसका एक नाम तो कोई-न-कोई रख ही गया होगा। और, जब आप ध्यानमें उसको देखेंगे कि यह अमुक है यह बात भी आपके मनमें स्फुरेगी ही। तो, शाब्दीभावना और आर्थीभावना, शब्दके द्वारा धारणा और शब्दके अर्थका चिन्तन करके धारणा और शब्द तथा अर्थको एक करके धारणा-यह तीन बात हो गयी।

शब्दमें अर्थका जो ध्यान है, अर्थकी जो धारणा है उसकी ओर ध्यान दीजिये।

> समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम्।
> सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम्।।
>
> (भा. 11.14.38)

क्या यन्त्र बनाया है, 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' करनेके लिये। अरे! बिना जाने ही योग आ जाय! आपको पता भी न चले

कि हम योगाभ्यास कर रहे हैं कि हम समाधि लगा रहे हैं। जबतक आपको उठा-पटक न करनी पड़े तबतक आप इसको योग ही नहीं समझते हैं।

शरीरके स्वास्थ्यके लिए सूर्य नमस्कार बहुत उपयोगी है, परन्तु उसमें जब नमस्कार और अमुक प्रकारसे इतना लेटकर और इतना खड़ा होकर और इतना हाथ जोड़कर तो इसका नाम तन्त्र हो गया। यह टेक्निक (Technic) है। और, मन्त्र जो मुँहसे बोलते हैं वह उसमें मन्त्र हो गया। तो, सूर्य नमस्कार दूसरी चीज है और ध्यान करनेके लिए 'आसीनः सम्भवात्' बैठ करके ध्यान करना। ऐसे नहीं कि जैसे आराम आवे, ऐसे लेट गये। आराम कुर्सी पर लटक गये या पाँव हिलाते जा रहे हैं कुर्सी पर और ध्यान लगता जा रहा है। इसका अभिप्राय यह है कि जरा शरीरमें भी शान्ति आनी चाहिए, ध्यान करनेके लिये।

शब्द और शब्दमें उसका अर्थ। जैसे घट शब्द मुँहमें है तो उसका अर्थ क्या है ? यह घड़ी शब्द मुँहमें है और उसका अर्थ क्या है कि इस शक्ल-सूरतवाली चीज घड़ी है। आप जब अपने इष्टदेवका नाम लेते हैं तो नाम लेना हुआ शब्द और उसका अर्थ कौन-सा है? उसका अर्थ है एक खड़ा या बैठा या लेटा हुआ इष्टदेवका रूप। अगर यह स्थिर रूप आपके ध्यानमें न आवे तो नाचते हुए रूपका भी ध्यान कर सकते हैं, लेटेका भी कर सकते हैं, खड़ेका भी कर सकते हैं, बैठेका भी ध्यान कर सकते हैं। ब्याह करते हुएका भी कर सकते हैं, विहार करते हुए रूपका भी ध्यान कर सकते हैं। लेकिन यहाँ जिस ध्यानका मैं वर्णन करने जा रहा हूँ वह और ध्यानोंसे विलक्षण है। यह वृन्दावनी ध्यानसे विलक्षण है। वृन्दावनी ध्यान सम्बन्धमूलक होता है। भगवान्के साथ कोई-न-कोई रिश्ता चाहिए। वह पिता है, पति है, मित्र है, पुत्र है, स्वामी है

ऐसे सम्बन्धमूलक प्रीति होती है वृन्दावनी। और, यहाँ सम्बन्ध-मूलक प्रीति नहीं है परन्तु, गौरवका भाव तो जरूर चाहिए क्योंकि; गौरवका, आदरका भाव होनेसे ध्यान होता है।

भागवतका ध्यान विलक्षण है। जो भक्तोंके ध्यानसे भी विलक्षण है। वह मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ। तो, यदि गौरवका बहुत अधिक भाव हो तो भगवान्‌के चरणोंसे लेकर घुटनें, कमर, वक्षःस्थल, मुखारविन्द और ललाट, ललाटमें चन्दन, मुकुट, बाल सबका ध्यान करते चले जाइये। और दूसरी विधा है ऊपरसे नीचे देख सकते हैं। मुखारविन्दसे प्रारम्भ करके चरणोंमें चले आइये।

अब इसमें धारणा क्या है ? कि यन्त्र बनता है। तो, क्या यन्त्र बनता है ? अच्छा, आप ध्यान करते हैं कभी ठीक-ठीक, तो आप देखते है कि दोनों आँख बिलकुल बराबर-बराबर हैं। अगर एक आँख बड़ी हो गयी और एक छोटी हो गयी तो आपका ध्यान बिगड़ गया! आँखोंमें टेढ़ापन आ गया तो बिगड़ गयी मूर्ति! अच्छा नाकके दोनों छेद बराबर हैं कि नहीं ? यह आपने कभी देखा ? कान दोनों समान स्थान पर है कि नहीं? ध्यान कैसे करोगे? इसीका नाम धारणा होता है। गौरव बुद्धिपूर्वक आदर बुद्धिपूर्वक यह देखो कि ईश्वरके भुजदण्ड दोनों बराबर मोटे हैं कि कोई ज्यादा मोटा ज्यादा कम है? गोलाई दोनोंकी एक सरीखी है कि नहीं? लम्बाई दोनोंकी एक सरीखी है कि नहीं ? इसीका नाम योगकी भाषामें धारणा होगा! 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'। कमर पतली और नितम्ब बड़ा है। उदरमें त्रिवली-तीन रेखाएँ हैं, वक्षःस्थलपर लक्ष्मी, भृगुपाद चिह्न है। इन सबको आप एक-एक करके ध्यानमें देखिये। यहाँ तक कि हाथमें कड़ा भी देखिये कि दोनों एक ही तरहके स्वर्णसे बने हैं कि नहीं ? रङ्गमें कोई फर्क तो नहीं आता है ? अगर हीरेकी माला है तो उसमें सब हीरे एक

सरीखे हैं कि नहीं ? सब पन्ने एक सरीखे हैं कि नहीं ? सब मोती एक सरीखे हैं कि नहीं ? तो, जब उनके सादृश्यका आप चिन्तन करेंगे तो उसमें पन्नेके हारमें पन्ना गोल-गोल हो या पानके पत्तेकी तरह हो, भगवान् पन्नेका ऐसा भी हार पहनते हैं जो पानके पत्तेकी तरह होता है और गोल-गोल भी होता है, लाल-लाल भी होता है। माणिक्य, मुक्ता। विद्रुम (Cord) मरकत (Emerold) मणि-इन सबको एक-एक करके गौरवबुद्धिसे जब आप देखने लगेंगे तो संसारमें जो वासना बढ़ानेवाली चीजें देखते हैं वे छूट जायेंगी।

लोगोंके शरीरमें पहले टी.बी. हुआ करता था, अब घरमें भी टी. वी. आ गया है। आप मारकाटका, मारधाड़का सिनेमा देखते हैं, बेटी और बाप दोनों एक साथ बैठकर प्रेमकी कहानियाँ, प्रेमका सिनेमा देखते हैं और डाकू लोग कैसे डाका मारते हैं, कैसे चोरी करते हैं वह देखते हैं-उससे जो वासनाएँ आपके दिलमें सोती हुई हैं वह जागती हैं। उनकी जगह पर आप अपने हृदयमें भगवान्‌की एक-एक चीजको गिनकर देखिये। कि कितनी मोतीकी मालाएँ हैं, कितने हीरे हैं, कितने पन्ने हैं, वे कितने चौड़े हैं और वे बिलकुल एक सरीखे हैं। भुज-पाश कैसा है ? चन्दनकी खोड़ कैसी है ? भौंएँ कैसी टेढ़ी-टेढ़ी, कुटिल (चालबाज) हैं। और अनुग्रहकी वर्षा करती हैं। चितवनमें प्रेम है। होंठों पर मुस्कान है। कानोंमें जो मकराकृति कुण्डल हैं वे दोनों एक सरीखे बने हैं। कपोलों पर मकरी, बेल-बूट्टा जैसे बनाया हो, ऐसा लगता है। साँवरे-साँवरे जैसे नीलमके कपोल हों बड़े कोमल-कोमल। मन्दस्मित। नासिकामें गुलाबका भी चिन्तन करते हैं। वह होंठोंकी कट दाँतोंमें-से श्वेतिमा निकलती है और होंठोंमें-से रक्तिमा निकलती है। यह लाल और सफेद दोनों मिलकर त्रिवेणी बनाते हैं।

अच्छा! यह हुआ क्या असलमें ? हुआ यह कि आपके

हृदयके भीतर जो एक आकृति दिख रही है जिसका आपने एक नाम रखा है विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, देवी, गणेश उसी-उसीके शरीरमें, वस्त्रमें, आभूषणमें, उसकी आकृतिमें आपका ध्यान लग जायेगा। रूप दूसरी चीज है और आकृति दूसरी चीज है। आकृति रेखाओंसे बनती है और रूप जो है वह रङ्गसे बनता है।

तो, आप अब वंशीध्वनि या बातचीतमें प्रवेश करो। भगवान् कहते हैं कि आ जाओ हमारी शरणमें, हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। भगवान् बोल रहे हैं कि तुम हमारे प्यारे हो। 'भृत्यानुग्रहकातरम्' दोनों हाथ फैलाकर अपने हृदयसे लगानेके लिए व्याकुल हैं। तो, उनके होंठोंसे मन्द-मन्द मुस्कानकी वर्षा हो रही है। अपने भक्तको वक्षःस्थलसे लगानेके लिए वक्षःस्थल और चौड़ा होता जा रहा है।

आप भले भक्तिकी बात छोड़ दें। हुआ यह कि योगशास्त्रके अनुसार एक श्रीविग्रहमें जो आपका मन घूमने लगा, हम लोग तो बिना विग्रहका भी करते हैं! ये जितने यन्त्र हैं वे सभी देवताओंके यन्त्र होते हैं। श्रीयन्त्र, काली यन्त्र, नारायण यन्त्र, राम यन्त्र, कृष्ण यन्त्र तो उसमें केवल रेखाएँ होती हैं कोई शक्ल-सूरत नहीं होती है। यन्त्र जितने बनते हैं वे रेखात्मक होते हैं। उनमें कहाँसे ध्यान शुरू करें? और कहाँ अपना मन ले जायँ यह तन्त्र होता है। केवल यन्त्रसे भी उपासना होती है, केवल तन्त्रसे भी उपासना होती है। केवल मन्त्रसे भी होती है और तीनोंको मिलाकर भी होती है। तो, यदि हम विश्वासकी, श्रद्धाकी बात बिलकुल छोड़ दें तो ज्ञानकी दृष्टिसे आप देखें कि भिन्न-भिन्न रेखाओं पर अपने मनको चलानेसे और उनके साथ भिन्न-भिन्न क्रियाओंका ध्यान करनेसे आपका मन बहिर्मुखसे अन्तर्मुख हो जायेगा।

अच्छा, तो अब वृन्दावनी और अवधिध्यानसे इसमें विलक्षणता क्या है वह आपको सुनाते है।

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।।
(11.14.44)

जब भगवान्‌के सारे शरीरमें मन घुमने लगे मुकुटसे लेकर पादुका पर्यन्त और पादुकासे लेकर मुकुटपर्यन्त। तब क्या करना कि सब जगह माने शरीरसे बाहर अपना मन न जाय 'तत्र लब्धपदं चित्तम्'–जब मन जम जाय बिलकुल भगवान्‌की आकृतिमें, भगवान् के रूपमें, उनके शब्दमें, उनके स्पर्शमें, उनके रूपमें, उनके रसमें, उनके गन्धमें और उनके भावमें, उनकी मुस्कानमें, उनके अनुग्रहमें जब अपना भाव रम जाय तब क्या करना कि 'आकृष्य एकत्र धारयेत्' तब मनको सारे शरीरमें मत घुमाओ एक जगह ले आओ। यह बिलकुल योगका अङ्ग हो गया। माने धारणाके लिए जो साढ़े तीन हाथकी आकृति मालूम पड़ती थी उसमें केवल प्रेमभरी आँखोंको देखो। इन्होंने तो कहा कि 'नान्यानि चिन्तयेद् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्'–बिलकुल सिरकी ओर भी देखनेकी जरूरत नहीं और ठुड्ढीकी ओर, ठुड्ढीमें जो गड्ढा है वहाँ भी नजर ना जाय और नाक पर भी न जाय। नाक भी न दिखे, ठुड्ढीका गड्ढा भी न दिखे केवल 'सुस्मितं भावयेन्मुखम्'। बढ़िया-सी मुस्कान होठोंमें छलक रही है। बस, इतना ही ध्यान करो।

'सुस्मितं भावयेन्मुखम्'–जब वहाँ मुस्कानमें मन बिलकुल लग जाय, देखो यहाँ विलक्षणता है। भक्तिके ध्यानमें फैलाते है। पहले मुखका ध्यान, फिर सारे शरीरका ध्यान, फिर सखी-सखाका ध्यान, फिर धामका ध्यान। उसमें फैलाया जाता है। और इसमें (योगमें) संकोच होता है मनका, सङ्कीर्ण करते हैं। **'सुस्मितं भावयेन्मुखम्'**–कि जगह फिर क्या करे ? कि जब वहाँ मन एकाग्र हो जाय तो, **'आकृष्य व्योम्नि धारयेत्'**। तब फिर

मुस्कानको भी छोड़ दो। केवल आकाशका चिन्तन करो। चिदाकाशमें मूर्तिका लोप हो गया और मुस्कान भी नहीं दिखायी पड़ती है। केवल चिदाकाश है, केवल चिदाकाश है।

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।।

(11.14.44)

फिर आकाशका चिन्तन भी छोड़ दे अपने स्वरूपमें बैठ जाय। ध्याता जो है वह ध्येयको छोड़ दे, अन्य क्रियाको भी छोड़ दे अपने स्वरूपमें बैठ जाय। ध्याता अपने ध्यातृत्वका परित्याग करके अपने स्वरूपमें बैठ जाय। भागवतके ध्यानकी यह विशेषता है। अच्छा उसके बाद क्या होगा ? कि फिर उठेगा तो फिर वही ज्ञान, वही क्रिया, वही द्रव्य आवेगा तो भागवतमें इसका भी वर्जन किया। उन्होंने बताया कि इस प्रकार जब साधक अपने मनको लगावेगा-

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः।।

(11.14.46)

इस प्रकार योगीपुरुष जब अपने मनका योग करेगा तो पहले हृदयाकाशमें गया, वहाँसे कमलपर आया, कमल परसे भगवान्‌की मूर्तिमें आया, मूर्ति परसे उनकी मुस्कान देखी और मुस्कानके बाद केवल आकाश देखने लगा और आकाशके बाद अपने स्वरूपमें बैठ गया। तो क्या हुआ ? कि उठने पर इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका ज्ञान होता है। मनके द्वारा देश-कालका विकल्प उठता है। और, द्रव्य दिखायी पड़ते हैं कि यह मिट्टी है, पानी है, स्त्री है, पुरुष है ऐसे वस्तुएँ दिखायी पड़ती हैं। और फिर उनके साथ क्रिया होने लगती है। तब क्या हो जाता है? कि विषय-विषयी भाव हो जाता है। यह विषय है और हम विषयी हैं और हमको इसका ज्ञान हो रहा है।

और, जहाँ अन्यका ज्ञान होता है वहाँ क्रिया करना आवश्यक होता है। जैसे हम घड़ीको जानते हैं तो घड़ीको उठाकर देखते हैं कि इसमें कितने बजे हो अन्यका ज्ञान होता है तो क्रिया करनी पड़ती है और स्वरूपका ज्ञान होता है तब क्रिया नहीं करनी पड़ती है शान्तिसे बैठना पड़ता है। बैठना पड़ता नहीं, बैठना हो जाता है अपने आप। समाधि लग जाती है।

और जब ब्रह्मज्ञान होता है, स्वरूपज्ञानसे ब्रह्मज्ञान अलग वस्तु है! वह क्या है कि पहले स्वरूपको आप अल्पज्ञ समझते थे, अल्पशक्ति समझते थे, अल्प समझते थे अब जब चित्तके शान्त होने पर आप स्वरूपमें बैठे तो कहीं वह भ्रम लगा न रह जाय। ब्रह्मात्मबोध चाहिए। तो, यह ध्यान करनेसे जब आप अपने स्वरूपमें बैठे तो–**'संयास्यत्याशु-निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः'**–तब द्रव्य नामकी कोई अलग जड़ वस्तु है और इसका ज्ञान मन, इन्द्रियोंके द्वारा होता है और इसके लिए अमुक कर्म करना आवश्यक है यह जो भ्रम बैठा हुआ है आपकी बुद्धिमें उस भ्रमका 'समूलोन्मूलन' हो जायेगा। 'समूल' माने भ्रमका मूल अविद्या है। भ्रम कार्य है, भ्रम अङ्कुर है और कारण अज्ञान है। तो, उस अज्ञानकी ही निवृत्ति हो जायेगी। इस प्रकार आप देखो कि आप बैठे थे कहाँ? बैठे थे हड्डी-मांसके शरीरमें, धरतीके ऊपर, परन्तु यह ध्यान करते-करते आप कहाँ पहुँच गये कि यह ध्यान करते-करते आप ब्रह्मस्वरूप हो गये। अद्वितीय हो गये।

असलमें व्यवहार करते समय भी वस्तु, वस्तु नहीं है, इन्द्रियाँ-इन्द्रियाँ नहीं हैं। आँखसे देखते हुए भी हम देख नहीं रहे हैं। और, दिखता हुआ भी दीख नहीं रहा है। यह सब परब्रह्म परमात्मा है। समग्र भोगमें, समग्र क्रियामें, समग्र ज्ञानमें एक परमात्मा बैठा हुआ है। आप देखो, भ्रम शब्दका प्रयोग करके तो–

'द्रव्यज्ञान-क्रियाभ्रमः'-भ्रमकी निवृत्ति होती है। यह कहते हैं कि वस्तुकी निवृत्ति नहीं होती है। देखो, जो कच्चे वेदान्ती हैं वह कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान होनेपर दुनिया मालूम ही नहीं पड़ेगी। लूले हो जाओगे, लँगड़े हो जाओगे, अन्धे हो जाओगे, बहरे हो जाओगे। तो, वेदान्त मनुष्यको कोई अन्धा, लँगड़ा, लूला, बहरा बनानेके लिए नहीं है। यह व्यवहारका कार्य ज्यों-का-त्यों हो रहा है, परन्तु चिन्मात्र ब्रह्मसे जुदा है-यह भ्रान्ति जो दूर हो जाती है। ज्ञान केवल भ्रमका विरोधी है, भानका विरोधी नहीं है। ज्ञान और भान तो एक ही चीज है। प्रकाश कहो, ज्ञान कहो, भान कहो वह तो एक चीज है। तो, दुनियाका व्यवहार नहीं मिटता है परन्तु दुनियाके स्वरूपके सम्बन्धमें और अपने स्वरूपके सम्बन्धमें और परमार्थ सत्यके सम्बन्धमें जो भ्रम है-वह मिट जाता है।

यह पिछले कुछ लोग हुए हैं जो कहते हैं कि ज्ञान होनेके बाद बात किससे करें ? अरे! बात हो रही है तुम करते कहाँ हो? न बात करनेके लिए कोई दूसरा है और न बात करनेवाला दूसरा है। परन्तु फिर भी बात होती हुई मालूम पड़ रही है। दूसरा मालूम पड़ रहा है। बात करनेवाला मालूम पड़ रहा है। प्रतीतिका अपवाद कोई नहीं कर सकता है। जो मालूम पड़ रहा है उसको ना कैसे बोलोगे ? हाँ, यह बोल सकते हो कि जो मालूम पड़ रहा है वह सच्चा है कि झूठा है। यह तो बोल सकते हो। आकाशमें नीलिमा मालूम पड़ रही है। अब कोई अगर कहे कि हमको तो आकाशमें नीलिमा नहीं दिखती है हमको आकाशका ज्ञान हो गया। तो, उसको तो अन्धा समझना। वह तो अन्धा है जिसको आकाशका ज्ञान हो गया और उसमें नीलिमा नहीं दिखती।

तो, जिसको ब्रह्मका ज्ञान हो गया और संसार बिलकुल दिखता ही नहीं, प्रपञ्चका भान ही नहीं होता। भानका विरोधी ज्ञान

नहीं होता है, भ्रमका विरोधी होता है। हाँ, अगर कोई समझता है कि आकाशमें नीलिमा दिखती भी है और है भी तो वह गलत समझता है। अभी उसने आकाशके स्वरूपको नहीं समझा। नीलिमा दिखती भी है और कुछ है भी नहीं। यह तत्त्वज्ञकी जो दृष्टि है यह– 'संयास्यत्याशु निर्वाणम्'–भ्रम टूट जाता है उसका। द्रव्य दिखता है, क्रिया भी होती है, ज्ञान भी होता है वह स्त्री–पुरुषको पहचानता है। वह पागल नहीं हो जाता है। वह खानेकी चीज रोटीको पहचानता है और पत्थरको पहचानता है कि पत्थर नहीं खाना चाहिए। वह जानता है कि आँखमें उँगली डालना नहीं चाहिए। तो, ज्ञान और भान तो एक ही चीज है परन्तु जो पहले भ्रम था कि यह कोई भूत है, यह कोई प्रेत है, यह कोई पिशाच है, यह कोई पत्थर है हमारे ऊपर गिर जायेगा, हमको ढँक देगा, हमको तोड़ देगा, हमको लग जायेगा वह व्यवहारको निर्द्वन्द और निर्भय बना देना यह तत्त्वज्ञानका काम है। यह बहादुरी देता है। यह वीर्य देता है, यह शौर्य देता है, यह निर्भयता देता है, यह निर्द्वन्द्वता देता है। यह अन्धा नहीं बनाता, बहरा नहीं बनाता, लूला नहीं बनाता, लँगड़ा नहीं बनाता, गूँगा नहीं बनाता। तत्त्वज्ञान बड़ी विचित्र दृष्टि है।

तो, श्रीमद्भागवतमें यहाँ जो ध्यानका वर्णन है वह एकदम स्थूलसे प्रारम्भ होता है। आसनका भी वर्णन है कि–

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम्।

(11.14.32)

आसन भी सम होना चाहिए और बैठना भी सम चाहिए। यहाँसे प्रारम्भ हुआ और देहमें पहले 'मैं' हुआ। और मैं–को परमात्माके साथ जोड़ दिया। उनके ध्यानमें लगा दिया। इसमें सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध होने पर टूटना मुश्किल है। यह सम्बन्ध नहीं है, गौरव, आदरमूलक ध्यान है। और, ध्यान करके जब सारी

सृष्टिका ध्यान छूट गया तो मैं–को परमात्मासे मिला दिया। और फिर परमात्मासे पृथक् सृष्टि नहीं है इस अवस्थामें अद्वैतका बोध करा दिया। भागवतके ग्यारहवें स्कन्धके चौदहवें अध्यायमें अन्तिम श्लोकोंमें इस ध्यानका वर्णन है।

जो लोग भागवतको कहते है कि इसमें तो चोरी–जारीका, कच–कुचका वर्णन है। वह लोग भागवतको कभी पढ़ते थोड़ी न है? उन्होंने तो भागवतको पढ़ा ही नहीं है। भागवत तो अखिल श्रुतिसार है।

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते।

अब एक दूसरी जगह जो ध्यानका वर्णन है उधर आपका ध्यान आकृष्ट करते हैं। यह तृतीय स्कन्धमें देवहूति–कपिलके संवादमें है। वहाँ भी ठीक यही क्रम स्वीकार किया गया है। परन्तु, भगवान्के अङ्गोंका वर्णन विस्तारसे है। हम लोगोंको यह श्लोक बचपनमें याद कराये गये थे। हर रोज बोलनेके लिये–

सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम्।।

(3.28.21)

यच्छौचनिः सृतसरित्प्रवरोदकेन
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ।
ध्यातुर्मनः शमलशैलनिसृष्टवज्रं
ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम्।।

(3.28.22)

तो, 'सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्'–भगवान्के चरण कमलका चिन्तन करना। अब 'चरणारविन्दं' बोलनेसे जब आदमी

ध्यान करेगा, ध्यान माने चिन्तन सन्तान परम्परा। एकके बाद एक, एकके बाद एक उसके बारेमें जब मनमें वृत्ति उठने लगे–'तत्र प्रत्ययैकतानता'। अब समझ लो भगवान्‌के चरणारविन्द कमल है। कमल कैसा होता है ? कि लाल–लाल। तो, भगवान्‌के तलवे लाल हैं। यह ऐसा है जिसमें-से प्रकाश निकलता है। नख ज्योतिमें–से, नखदलमें–से प्रकाश निकलता है। कमल कोमल होता है तो यह भी बड़ा कोमल है। जरा हृदयपर रखकर देखो, हाथसे छू कर देखो तो डर लगता है कि कहीं रक्त न छल–छला जाय। इनका स्पर्श बड़ा मृदु है, पूरक है, सुगन्ध है, सौकुमार्य है। और जब चलते हैं तो पद ध्वनि मेरी पहचानी हुई...आहा...। इसका जब चस्का लग जाता है न, तब अनुभव भी होने लगता है। मुश्किल तो यह है कि सुन–सुनकर इसको छोड़ देते हैं। कि कहीं ब्रह्मकी तारीफ सुनी, कहीं समाधिकी तारीफ सुनी, कहीं योगाकी तारीफ सुनी, कहीं भावातीतकी तारीफ सुनी, कहीं ध्यानकी तारीफ सुनी तो यह तारीफ सुनकर एक रास्ते पर जो लगे हुए थे न उसको छोड़ देते हैं।

एकने कहा कि महाराज! आपने मन्त्र तो बता दिया और भगवान्‌के रूपका ध्यान भी बता दिया तो हमेशा इसीमें लगे रहें कि कुछ आगे बढ़े! इसीका नाम बेवकूफी है! यह किसी एक आदमीके लिये हम नहीं बोलते हैं भला! किसीने कभी ऐसा कहा हो तो वह यह न समझ ले कि हम उसीके लिए बोल रहे हैं। ऐसे बोलनेवाले तो हमको सैंकड़ों मिलते हैं। तो, इष्टमें उसकी निष्ठा नहीं हुई न! न रूपमें निष्ठा हुई, न मन्त्रमें निष्ठा हुई, न मनकी एकाग्रता हुई। बोले महाराज, गुड्डे–गुड़ियाके खेलमें कबतक लगाकर रखोगे? अरे! इस रास्तेमें तुम लग गये हो भाई, इसको गुड्डी–गुड़ियाका खेल समझोगे तो तुम जिस रास्तेपर चल रहे हो वह रास्ता छूट जायेगा।

तो, अब-'वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्'-भगवान्के श्रीचरणोंमें तुम्हारे पापके पहाड़को तोड़नेके लिए वज्र है। तुम्हारे मनके हाथीको वशमें करनेके लिये अङ्कुश है। तुम्हारी विजय होगी इसका आश्वासन देनेके लिये ध्वजा है। तुम्हारे खाने-पीनेमें कभी कोई कमी नहीं पड़ेगी इसके लिये जव है। भगवान्का हृदय बड़ा कोमल है। इसके लिए कमल है। यह भगवान्के चरणारविन्दका ध्यान है।

उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल,

ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम्।

भगवान्के नाखून ऊँचे-ऊँचे हैं, उभरे हुए हैं और लाल-लाल हैं। अब देखो ध्यान जायेगा कि खाली नाखून हैं पाँवमें तो क्या ध्यान किया ? बोले नहीं भाई, वे उभरे हुए हैं। बीचमें ऊँचे हैं थोड़े, और लाल-लाल हैं। 'उत्तुङ्गरक्त' और उनमें-से चमक निकलती है। और, जो चमक निकल रही है उससे तुम्हारे हृदयका अन्धकार दूर हो रहा है। और उसमें-से जो रस निकलता है, अरे! उसीको तो शङ्करजीने अपने सिरपर धारण किया था। '**यच्छौचनिःसृत-सरित्प्रवरोदकेन**' उसीमें-से निकली गङ्गाजी, उसको शङ्करजीने धारण किया अपने सिरमें-

ध्यातुर्मनः शमलशैलनिसृष्टवज्रं,

ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम्।

और इस तरह एक-एक अङ्गका माने चरणारविन्दका, फिर पंजेका, फिर टखनेका, फिर पिण्डेका, फिर जानुका, फिर कमरका, पेटका, छातीका, भुजदण्डका, मुखारविन्दका अलग-अलग ध्यान बता करके अन्तमें बताया कि जब ध्यान लग जाय तो क्या होगा कि-

मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं

निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः।

आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक-
मन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः।।
(3.28.35)

आगरूपी मनको रखनेके लिए जगह न हो और जलानेके लिए लकड़ी न हो और मनमें कहीं राग-द्वेष न हो, वह आग किसीको लग न गयी हो, किसीको छू न गयी हो। ऐसी आगरूपी मनकी क्या दशा होगी? रमनेके लिए अवकाशरूप स्थान न हो, जलानेके लिए लकड़ी न हो और कहीं दूसरी चीजको उसने छूया न हो तब आगकी क्या दशा होगी ? कि-

निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः।

मन यहाँ निर्वाणको प्राप्त हो जाता है। माने जैसे दिया बुझ जाय वैसे मनका दीपक बुझ जाता है। यह हँसी-मजाककी चीज नहीं है। 'मुक्ताश्रय' तो आश्रय माने ध्याता नहीं रहा और 'निर्विषय' माने ध्यानका विषय ध्येय नहीं रहा। और, 'विरक्त' माने राग-द्वेषकी वृत्ति नहीं रही। अब क्या हुआ ? अब तुम्हारे अन्तः-करणकी दशा क्या हुई? वह क्या आत्मासे पृथक् अपनेको दिखाता है ? अगर अपनेको आत्मासे पृथक् दिखा रहा हो तो लोप हो गया उसका। तो, बताते हैं कि अच्छा ऐसा ध्यान जिसको लग गया और ध्यान लगनेपर ज्ञान हो गया तो उसका शरीर रहेगा कि नहीं रहेगा ? बोले शरीर रहेगा।

देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा
सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम्।
दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः।।
(3.28.37)

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्
स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः।

तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः
स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः।।
(3.28.8)

साँस चलती रहेगी, शरीर बना रहेगा, खाना-पीना होगा। जितनी उम्र शरीरको दे दी गयी है, मशीन इतने चक्कर लगावेगी। उतने चक्कर लगानेके लिये उसका शरीर रहेगा और उतना काम करेगा, उतने भोग भोगेगा। जब उसके चक्कर लगानेकी शक्ति क्षीण हो जायेगी तब शरीर तो समय पर ही, ज्ञानी-अज्ञानी दोनोंके शरीर तो समय पर जायेंगे। लेकिन अज्ञानी जरा-जरा-सी चीजोंमें मैं-मैं, पैं-पैं करता रहेगा। जरा-सी चीजमें टें-टें बोल जायेगा। और ज्ञानी तो हर जगह अद्वैत ब्रह्मरूप में स्थित रहता है। कुछ भी हो प्रलय हो, सृष्टि हो, स्वप्न हो, जाग्रत हो, सुषुप्ति हो, समाधि हो वह अपने स्वरूपमें ज्यों-का-त्यों स्थित है। यह ध्यानका ही सामर्थ्य है। तभी तो श्रीमद्भागवतके दो ध्यान आपको बताये। और, ध्यानकी चर्चा दूसरे-दूसरे शास्त्रोंमें कैसी है उसका भी नमूना बतावेंगे।

●

प्रवचन : 11

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

अब ध्यानकी व्याख्या करते हैं।

अथातो ध्यानं व्याख्यास्य अहम्

क्योंकि प्रत्यक्ष जगत्‌में ही सन्तोष नहीं है। ध्यान प्रत्यक्षका नहीं होता। उसका दर्शन होता है। जैसे बच्चू भाई हमारे सामने बैठे हैं उनका ध्यान क्या करें ? तो, प्रत्यक्षका आधार बनाकर परोक्षका ध्यान किया जाता है। यह ध्यानका प्रारम्भ है। जैसे चित्रकार लोग तो व्यक्तिको ही प्रत्यक्ष सामने बैठा लेते हैं और उसकी तस्वीर बनाते हैं—उनका तो एकदम प्रत्यक्ष होता है। लेकिन दिलमें जिनकी तस्वीर बनानी है, दिलमें जिसको अप्रकटसे प्रकट करना है उसमें प्रत्यक्ष काम नहीं देता है। प्रत्यक्ष केवल सहारा देता है। गुरुकी मूर्ति, इष्टकी मूर्ति, शालिग्रामकी मूर्तिका सहारा लेना पड़ता है।

'मूर्ति' माने संस्कृत भाषामें होता है जो वास्तवमें तो निराकार हो, और साधकके सहारेके लिए मूर्त हुई हो। मूर्त होना माने जाहिर होना। जो जाहिर नहीं था वह जाहिर हुआ है। क्यों जाहिर हुआ है ? जो जाहिर नहीं है उसको जाहिर करनेके लिये। मूर्ति माने जाहिर। यहाँ तो 'जाहेरात' शब्द बहुत चलता है, पर्चोंमें छपा हुआ देखते हैं हम। तो, जो सामने गैरहाजिर मालूम पड़ता है, उसको हाजिर करनेके लिए जो जाहिर है उसको मूर्ति बोलते हैं। 'मूर्ति' शब्दका अर्थ है 'अभिव्यक्ति'—अव्यक्तकी व्यक्ति। पहली बात यह है कि जो इन्द्रियोंसे ग्रहण हो रहा है उसकी ओरसे मनको हटाना। उसमें अभ्यासकी जरूरत नहीं है। अभ्यास भी कर लें तो कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु असलमें वैराग्य होगा, तब जाहिरकी ओरसे मन हटेगा।

ध्यानके दो पहलू हैं–एक अभ्यास और दूसरा वैराग्य। और एक दोनोंकी शान्ति। अच्छा! जो प्रत्यक्ष है उनकी ओरसे तो हम आँख बन्द कर रहे हैं और अनुमानसे जो है उसमें लगावे ध्यान। तो असलमें अनुमान उसी चीजका हो सकता है जिसका कभी प्रत्यक्ष हुआ हो। दीवारके बाहर आग है यह धुआँ देखकर हम तब समझते हैं जब पहले धुआँ और आग दोनोंको इकट्ठा देख लेते हैं। इसको 'व्यक्ति' बोलते हैं शास्त्रमें। जहाँ जिस वस्तुका प्रत्यक्ष ही नहीं है, उसका ध्यान कैसे होगा ? इसलिए निराकार ईश्वर अनुमानसे सिद्ध है। अनुमानसे सिद्ध है तो उसका ध्यान नहीं हो सकता।

आर्यसमाजी लोग कहते हैं कि ईश्वरकी आज्ञाका पालन करना चाहिए। वेद ईश्वरकी आज्ञा है, तो उसका पालन करना ही उसकी सेवा है।

अच्छा! उपमानसे भी ध्यान नहीं हो सकता कि, गायके समान जङ्गली गाय (इसको कुछ 'गवाय' बोलते हैं) होती है ऐसा सुनकर जब उपमानसे, सादृश्यसे ध्यान करने लगेंगे तो कुछ-का-कुछ बन जायेगा। अगर विवेकसे ध्यान करें तो सबसे अलग चाहे उधर, चाहे इधर दोनों ओर सबसे अलग होता है। विवेकसे ध्यान होगा या तो असङ्ग आत्माका या अधिष्ठान ब्रह्मका। और, अनुभवसे यदि शास्त्र संस्कारयुक्त अनुभव होगा तो वह आत्माकी ब्रह्मताका साक्षात्कार होगा। और, शास्त्र संस्कारहीन यदि अनुभव होगा तो आत्माकी इकाईका केवल रूपमें साक्षात्कार होगा। केवल माने अकेला। दृश्यका दर्शन बन्द हो जायेगा। अब आप परमात्माका, सत्यका, आत्माका, परमार्थका चाहे जिसका भी ध्यान चाहते हों।

ध्यान शास्त्रकी एक बात आपको सुनाता हूँ। जो भिन्न-भिन्न प्रकारसे भिन्न-भिन्न मार्गोंमें मानी हुई है। तन्त्रमें वही है, वेदान्तमें वही है, भक्तिमें वही है, योगमें वही है। अपने-अपने ढङ्गसे उसको

बदल दिया है। तब पहले कौन--सी बात सुनावें ? अब आप देख ही लीजिये कि पहले कौन-सी आती है.....

जबतक सत्यका साक्षात्कार नहीं हुआ है तबतक कल्पनाका सहारा लेना पड़ता है। चाहे वह गुरुकी दी हुई कल्पना हो, शास्त्रकी दी हुई कल्पना हो, बुद्धिसे बनायी हुई कल्पना हो, जबतक सत्यका दर्शन नहीं हुआ है तबतक उसके बारेमें एक कल्पना करनी पड़ेगी। और वह गुरु-शास्त्रकी बतायी हुई हो, तब उसका नाम कल्पना नहीं रहता है, झूठी कल्पना नहीं होती है। एक देखे हुएके द्वारा, जिसने सत्यको देखा है उसने बताया है इसलिए उस कल्पनामें आस्था हो जाती है। और, आस्थायुक्त जो कल्पना है उसको कोरी कल्पना नहीं कहेंगे। उसको भावना कहेंगे। यह जो कल्पना-कल्पना करके तिरस्कार करते हैं न इससे वेदान्तियोंको पूर्णताके ज्ञानमें बाधा पड़ती है। क्योंकि किसीका तिरस्कार करनेसे द्वैत बनता है, अद्वैत नहीं बनता है।

अच्छा, आओ एक कल्पना आपको सुनाते हैं। अपने शरीरमें सात विभाग हैं ऐसी कल्पना करें। पाँवके तलवेसे लेकर और मल त्यागके इन्द्रिय पर्यन्त पृथिवीकी प्रधानता है। मिट्टी-ही-मिट्टी है अपने शरीरमें। उसके बाद मूत्रेन्द्रिय पर्यन्त जलकी प्रधानता है। और उसके बाद नाभि पर्यन्त अग्निकी प्रधानता है। आप देखोगे तो इसका आधार भी मिलेगा। नीचेके हिस्सेमें मलसे लेकर तलवे तक पृथिवीका अंश अधिक है। और, स्वाधिष्ठान चक्रमें जलकी प्रधानता है। और मणीपूरकमें तेजकी, नाभि पर्यन्त पाचन आदि करनेके लिए आगकी जरूरत है। नाभिसे लेकर हृदय पर्यन्त वायुकी प्रधानता है। और हृदयसे लेकर कण्ठ पर्यन्त आकाशकी प्रधानता है। कण्ठसे ऊपर मनकी प्रधानता है। कानमें, आँखमें, नाकमें, जीभमें, त्वचामें मनकी प्रधानता है। यह छह भाग

हुए न! और उसके ऊपर चैतन्य भाग है। यह सात हिस्से अपने शरीरके कल्पनामें बना लें। है तो शरीर एक ही परन्तु, उसमें सात विभाग मान लें। गणित पढ़नेवालोंको मालूम होगा कि एकके बाद दो मानना पड़ेगा। एकके बाद दो ही होता है तीन नहीं होता ऐसा क्यों ? क्योंकि इसको स्वयंसिद्ध ही मानते है। अच्छा एक बिन्दी लगाकर उसमें नीचे लकीर खींचने पर एक (1) हो जाता है। और ऊपरसे उसका सिर बाँधकर नीचे लकीर खींचनेपर दो (2) हो जाता है। और बीचमें बिन्दी रखकर एक लकीर ऊपर और एक लकीर, नीचे एक लकीर तीन (3) हो जाता है। ऐसे ही तो होता है न! नीचे बिन्दु रखकर ऊपर दो लकीर खींच देनेसे चार (4) हो जाता है। यह भिन्न-भिन्न भाषाओंमें, भिन्न-भिन्न लीपियोंमें, भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है परन्तु होता है सब बिन्दुका प्रस्तार। यह जितना गणित है, यह जितने अंक है उसमें है बिन्दुका ही प्रस्तार।

तो, शून्यको बिन्दु मानते हैं तान्त्रिकलोग और शून्य मानते हैं बौद्धलोग और निष्प्रपञ्च होनेसे ब्रह्म मानते हैं वेदान्ती लोग–है बिन्दु ही। आप जितनी सङ्ख्या बनावेंगे वह सब बिन्दुका प्रस्तार है। बोलनेमें उसमें नाद आता है। और, रेखाएँ जितनी खींचती हैं वे सब बिन्दुसे ही बनती हैं। आजकल लोग उस शीशेसे (Msgnifing gass) देखते हैं, उसमें देख लेते हैं रेखाको कि सब बिन्दु-बिन्दु-बिन्दु। और बिन्दु बिलकुल कल्पित है। जिसमें लम्बाई और चौड़ाई न हो और स्थान हो। क्योंकि लम्बाई-चौड़ाई न हो और स्थान हो ऐसी कोई चीज हो सकती है ? लम्बाई-चौड़ाई से ही तो स्थान बनता है।

अच्छा, अब आपको बताते हैं कि यह जो शरीरके सात विभागकी कल्पना है उसमें छठे अंशमें मनोवृत्तिकी प्रधानता है। अब

सातवेंमें आप किसको प्रधान करते हैं ? अब सातवेंमें सहस्रार्थ शक्ति सहित गुरुजी प्रधान हैं–यह तन्त्रशास्त्र है। वहाँ अपना इष्टदेव बैठा है यह उपासनाशास्त्र हो गया। और, इन सातोंसे परे रहकर असङ्गद्रष्टा आत्मा 'मैं' इनको देख रहा हूँ। अब करना क्या है ? यहाँ तक अभी ध्यान नहीं लगा। अब शरीरके मिट्टीवाले हिस्सेको शरीरके पानीवाले हिस्सेमें, पानीवाले हिस्सेको अग्निवाले हिस्सेमें, अग्निवाले हिस्सेको वायुवाले हिस्सेमें, और वायुवाले हिस्सेको आकाशवाले हिस्सेमें, और आकाशवाले हिस्सेको मनवाले हिस्सेमें, और मनवाले हिस्सेको एकमें मिला दो। चाहे गुरुमें मिला दो, चाहे इष्टदेवमें मिला दो। तो गुरु और इष्टको देखो। और शान्त प्रकृतिमें मिला दो तो शान्त प्रकृतिको देखो। इसमें जब शरीर नहीं रहेगा और ये सातों छिद्रोंके द्वारा जो मन झाँकता है, तो उसका झाँकना बन्द हो जायेगा। निःसङ्कल्प जब यह मन हो जायेगा तब यह सृष्टि आपको नहीं दिखेगी। क्योंकि प्रपञ्चको देखनेका औजार इतना ही है आपके पास। यह जो साढ़े तीन हाथका शरीर है जब इसमें आप मैं करके बैठते हैं तो सारी दुनिया दिखती है। बिना शरीरके कोई संसारको देखकर बता दे। आँख न हो और रूपको देख ले, कान न हो और शब्दको सुन ले, त्वचा न हो और स्पर्श कर ले वह तो परमात्मा हो गया!

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।

(1.1.114)

इस तरहसे यह लयकी छोटी प्रक्रिया आपको बतायी।

अब देखो भक्तिशास्त्रकी बात। उपासनामें इसको कैसे करते है ? आप लोग कभी भगवान्की पूजा करते हैं कि नहीं करते हैं ? अरे! आप नहीं करते होंगे तो माँ-बापको तो करते देखा होगा। पण्डित-पुजारीको तो करते देखा होगा। यह तो दुर्भाग्य ही है कि ईश्वरकी प्राप्तिका, सत्यकी प्राप्तिका इतना सरल सोपान, इतना बढ़िया साधन, निष्काम कर्मका पहला सोपान सन्ध्या-वन्दन है। इसमें आसन भी है, प्राणायाम भी है, प्रत्याहार भी है। उसमें गायत्रीके तीन रूपोंका ध्यान भी है। उसमें मन्त्र जप भी है। परन्तु दुर्भाग्य ही तो है न कि आध्यात्मिक रुचि कम होनेसे वह छूट गया है। तो, आपने पूजा शायद कभी न की हो तो कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसीको देखा तो होगा पूजामें पाँच चीजें होती हैं। चन्दन और सुगन्ध, (गन्ध) पुष्प और पत्र यह सब मृतिकाके हैं, मिट्टीके अंश हैं। और, स्नान-आचमन तरह-तरहके रसका भोग लगाना ये सब जलके अंश हैं। दीपक दिखाना अग्निका अंश है। पंखा झलना यह वायुका अंश है। घण्टी बजाना और मन्त्र बोलना यह आकाशका अंश है। अब आप जब पूजा करें, अरे! शरीरसे नहीं करते तो मनसे ही कर लीजिये। इसमें तो आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा। तो, पृथिवीका सार-सार जो सुगन्ध है, पत्र है, पुष्प है, धूप है सारी पृथ्वीका सार गन्ध प्रभुको अर्पण कर दीजिये। सारा-का-सारा रस (जल) स्नानके रूपमें, आचमनके रूपमें, स्वादके रूपमें भगवान्को अर्पित कर दीजिये। और, सारा सौन्दर्य, सारी रूपमाधुरी अपनी भी और जगत्की भी खींचकर भगवान्को अर्पित कर दीजिये। ज्योति भगवान्को अर्पित कर दीजिये। वायुमें जितना सुकुमार स्पर्श है उसको खींचकर भगवान्को अर्पित कर दीजिये। और, आकाशमें जो ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक दोनों प्रकारके जो शब्द हैं, घण्टी और बाँसुरीकी ध्वनि भी आकाशका

ही अंश है। मन्त्रोंका उच्चारण होता है और मन्त्र आप संस्कृतके न बोलें अपने दिलके भी बोलें तब भी काम चल जायेगा। भगवान् आपकी भाषा समझता है। अच्छा, यह पाँचोंको अर्पित करके साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करके अपने आपको समर्पित कर दिया। और आत्मसमर्पण कर दिया कि मैं ही आपका हूँ।

मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहम् सकलं तद्धि तत्रैव माधव।

(18.10)

अब यह जो परमेश्वरके प्रति अर्पणका भाव है इसमें पञ्चभूत, मन और जीवको अपने बड़ेके प्रति अर्पण कर दिया। इसको विशाल परमात्मा, अनन्त परमात्मा, अन्तर्यामी परमेश्वर, राम, कृष्ण, शिव अपने इष्टदेवके प्रति इसको अर्पित कर दो।

अब जरा मिलान करो पहलेवाले ध्यानमें और इसमें। उसमें सबको एकमें करके आप अलग हो गये। और इसमें सारा परमेश्वरको अर्पित हो गया। पञ्चभूत वही है दूसरा नहीं है। उपासनामें परमेश्वरको अर्पित कर दिया और तुम उससे असंग हो गये, मुक्त हो गये, छूट गये। 'नाऽहम् न मे' यह न मैं हूँ, न मेरा है यह तो परमेश्वरका है। योगियोंने कहा 'न मैं न मेरा' यह सब प्रकृतिका है। और भक्तोंने कहा 'न मैं न मेरा' भगवान्‌का, परमेश्वरका है। नतीजा सब जगह यही निकलेगा कि 'न मैं न मेरा'। अब कोई नेचरका मानकर 'न मैं न मेरा' बोलते हैं, कोई ईश्वरका मानकर 'न मैं न मेरा बोलते हैं। कोई लय प्रक्रियासे बीजमें लीन करके 'न मैं न मेरा' बोलते हैं। लेकिन बात वहीं-की-वहीं पहुँचती है। सब विद्वान् थे, सब अनुभवी थे।

अब ध्यान करनेकी दूसरी प्रक्रिया देखो! वेदान्तियोंने इसको लय प्रक्रिया और बाधक प्रक्रिया दो नाम दिया। वे कहते हैं कि ये जितने देह हैं वे सब पञ्चभूतके बने हैं। इसलिए देहमें जो मिट्टी

है वह मिट्टीमें, पानी है सो पानीमें, गर्मी है सो अग्निमें, साँस आदि है वह हवामें, जो अवकाश है उसको आकाशमें और फिर मिट्टीको पानीमें, पानीको आगमें, आगको वायुमें, वायुको आकाशमें लीन कर दो। और तुम ? वह जो आकाशात्मक सारी सृष्टि है इसको तुम देख रहे हो। तो, सृष्टि अलग है और देखनेवाले तुम अलग कैसे हो ? यह कल्पना ही बिलकुल गलत है कि एक ओर हमने सृष्टि डाल दी, प्रकृति, प्रपञ्च, क्रिया और भोगको डाल दिया और एक ओर हम बैठे हैं। यह तो अविवेकपूर्ण प्रक्रिया है। क्योंकि एक देशकी गोदमें प्रपञ्च है और एक देशकी गोदमें मैं हूँ। एक कालकी गोदमें प्रपञ्च है और एक कालकी गोदमें मैं हूँ। यह कल्पना ही बिलकुल गलत है।

एक स्विटजरलैंडकी महिला आयी थी। बड़ी प्रबुद्ध हैं! अभी थोड़े दिन पहले आयी थी, वृद्ध है। ऐसी शान्ति उनके चेहरेपर थी महाराज! विदेशमें कई लोग इनके पास ध्यान सीखनेके लिए जाते हैं। वह पुराने जमानेकी वृद्ध महिला वहाँ क्लासका संचालन करती है। उसको साथ लेकर जो आये थे वह तो अंग्रेजी कम बोल सकते थे। परन्तु उस समय ईश्वर कृपासे मेरे पास कोई ऐसे सज्जन बैठे थे जो बढ़िया अंग्रेजी बोलते थे। तो, उसने असङ्ग साक्षी तककी बात की। तो हमने भी उसको टाईम (Time) और स्पेस (Space) शब्दका उपयोग करके उनको समझाया कि यह जो तुम्हारा साक्षी है वह किसी खास टाइममें माने ध्यान करते समय होता है और किसीसे अलग बैठकर उसका साक्षी रहता है! एक जगहमें वह चीज जो देखी जा रही है और एक जगहमें वह साक्षी बैठा हुआ है। दोनों जगह (स्पेस, Space)की गोदमें हो गये न! तो स्पेस तो दृश्य है उसके तो तुम साक्षी हो। उसकी गोदमें कैसे बैठ सकते हो ? और घण्टे-दो-घण्टे तुम साक्षी होकर बैठते हो और फिर साक्ष्यसे एक हो

जाते हो तो वह घण्टे-दो-घण्टे तुम्हारा जो साक्षीपना है वह तो कालिक है, तात्कालिक है। ये दोनों कल्पनासे ही आये हैं। हम किसीसे अलग होकर उसको देख रहे हैं और थोड़ी देरके लिए देख रहे हैं यह बात आत्मज्ञानके बिना नहीं कट सकती है।

ये जो दो चीजें हैं द्रष्टा और दृश्य, इसमें द्रष्टा तो आप विवेकसे हो जाओगे। साक्षी तो आप विवेकसे हो जाओगे। परन्तु यह जो देश, काल और वस्तुकी जो पृथक् उपस्थिति है यह तब कटेगी जब यह अनुभव होगा कि यह द्रष्टा, साक्षी, आत्मा-ब्रह्म है माने अधिष्ठान है। यह देश, काल, वस्तु तीनों इसीकी गोदमें हैं। हम इसकी गोदमें हैं यह बालभाव हो गया और ये हमारी गोदमें हैं यह परमेश्वर भाव हो गया। और हमारे अन्दर ये तीनों है ही नहीं यह ब्रह्मभाव हो गया। तो, यह बात भीतर बैठ जानी चाहिए।

जैसे मैंने बताया कि भीतर जो बात होती है वह उल्टी-पल्टी होकर स्वप्नमें जाहिर होती है, और जो हम देखते हैं वह मनमें भरती है। तो, कुछ मनसे बाहर आता है और कुछ बाहरसे भीतर जाता है। हमारे दर्शनकी यही प्रक्रिया है। ब्रह्मसूत्रमें अधिकरण है- 'अन्तरा विज्ञान मनसि'।

संसारमें हम जितना व्यवहार करते हैं उसमें प्रश्न यह है कि बाहरसे भीतर जाता है कि भीतरसे बाहर आता है? अन्तःकरणमें जो चीज भरी रहती है वह बाहर आती है, कि बाहरकी चीजें देख-देखकर माल-मत्ता इकट्ठा करता है? बोले भाई घरकी रखी बाहर फेंकी जा सकती है और बाहर पड़ी हुई भीतर ली जा सकती है। ये दोनों तो चलते ही रहते हैं। चीजें तो भीतरसे बाहर आती हैं और बाहरसे भीतर जाती हैं। परन्तु इसके बारेमें हमारे शास्त्रोंका और गुरुजनोंका दृष्टिकोण यह है कि बाहरकी चीजें भीतर और भीतरकी बाहर आती-जाती हैं, और वे पूर्व जन्मको भी स्वीकार करते हैं और

तुम नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तके रूपमें ही होते तो यह देह मैं हूँ, यह देह मेरा है और ये देहके सम्बन्धी मेरे हैं यह भ्रान्ति ही नहीं रहती। यह बात अबतक कभी तुम्हारे अन्तःकरणमें नहीं आयी है, क्योंकि यह ज्ञान संस्कारजन्य नहीं होता। और सब ज्ञान संस्कारजन्य होते हैं, परन्तु यह ज्ञान कि मैं नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त ही हूँ यह संस्कारजन्य नहीं होता है जरा मैं वेदान्तकी ओर चला गया। बात आपको सुनानी है, समझानी है, याद दिलानी है-ध्यानकी।

अब ध्यानमें क्या करना है कि देश, काल और वस्तु इन तीनोंके आप प्रकाशक हैं और केवल प्रकाशक ही नहीं हैं ये तीनों आपकी विशालतामें समाये हुए हैं। आपने ही इनको अपनी गोदमें ले रखा है। आप, स्पेस (Space)की गोदमें नहीं है और टाईम (Time)की गोदमें भी नहीं है। और, आपके सिवाय दूसरी जो वस्तु मालूम पड़ती है वह आपकी आँखकी रोशनी है। आपकी दृष्टि ही सृष्टिके रूपमें मालूम पड़ रही है। तो, जहाँ दृष्टि ही सृष्टि है, वहाँ दूसरी चीज नहीं है। जहाँ सृष्टि है वहीं उसकी लम्बाई, चौड़ाईके रूपमें देश और परिवर्तनके रूपमें काल मालूम पड़ता है। तो ये सब-का-सब मिट्टी पानीमें, पानी आगमें, आग हवामें, हवा आकाशमें, आकाश आपकी कल्पनामें माने मनमें और वह मन चिदाभासरूप मन आपके चिदाकाश स्वरूपमें न कुछके बराबर हो रहा है। और आप चिदाकाश अधिष्ठानरूपमें बैठे हुए हैं। आप देखो यह ध्यानकी वही प्रक्रिया है जो पूजा करनेमें थी, जो शरीरके विभागमें थी यह ठीक वही प्रक्रिया है, वेदान्तके दृष्टिकोणसे उसका रूप अलग हो गया है। इसको लय प्रक्रिया बोलते हैं। वेदान्तमें इसको दो नम्बरकी प्रक्रिया बोलेंगे। आपके दो नम्बरके बही खातेकी तरह ही है यह परन्तु समझानेके लिए आपको बताया।

असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।

रास्ता या मार्ग गन्तव्य नहीं होता है। गन्तव्य वहाँ होता है जहाँ मार्गका अन्त हो जाता है। 'यास्यसेपारमध्वनः'। रास्तेसे पार पहुँच जाओगे। कब ? रास्तेका पार या तो सामनेकी ओर जहाँसे आगेको बढ़नेकी जगह न हो, उस रास्तेके पार हो जाओ। या तो अपनी ओर अपने घरमें रास्तेके पार हो जाओ। आप अपने स्वरूपमें बैठो तो रास्तेके इस पार और परस्वरूपमें बैठो तो रास्तेके उस पार। वेदान्तियोंका कहना है कि यह रास्ता नामकी कोई ऐसी चीज नहीं है जो इस पार और उस पारमें फर्क बना देती है। इसलिए एक अद्वितीय परमात्मा है। वही रास्तेके प्रारम्भमें, वही रास्तेके बीचमें, वही रास्तेके अन्तमें एक सत्य परमार्थके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह लय प्रक्रिया है। शुरु-शुरुमें साधकको इसके अभ्यासकी जरूरत पड़ती है। इसमें बड़ा भारी लाभ है।

हमारे एक व्यापारी थे। एकबार हमारे पास हाथीबाबा आ गये। हम बड़ा आदर करते थे हाथीबाबाका, वे वृन्दावनके बड़े प्रसिद्ध महात्मा थे। तो, सेठजीने पूछा कि महाराज, आप राम-राम बोलनेको कहते हैं तो राम-राम कहनेसे क्या लाभ है ? क्या फायदे हैं? (उन्होंने अपनी भाषामें पूछा)-मैं कुछ नहीं बोला, क्योंकि हमारे आगे बड़े-बुजुर्ग महात्मा हैं तो मैं आगे बढ़कर जवाब कैसे देता ? यह नहीं कि हम जानते हैं इसको। ऐसा होता है न ? कोई प्रश्न करे तो छोटा आदमी आगे बढ़कर आ जाता है कि हम इसको जानते हैं। वह भले बड़ेसे सुना हुआ ही है लेकिन वह अपना ज्ञान, अपनी जानकारी प्रकट किये बिना नहीं रह सकता है। तो, हाथीबाबाने कहा कि क्योंजी यह कोई बनिया है क्या ? हमने कहा हाँ, महाराज! है तो बनिया। देखो, राम-राममें भी फायदा ही उठाना चाहता है। अरे, बिना फायदेके भी कोई काम अपने शरीरसे कर! आपको खींचना तो

आता है लेकिन धकेलना नहीं आता है। आमदनी हो, पैसा आवे-पैसा आवे परन्तु इसका खरचना भी चाहिए, कहीं निकालना भी चाहिए। तो, निकालनेके लिए बड़े-बड़े होटलोंमें जाते हैं, क्लबोंमें जाते हैं, शराब पीते हैं, ताश खेलते हैं। निकालनेका उनका तरीका यह है कि जुआ खेलकर निकालकर आये! जब कमानेका तरीका तुमने सीखा है तो इसके खर्चनेका भी तरीका सीखो। अगर तुम वर्षाका पानी अपने आँगनमें ले सकते हो तो उसको निकालनेका तरीका भी सीखना पड़ेगा नहीं तो घर गिर जायेगा।

अब आपको फायदेकी बात सुनाते हैं। फायदेकी बात यह है कि जो मनुष्य यह चिन्तन करेगा कि सब पशु-पक्षी, मनुष्य, सेठ-सौदाग सब-के-सब पञ्चभूतमें और पञ्चभूतोंमें मिट्टी, पानीमें, पानी आगमें, आग हवामें, हवा आकाशमें, आकाश मनमें और मन शान्तिमें। ऐसा जो चिन्तन करेगा उसके लिए सारी सृष्टिमें एकताका दर्शन होने लगेगा। और एकताका जब दर्शन होगा तब राग-द्वेष नहीं होगा। अपने शरीरकी मृत्युका डर नहीं रहेगा, दूसरेसे राग नहीं होगा, दूसरेसे द्वेष नहीं होगा, यह केवल एकताका जो चिन्तन है यह आपके जीवनमें समता ले आयेगा, सहिष्णुता ले आवेगा, वैराग्य ले आवेगा, शान्ति ले आवेगा, समाधि ले आवेगा। यह जो लयकी प्रक्रिया है यह एक आध्यात्मिक साधकके लिये परमार्थकी सच्चाईके साधकके लिये है। यह जो कार्यका कारणमें लय है यह एकत्वका अनुभव कराकर अन्तःकरणके सब दोषोंका निवारण कर देता है। तो, अन्तःकरणके दोषोंका निवारक होनेके कारण इसको दो नम्बरका बोलते हैं हो!

बन्दूक साफ करना दूसरी चीज है और निशाना लगाना दूसरी चीज है। तो, यह बन्दूक साफ करनेकी प्रक्रिया है। जिस बन्दूकसे निशाना लगता है, उसमें कोई मैल न रह जाय, कोई

अटकाव न रह जाय, कोई प्रतिबन्ध न रह जाय और प्रतिबन्ध है, राग-द्वेष, भय, लोभ, मोह, उनको दूर करनेके लिए यह कार्यको कारणमें लय करनेकी प्रक्रिया है।

अब एक होती है, एक नम्बरकी प्रक्रिया। उसको 'बाध प्रक्रिया' शास्त्रमें बोलते हैं। आज मैंने किसीसे कहा था कि आज मैं वेदान्तकी चर्चा थोड़ी करूँगा।

ध्यान तो चाहे किसी भी रीतिका करें उसमें बहिर्मुखसे अन्तर्मुख होनेकी रीति होती है। इसमें प्रवृत्तिसे निवृत्त होनेकी रीति होती है। उसमें विक्षेपसे शान्त होनेकी रीति होती है। उसमें हजारको एक बनानेकी रीति होती है। एक करोड़ वस्तुओंको बिलकुल काटकर उसको एक करके रख दे यह ध्यानकी तलवार है। तो, आत्मदर्शनकी युक्ति भी ध्यान है। जब दूसरेको देखना बन्द हो जायेगा, तब देखोगे कि भाई यहाँ और कौन है तो और तो कोई नहीं है। तब कौन है ? अपना आप ही है। जरा बन्द कमरेमें नंगा होकर देख ले तो भी क्या हर्ज है। चाहे शीशेमें देखे, चाहे आँखसे देखे, बन्द कमरेमें अपनेको नंगा माने संस्कृतमें बोलेंगे-निरावरण, तो अपने निरावरण स्वरूपका दर्शन चाहे अन्तःकरणके शीशेमें कीजिये, और चाहे स्वयं कीजिये पर यह ध्यान जो है वह आपका आवरणभङ्ग माने मल-विक्षेपका नाश करके आवरणभङ्ग करनेमें बड़ा भारी मददगार होगा।

ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।

'**विनैव करणं**'-बिना किसी औजारके 'आत्मानं स्वं न तु परम्'-दूसरेको नहीं अपने आपको और 'आत्मनि' अलग किसी बर्तनमें नहीं, धरतीपर नहीं, अपने आपमें अपने आपसे, अपने आपको देख सकेंगे। कब ? कि जब ध्यान करेंगे। 'ध्यायेन आत्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना' 'आत्मनि, आत्मना, आत्मानम्'-

ध्यानकी सहायतासे। तब आवरणभङ्ग कब होगा ? जब 'पश्यन्ति' होगा तब होगा। यह केचित् है। केचित्का अर्थ अलग है।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते।

(गी. 13.11)

वह दूसरी चीज है। और-

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।

(गी.13.24)

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।

(गी. 13.25)

आओ, ध्यानकी जो एक नम्बरकी प्रक्रिया है, वह बिलकुल अव्वल एक नम्बर है उसमें उपाध्यक्ष नहीं है, उपसभापति उसमें नहीं होते। देखो! उपाध्यक्ष दो नम्बरका होता है और अध्यक्ष एक नम्बरका है-जिसकी चर्चा अब हम कल करेंगे।

●

प्रवचन : 12

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

कल उपसभापति, उपाध्यक्षकी बात कर रहा था। उसके साथ जोड़ना यह था कि जिसको हम उपाय कहते हैं वह उपेय नहीं होता। 'आय' माने आमदनी। और, 'उप' माने पास। तो, जो आमदनीके पास है, वह आमदनी नहीं है; परन्तु आमदनीका मुख्य जरिया है। जैसे फैक्टरी खोलना उपाय है और उससे जो आमदनी होती है वह आय है। फैक्टरी खोलनेका उपाय करने पर भी कभी आय हो, कभी न हो। ऐसा हो सकता है। तो, उपाय जितने होते हैं, वह मुख्य 'आय' नहीं होते हैं, 'आय'का साधन, 'आय'का जरिया होता है। अच्छा, कभी-कभी उनको छोड़ भी देना पड़ता है। बदल भी देना पड़ता है। अगर वह उपाय उपेयकी प्राप्तिमें साधन न हो तो बदलना भी पड़ता है। कभी छोड़ना पड़ता है, कभी उलटना पड़ता है।

नावसे नदी पार करते हैं, जब नदी बीत गयी तो नावको छोड़ दिया। नाव नदीसे पार जानेका उपाय है। ऐसे साधनोंमें भी उपाय और उपेयका भेद होता है। व्याकरण शास्त्रमें तो कहते हैं कि उपाय-

उपायाः शिक्षमाणानाम् बालानामुपलालना।

जब बालकोंको सिखाते हैं तब वे खेलते भी हैं और सीख भी जायें इसके लिए मिट्टीके, लकड़ीके, पत्थरके अक्षर बना-बनाकर तस्वीर बना-बनाकर उनको दिखाते हैं। तो, वह अक्षरको सिखानेका उपाय होता है। अगर बालक हमेशा लकड़ी देख-देखकर अक्षर गिने और गोटी ले-लेकर गिनती गिने तो वह उपायमें फँस गया, उपेयकी उसको प्राप्ति नहीं हुई।

यह देखना पड़ता है कि उपाय और उपेयके स्वरूपमें भेद क्या है? तो, जो कट्टर प्रेमीभक्त हैं जैसे वृन्दावनी हैं, अवधवासी हैं। काशीवासी तो नहीं; क्योंकि काशीवासी कट्टरप्रेमी नहीं होते। तो, जो कट्टर प्रेमीभक्त हैं वे उपाय और उपेय दोनोंसे बचकर अपने प्रियतमके साथ मिलना चाहते हैं। शरणागत भक्त जो हैं वे उपाय और उपेय दोनों भगवान्‌को ही मानते हैं। वही उपाय है, वही उपेय है, वही साधना है, वही साध्य है।

अब हम ध्यानकी चर्चा करेंगे। तो ध्यानकी चर्चामें पहली बात यह है कि भगवान्‌की कृपासे कभी ध्यान हो जायेगा, इस विश्वासपर हम बैठे रहेंगे तो बैठनेकी शक्ति भी तो चाहिए न! वह पतिव्रता कितनी दृढ़ निष्ठावाली होगी जो आजीवन यही प्रतीक्षा करती रहे कि कभी-न-कभी हमारे पति आ ही जायेंगे। अपनी ओरसे उनको ढूँढ़नेका जो प्रयास है जिसमें पौरुषकी अभिव्यक्ति होती है उसको ध्यान कहते हैं। और शरणागति, भगवान्‌का अनुग्रह। वह तो सबके ऊपर है ही, उसके बिना तो ध्यान भी नहीं होता। जिससे मिलना चाहते हैं उसको अपना ध्यान देते हैं, अपना प्रेम देते हैं। शरणागति और अनुग्रहको तो सर्वोपरि रख लो।

अब हमलोग जिस ध्यानकी चर्चा करते हैं उसमें सम्बन्धका त्याग मुख्य होता है। जितने भी ध्यान होते हैं उसमें मैं और मेराका जो यहके साथ सम्बन्ध है, माने यह मैं हूँ और यह मेरा है। यह माने देह, यह माने अन्तःकरण, यह माने सारी दुनिया, यह माने धन-दौलत। पहले मैं-मेरा है फिर तू-तेरा है। तो, यह जो संसारमें सम्बन्ध है इसको काटनेके लिए ध्यानकी आवश्यकता होती है। ध्यान वह कैंची है जो संसारके साथ मैं और मेराका सम्बन्ध काटती है।

तब एक तो है भगवान्‌के प्रति पूर्ण समर्पण। मैं भी

भगवान्‌का, जो मेरा कहलाता है वह भी भगवान्‌का। भगवान् का मैं और मेरा। मैं कुछ नहीं, मेरा कुछ नहीं। भगवान् शरीरी हैं मैं शरीर हूँ। भगवान् आश्रय हैं मैं आश्रित हूँ। भगवान् उपजीव्य हैं, मैं उपजीवक हूँ। वे कारण हैं, मैं कार्य हूँ। इसमें भी जो कार्यकारणके विवेकपूर्वक समर्पण होता है कि वे प्रभु ही अपने आपको सम्पूर्ण 'यह' और 'मैं'के रूपमें दिखा रहे हैं इस बातको समझकर जो समर्पण होता है, वह मैं और मेराको बिलकुल काट देता है। यामुनाचार्यका श्लोक है-

मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहं सकलं तद्धि तवैव माधव

जो कुछ मैं हूँ और जो कुछ मेरा है वह सब कुछ तुम्हारा है, मेरा नहीं है। तब बोले कि यह तुम कल्पना कर रहे हो। तो, भक्त कल्पना-वल्पना नहीं मानता है भला! वह कहता है कि यह एक तथ्य है, एक सत्य है, एक वास्तविकता है कि-

नियतस्वमिति प्रबुद्धधीरथवा किं नु समर्पयामि ते।

'नियतस्वमिति'-यह बिलकुल निश्चित है कि यह तुम्हारा ही है। मैं भी तुम्हारा यह भी तुम्हारा। और अब मैं जाग गया। इतने दिनोंसे नींदमें देख रहा था कि यह मैं हूँ और यह मेरा है। परन्तु अब मैं जाग गया, मैं और मेरा तुम्हारा है। '**नियतस्वमिति प्रबुद्धधीः**'-हमारी बुद्धि जाग गयी। अथवा-'**किं नु समर्पयामि ते**'-अब मैं क्या समर्पित करूँ? अगर मैं-मेरा होता तो मैं-को समर्पित करता। प्रपञ्च मेरा होता तो प्रपञ्चको समर्पित करता। न चेतन मेरा, न अचेतन मेरा। यह चेतना-अचेतना, चित्त-अचित्त सब तुम्हारा पहलेसे ही है। यह एक सत्य है, वास्तविकता है कि यह तुम्हारा ही है। यह बात वल्लभाचार्यजीके मनमें भी ऐसी ही है-वे भी भगवत् सङ्कल्पसे सृष्टि मानते हैं। और 'श्रीकृष्णः शरणं मम', 'कृष्ण तवास्मि'-रामानुजाचार्यजीके मतमें भी ऐसा ही है।

मध्वाचार्यके मतमें भी ऐसा ही है कि–'**स्वतन्त्रतास्वतन्त्रोवा**'। निम्बाकाचार्यजीके मतमें भी ऐसा ही है। तो, इस तथ्यको समझना कि परमेश्वर ही अपनेको जीव–जगत्‌के रूपमें प्रकट होकर, चेतनाचेतन सकल विश्वके रूपमें अपने आपको दिखा रहा है। इस तथ्यको समझ लेने पर पूर्ण समर्पण होता है। और जबतक तथ्यको नहीं समझेंगे तबतक भावना मात्र होगी।

अब इसमें नतीजा क्या निकला? **परिणतिः जनितः**- 'नतीजा'–नतीजा यह है कि जो शरीरको और दुनियाको मैं–मेरा मानकर हम बैठे हुए थे, वह शिथिल हो गया। शरीरके साथ, प्रपञ्चके साथ स्व सम्बन्धका परित्याग हुआ और भगवत् सम्बन्धकी स्थापना हुई।

अब जरा योगकी चर्चा सुनाते हैं। योगमें भी अन्तमें इसी नतीजे पर पहुँचते हैं–'मैं असङ्ग द्रष्टा हूँ।' लेकिन एक बात भले मानुष! ध्यानमें रखना चाहिए कि ऐसे बैठकर सोचने लगे कि मैं द्रष्टा हूँ, या साक्षी हूँ, या असङ्ग हूँ तो वह भी एक कल्पना ही बनेगी मनमें। इसके लिये विवेक करना पड़ता है। ये जितने भौतिक शरीर हैं वे भूतमात्र हैं। पञ्चभूत जो हैं वे पञ्चतन्मात्राके विलास हैं और पञ्चतन्मात्रा जो है इन्द्रिय, मन और विषयोंके रूपमें फैले हुए वे सब–के–सब अहङ्कारके विलास हैं और अहङ्कार महत्तत्त्वका विलास है और महत्तत्त्व प्रकृतिका विलास है।

पहली बात इसमें यह है कि देहके साथ मैं और मेरामन जुड़ा हुआ है। इसको अभिनिवेश बोलते है। इसीमें–से मृत्युका भय उत्पन्न होता है। और, यह बड़े–बड़े विद्वानोंको भी होता है। उनके सामने साँप आ जाय कोई डंडा दिखावें। तो, शङ्कराचार्यजीने तो लिखा है कि बड़े–बड़े विद्वान् और पशु दोनों बराबर ही हैं इस मामलेमें। यह अध्यात्मभाष्यमें प्रारम्भमें है। **'पश्वादिभिश्चाविशेषात्'**

तो बड़े-बड़े पढ़े-लिखे पण्डित लोग और पशु दोनों जब किसीको देखते हैं कि यह हाथमें डंडा लेकर गुस्सेमें आ रहा है तो दोनों उससे भागनेकी कोशिश करते हैं। और देखते हैं कि यह फूल-माला लेकर आ रहा है, जूता दूर निकालकर प्रणाम करनेवाला है तो, बड़े आदरसे आइये-आइये कहकर उनका स्वागत करते हैं। और पशु भी हरी-हरी घास देखकर उसे खानेके लिये जाता है। और विद्वान् लोग भी फूल-माला देखकर जल्दीसे मिल जाते हैं, खड़े हो जाते हैं। तो इसमें पशु और विद्वान्का कोई भेद नहीं है।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः। (13.30)

देहमें मैं-पना और मेरा-पना। और फिर टेलीफोन पर बात कर रहे हैं, मालूम पड़ा कि यह आदमी हमको पसन्द नहीं है तो, फोन उठानेवालेकी आवाज कड़वी हो जाती है। मैं अपने कमरेमें सोता-सोता सुनता रहता हूँ। और, यह मालूम पड़ता है कि यह हमारे दोस्तका टेलीफोन है तो आवाज पानी-पानी हो जाती है, मीठी-मीठी हो जाती है। तो, पहचाना जा सकता है कि किसका फोन होगा ? उसकी आवाज नहीं सुनायी देती, परन्तु पहचानमें आ जाता है। तो, यह रागकी रञ्जना है और द्वेषकी कड़वाहट है। यह राग-द्वेष जो है वह इन्द्रियभूमि और मनोभूमिमें रहता है। इन्द्रियभूमि और मनोभूमिमें जो मैं-मेरा है, वह राग-द्वेषका आधार है। इससे हमको सुख मिलता है, इससे हमको दुःख मिलता है।

इसके बाद अस्मिता होती है। अस्मिता और अभिनिवेशमें अन्तर है। परिच्छिन्न अहंभावका 'मैं' जो है उसके साथ एक हो जाना अस्मिता है। देखो, पञ्चभूतमें एक हो जाना अभिनिवेश है। पञ्चतन्मात्रामें मैं-मेरा करना यह राग-द्वेष है। और अहङ्कारके एक टुकड़ेसे मैं-मेरा करना अस्मिता है। और प्रकृति-प्राकृतसे एक होना

अविद्या है। यदि गुरु-शास्त्रसे आपको उपाय-युक्ति प्राप्त हो तो, विवेकख्याति हो जाय तब तो आप असङ्ग-द्रष्टा-साक्षी हैं ही इसमें क्या संदेह है ? परन्तु विवेकख्याति होनेके पहले, विवेक ख्याति माने प्रकृति और प्राकृतसे अपना अलगाव जान लेनेके पहले माने विवेकख्याति होनेके पहले यदि आप सोचें कि मैं द्रष्टा हूँ, साक्षी हूँ तो जरा आप स्वयं ध्यान दीजिये कि आप कहाँ बैठे हैं? आप तो पाञ्चभौतिक शरीरमें अपने 'मैं'की स्थापना करके केवल कल्पना या भावना करते हैं कि मैं चेतन हूँ, केवल देख रहा हूँ। परन्तु आपका मैं शरीरके साथ जुड़ा हुआ है। माँ समझ गयी कि अब बच्चा जुदा हो गया, पेटसे बाहर-अलग हो गया। लेकिन अभी नाल जुड़ा हुआ है, कटा नहीं। नालच्छेद नहीं हुआ है। तो, विवेकख्याति न होना माने नालच्छेदन नहीं हुआ है। आप बैठे हैं शरीरमें। फिर जब असङ्ग द्रष्टाकी भावना छोड़कर जब आप व्यवहारमें आवेंगे तो वही देहमें जो मृत्युका डर है वही अभिनिवेश है माने उसीमें बैठकर आप व्यवहार करेंगे। और जब पञ्चतन्मात्रामें आवेंगे तो फिर वही शत्रु-मित्र आपके सामने आवेगा। आप पाँच मिनटके लिए, एक घण्टेके लिए, पाँच घण्टेके लिए चेतन भावमें बैठ लीजिये परन्तु जब उठेंगे तब वही शत्रु, वही मित्र आपके सामने आवेंगे। तब आप शत्रुका नुकसान चाहेंगे और मित्रकी भलाई चाहेंगे। और राग-द्वेषमूलक व्यवहारमें लग जायेंगे। इसी तरह अस्मितामें भी होता है।

तो, विवेकख्याति हो जाय तब तो वह बहुत बढ़िया है। नहीं तो विवेकख्यातिके लिये एक उपाय सुनो। उपाय माने विवेक-ख्यातिकी ओर पहुँचना। अब आजकल बहुतसे साधु होते हैं, वे सबसे प्रेम करते हैं। जिनके मनमें समता है, सबमें अपनी सत्ता देखते हैं, सबमें अपना ज्ञान देखते हैं, सबमें अपना आनन्द देखते हैं, सब उनके प्यारे होते हैं।

एकबार श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजसे मैंने कहा कि– महाराज! इन महात्माओंके भीतर तो बड़ी समता है। सबसे प्यार करते हैं। तो, बाबा हँसकर बोले कि यह ब्रह्मभाव है, ब्रह्मबोध नहीं। अभ्यास करते–करते कि ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, सब ब्रह्म ही है, सब आत्मा ही है वह भावना इनकी परिपुष्ट हो गयी है। आवरणभङ्ग नहीं हुआ है, अविद्याकी निवृत्ति नहीं हुई है। बहुत ऐसे जिन्दा भी हैं और बहुत ऐसे मर भी गये जिनके बारेमें मैंने महाराजसे पूछा था। बाबाने बताया कि वह उनके भावकी गाढ़ता है, बोधके द्वारा बाध नहीं हुआ है। तो, सबसे प्यार, सबके प्रति समता सबमें अपने ज्ञानका, अपने आनन्दका, अपनी सत्ताका अनुभव है, अपनेको मिर्च मत बनाओ, अंगूर बनाओ। तो यदि भावकी दृढ़ता हो भी जायेगी तो उस दृढ़ताके लिये भी गुरु–शास्त्रकी युक्ति काम देती है।

आपके नाभिचक्रमें उसको मणिपूरक चक्र भी बोलते हैं। उसमें वाग् अग्नि प्रज्वलित है। वहाँ आकाश भी है, आकाश न हो तो अग्नि प्रज्वलित कैसे हो ? और वायु भी है और अग्नि भी है। तो, आप नाभिचक्रमें चेतनकी चिन्मय अग्नि प्रज्वलित भावमें देखें। और उसमें 'अभिनिवेशं जुहोमि स्वाहा', द्वेषं जुहोमि स्वाहा, रागं जुहोमि स्वाहा, 'अस्मितां जुहोमि स्वाहा', 'अविद्यां जुहोमि स्वाहा'। आप होम करिये, आहूति डालिये। चेतनकी आग है और उसमें आहूति डाल रहे हैं कि इस पाञ्चभौतिक देहसे मैं–'मैं' नहीं करूँगा। यह जो देहमें 'मैं' हो गया था उसका मैं चेतनमें हवन कर रहा हूँ। यह जो मित्रसे और शत्रुसे मैं–मेरा हो गया था उसको मैं चेतनमें हवन कर रहा हूँ। अच्छा, शत्रुसे भी मेरा ही होता है कि यह मेरा दुश्मन है। अच्छा, दुश्मनी किसीकी नहीं दिखती, अपने ख्यालमें ही होती है। कभी–कभी अपनेसे प्यार करनेवालेसे भी दुश्मनी दिखती है।

एकदिन मैंने देखा कि उड़ियाबाबाजी महाराज उदास थे। मैंने पूछा-'महाराज, मुझसे कोई गलती हो गयी?' तब बोले कि तुमसे कोई गलती नहीं हुई है। मेरे देखते-देखते तुमको इतनी तकलीफ पहुँचाई गयी और मैं इसको रोक नहीं सका इस बातसे उदासी आयी। उन्होंने कहा कि तुम तो जीत गये। देखो, उनकी उदासीमें भी हमारे ऊपर प्रेम ही था। अच्छा तो, द्वेषं जुहोमि स्वाहा!

देखो, आज मौनी अमावस्या है। गङ्गामें खूब स्नान करते हैं। आज सबेरे उठा तो उनकी याद आयी कि त्रिवेणी-कर्मकी, भक्तिकी, ज्ञानकी त्रिवेणी बह रही है। वहाँ प्रयाग तो साक्षात् परमेश्वर है। तीर्थराज है। परन्तु वह लोगोंको पवित्र-शुद्ध कर देता है और काशी भेज देता है कि काशीमें मुक्तिका सदाव्रत मिलता है। प्रयागकी महारानी काशी है! तीर्थराज हैं प्रयाग और काशी उनकी महारानी है। मुक्तिदानका कार्य महारानी काशीके जिम्मे है। प्रयागराज तो पास कर-करके, सर्टीफिकेट दे-देकर भेज देते हैं कि जाओ वहाँसे मुक्ति ले लो। मैंने प्रयागकी परिक्रमा की है, वह पैदल चलकर बारह दिनमें परिक्रमा पूरी हुई थी। त्रिवेणी है जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और प्रयाग है तुरीय अवस्था। सबसे बड़ा याग माने यज्ञ यही होता है सबका हवन उसीमें किया जाता है।

'मौनी अमावस्या'में 'अमा' माने जहाँ अन्य प्रतीत ही न हो उसका नाम 'अमा' होता है। 'मौनी माने आत्यन्तिक। जहाँ वाणीका मौन, मनका मौन बुद्धिका मौन। इसको मौनी अमावास्या बोलते हैं। यह तीर्थोंकी रचना ऐसी हुई है। यदि आप किसी भी एक तीर्थको समझ जायँ कि उसका स्वरूप क्या है तो आपको ब्रह्म समझनेमें बड़ी मदद मिलेगी। तो, प्रयाग यागका स्थान होता है वहाँ हवन होता है। तो, आप अपने हृदयमें एक प्रयाग बना लीजिये और उसमें अभिनिवेश, द्वेष, राग, अस्मिता और अविद्याका हवन कीजिये। पाँच

क्लेशोंका हवन कर दीजिये। और ये पाँचों जल गये तो अब क्या हुआ ?

असलमें हैं क्या ये पाँचों ? पहले आपको सुनाया था कि पाँचों क्लेश इसलिए हैं कि देहमें मैं–मेरा है यह अभिनिवेश, शत्रुमें मैं–मेरा है यह द्वेष, मित्रमें मैं–मेरा है यह राग और उनसे रहित परिच्छिन्नतामें मैं–पना है यह अस्मिता और जिसके साथ आपने सम्बन्ध जोड़ लिया है उससे विविक्त करके माने उससे अलग करके अपने आपको नहीं जानते यह अविद्या।

तो, इसमें प्रकृति या प्रकृतिके कार्यका नाश नहीं है। अविद्याके वंशका नाश है। इसमें सम्बन्धका ही त्याग है। प्रकृति और प्राकृत पदार्थोंके साथ मैं–मेरा रूप सम्बन्धका त्याग है। आप असङ्ग द्रष्टा हैं। यह उपाय है। हवन परम्परा से उपाय है और साक्षात् उपाय है विविक्तरूपसे अवस्थान। यह अभी असली आय नहीं है, उपाय है। अच्छा तो असली आय क्या है ? तो, असली आय यह है कि दूसरा रहे ही नहीं तो सम्बन्ध किससे बनेगा? अगर वास्तविकता यह हो कि, दूसरा कोई नहीं है। सच्चाई यह है कि, दूसरा है ही नहीं। फिर यह देखो कि सम्बन्धत्यागमें दूसरा है लेकिन वह भगवान्का है। हमारा सम्बन्ध तो नहीं है परन्तु वह भगवान् है भगवान्का है। और प्रकृति–पुरुषके विवेकमें प्रकृतिका वंश तो है परन्तु उसके साथ हमारा कोई रिश्ता–नाता नहीं है। अब इन सबको छोड़नेके लिये रोज कहो कि–'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'–यह उपाय हो गया। चीज तुम्हारी है प्रभु हम तुमको समर्पण करते हैं। तो, यह जो रोज–रोज समर्पणको दोहराना है यह उपाय है।

मधुसूदन सरस्वती इस बातको दूसरी तरहसे बोलते हैं। उन्होंने अद्वैतसिद्धि बनायी तब कहते हैं कि–

ग्रन्थस्यैतस्य यः कर्ता स्तूयतां वा स निन्द्यताम् ।

जिसने यह ग्रन्थ बनाया हो उसकी तारीफ करो चाहे निन्दा करो। 'मयि नास्त्येव कर्तत्वम् अभेदानुभवात्मनि' मुझमें कर्तृत्व नहीं है, मैं इस ग्रन्थका कर्ता नहीं हूँ। इन्कार कर दिया। ग्रन्थ है, उन्होंने ग्रन्थको पानीमें डाला नहीं, आगमें जलाया नहीं। तब ग्रन्थ है लेकिन उसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है। तो, जगत् है, परन्तु जगत्के साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है यह साङ्ख्य सिद्धान्त है, यह योग सिद्धान्त है। योग और साङ्ख्यमें भी थोड़ा भेद होता है। इसको ध्यान बोलते हैं। 'रागोपातिर्ध्यानम्'। सम्बन्ध रहित होकर स्थित होना यह एक उपाय है।

तो, यह प्रकृति है, यह प्रकृतिका है यह एक उपाय हुआ और यह भगवान् है यह भगवान्का है यह दूसरा उपाय हुआ। दीखता हुआ भी मैं-मेरा नहीं है यह साङ्ख्य हो गया और समाधि लग गयी और मैं-मेरा नहीं है यह योग हो गया। ये सब उपाय हैं। उपाय तो दो नम्बरवाला अध्यक्ष है न! एक नम्बरवाला वह है जहाँ सम्बन्ध जोड़नेके लिए कोई दूसरा है ही नहीं। न था, न है, न होगा।

किसीने कहा कि आजसे पचास हजार वर्ष पहले यह आकाशमें नीलिमा पैदा हुई। और हमारे पूर्वजोंने ही उसको बनाया था। और, वे ही जब उसका रङ्ग शिथिल हो जाता है तब बार-बार रङ्गकर उसको नीला बना देते हैं। तो, यह अमुक समयमें बनी, अमुक स्थानमें बनी, हमारे अमुक पूर्वजोंने बनायी और यह नीलिमा तो मेरी है। तब, बोले कि ठीक है। अच्छा, तो विवेक करके देखो कि इस नीलिमामें तुम कुछ बढ़ा सकते हो कि घटा सकते हो, कुछ बना सकते हो? नहीं। यह है तो सही परन्तु तुम्हारे समझानेसे यह मालूम पड़ा कि यह नीलिमा मेरी नहीं है, मेरे पूर्वजोंकी भी नहीं है। न पूर्वजोंने बनायी है, न पाला-पोसा है, न उनकी है। न इसकी है, न

मेरी है। परन्तु नीलिमा है तो सही ? तो बोले-जरा आकाशका ज्ञान प्राप्त करो तब मालूम पड़ेगा कि आकाशमें नीलिमाका न स्थान है, न समय है, न वजन है। नीलिमा मालूम तो पड़ रही है परन्तु नीलिमाका कुछ वजन नहीं है, कोई भार नही है नीलिमामें, उसकी लम्बाई-चौड़ाई भी नहीं है। जितना ऊपर चलते जाओ, उतनी ही ऊपर चलती जायेगी, उसमें कभी डूब नहीं सकते। और इसने कोई स्थान नहीं घेरा हुआ है। तो जब अपने अभावके स्थानमें ही वह दीख रही है, अपने अभावके कालमें ही दीख रही है, और जो बिलकुल नहीं है उसके रूपमें दीख रही है तो इसके साथ न पहले सम्बन्ध था, न अब सम्बन्ध है, न आगे सम्बन्ध होगा। अब देखो, यह उपाय है।

सम्बन्धका त्याग होता है उपायसे। सम्बन्ध और सम्बन्ध जिससे है उस वस्तुसे, विवेकसे सम्बन्धकी निवृत्ति होती है। असङ्गतासे सम्बन्धकी निवृत्ति होती है। समर्पणसे सम्बन्धकी निवृत्ति होती है। कार्य-कारणके विवेकसे सम्बन्धकी निवृत्ति होती है। परन्तु जिसके साथ सम्बन्ध है उस वस्तुकी निवृत्ति बिना अधिष्ठानज्ञानके नहीं होती है। अपने अत्यन्ताभावके अधिष्ठानमें ही वह वस्तु दिख रही है। तो परिच्छिन्नके साथ मैं-मेराके सम्बन्धसे निवृत्ति होना, इतना तो विवेकसे हो गया। परन्तु परिच्छिन्न वस्तुका अस्तित्व ही नहीं है इसका विवेक अधिष्ठानज्ञानके बाद होगा। परिच्छिन्न वस्तुका अस्तित्व पहले भी नहीं था, अब भी नहीं है और आगे भी नहीं होगा। जो चीज ज्ञानसे मिलती है वह पूर्वसिद्ध ही होती है।

अब देखो, उपायकी एक प्रक्रिया आपको बतायी 'समर्पण'। एक बतायी 'विवेक'। वेदान्तकी केवल तीन बातें आप अपने ध्यानमें रख लीजिये। हम जिसको मैं-मैं बोलते हैं, 'मैं' सर्वनाम है, हम सबका अपना नाम 'मैं; है, इसलिए संस्कृतभाषामें 'अस्मत्' शब्दको

सर्वनाम बोलते हैं। इसीमें-से अस्मिता निकलती है इसलिए इसको 'अस्मत्' बोलते हैं। 'अस्मत्' माने 'मैं'। क्योंकि इसमें-से अस्मिता निकलती है। 'अस्मेः भावः अस्मिता'-'अस्मि'। अस्मति इति अस्मत् -अस्मिभावम् आपद्यते इति अस्मति ' जो अस्मि बने उसका नाम 'अस्मत् '-'मैं'। तो, वेदान्तकी पहली बात क्या है कि किसी भी परिच्छिन्न वस्तुमें अपने 'मैं'को मत जोड़ो। वहाँसे विवेक करके निकाल लो, यह पहली बात है। दूसरी बात यह है कि इसको ब्रह्मसे एक जानो, यह वेदान्तकी दूसरी बात है। अद्वितीय ब्रह्मसे एक। तीसरी बात यह है कि प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष जो कुछ मालूम पड़ रहा है वह सब ब्रह्मरूप आत्मासे अलग नहीं है। सब अपना ही स्वरूप है।

एक महात्मासे मैंने एकबार कहा कि महाराज, आप जिस खण्डहरमें रहते हैं उसमें लाल-लाल ततैया बहुत हैं, चींटी बहुत हैं। ततैयाकी दो जात होती हैं, एक पीली और एक लाल। लाल वाली ज्यादा भयङ्कर होती हैं। तो, हमने कहा-महाराज! हम उसको निकालते हैं, कभी आपको काट लेंगे तो बड़ी तकलीफ देंगे। तो, क्या बोले कि मैं तो जानता हूँ कि यह जो मकान है गिरा हुआ, यह मैं नहीं हूँ, मेरा नहीं है। और ये बेचारे ततैये, ये मच्छर, ये चींटी नहीं जानते कि यह मेरा नहीं है। ये तो इसको पूरी तरहसे मेरा मानते हैं। तो, मेरा इसमें रहना अन्याय है और इनका इसमें रहना ही न्याय है। तो, हमको, इनको, सबको निकालो, और न निकालो तो किसीको मत निकालो। सब उसमें एक ही सरीखे रह रहे हैं।

एकबार तो एक महात्माके यहाँ ऐसा हुआ कि एक आदमी चोरी करता हुआ पकड़ा गया। तो, आप कहोगे कि क्या व्यवहार किया है! अरे! बाबा, व्यवहार तुम अपना अपने पास रखो। उसको हम काटते थोड़े ही हैं? परन्तु महात्माओंकी कितनी उदार दृष्टि होती

है उसका हम आपको नमूना बताते हैं। किसीने कहा-महाराज! यह आश्रमका आदमी चोरी करते हुए पकड़ा गया, उसको आश्रमसे निकाल दिया जाय। तो, बाबा बोले कि भाई, हम कमण्डल लेकर जाते हैं इस आश्रमसे हमारा क्या लेना-देना है ? यह कोई हमारा थोड़े ही है? कितनी उदार दृष्टि है। एक दुष्ट व्यक्तिने (हम तो दुष्ट ही बोलेंगे उसको) चाकूको महात्माकी नाक पर रख दिया। फिर दो-सौ रुपया माँगता था कि हमको किसी सेठसे दिलवा दो। उन्होंने कहा कि भाई, कोई सेठ अगर पूछे कि हम इसको दो-सौ रुपया दे दें तब तो हम कह देंगे कि दे दो। परन्तु हम अपनी ओरसे नहीं कहेंगे कि इसको दो-सौ रुपया दे दो। यह उसको समझाया कि हम कभी किसीसे पैसे नहीं लेते। जब नाकपर उसने चाकू मारा तो दूसरे आदमीने उसको पकड़ लिया, पकड़ लिया तो बाबाने झट चाकू मारनेवालेको दोनों हाथोंसे पकड़कर अपने गलेसे लगाया और बोले इसको दूध पिलाओ। यह तो हम ही हैं। यह कोई दूसरा थोड़े ही है! तो असलमें इसका नाम सर्वात्मभाव है।

●

प्रवचन : 13

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

एकबार श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजसे किसीने पूछा कि आप भक्तिको मानते हैं कि नहीं मानते हैं उन्होंने–बताया मानते हैं। धर्म, उपासना, योग, वेदान्त मानते हैं। तब आपके सिद्धान्तमें और यह जो कट्टर प्रेमीलोग हैं उनके सिद्धान्तमें कुछ फर्क है कि नहीं ? बाबा बोले–फर्क है। तो, क्या फर्क है ? कि ये लोग उपासनाको, प्रेमको, भक्तिको ही परम अवधि मानते हैं। 'जीवनका परमलक्ष्य'। और हमलोग परमात्माको जीवनका परमलक्ष्य मानते हैं। परमावधि जो है वह आत्मा–परमात्मा है, तो दोनोंमें यह अन्तर है। भक्ति साधन है और परमात्मा जो है यह स्थित फल है। एक उदाहरण आपको सुनाते हैं, मान्यताके बारेमें।

जो ध्यानकी बात हम करते हैं, वह ध्यान क्या है ? ध्यान एक दवा है, औषध है भला! यह बिलकुल न करनेका भी नहीं है। और हमेशा करते रहनेका भी नहीं है। यह तो औषध है। जैसे चिकित्साके चार रूप होते हैं। आयुर्वेदशास्त्रमें वह प्रसिद्ध है। रोग क्या है ? रोगका कारण क्या है ? रोगका निवारण क्या है ? और रोगके निवृत्त होनेपर स्वस्थता क्या है ? तो, यदि आपको अपने अन्दर कोई रोग मालूम नहीं पड़ता, कोई मानसिक रोग मालूम नहीं पड़ता, आपको तकलीफ देनेवाली कोई चीज आपके मनमें नहीं है तो आपको दवा करनेकी जरूरत नहीं है।

परन्तु कोई चीज आपके मनमें, आपके जीवनमें ऐसी है जो आपको खटकती है। तो, आपके मनमें कोई पीड़ा है तो उस पीड़ाको निवृत्त करनेका उपाय ध्यान है। सहज स्थिति प्राप्त करनेका उपाय भी ध्यान है। स्वस्थ होनेका उपाय ध्यान है। और जो आधि-व्याधि आपके मनमें लगी हुई है उसके निवारणका उपाय भी ध्यान है। माने, मनमें जो दोष है उसको मिटानेका साधन ध्यान है। और, अपने सहज स्वरूपमें बैठनेका उपाय ध्यान है।

उपादायाद्धि ये हेया उपायास्ते प्रकीर्तिताः।

जिन्हें पहले स्वीकार किया जाय और बादमें छोड़ दिया जाय उसका नाम उपाय होता है। किसी अफसरको पटाया उसको कुछ लिया-दिया अपना काम बनाया फिर यह नहीं कि रोज जाकर उसको कुछ देते रहें, उनको मिलते रहें। वह तो काम पटानेके लिए मिलना-जुलना, लेना-देना होता है। उपाय उसको कहते हैं जो पहले उपादान करें, ग्रहण करें, स्वीकार करें और बादमें छोड़ दें। यहाँ तक बोलते हैं कि-

असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।

उपाय सब सच्चे हों, यह जरूरी नहीं है। देखना तो यह है कि आपका काम ठीक-ठाक बन जाता है कि नहीं। झूठे उपायका एक उदाहरण बताता हूँ। हमारे पास एक ब्रह्मचारी थे, उनको वैद्योंने, डाक्टरने यह बता दिया कि तुम्हारा लीवर खराब हो गया है। तब बहुत दवा की गयी। यहाँ तक कि हमारे जे. के. वाले रामसुदेहजी एक औषध लाये कि उससे वह ठीक हो जाय। परन्तु, वे ठीक नहीं हुए। हमारे पास एक डाक्टर आता था सत्सङ्गके लिये। उसने कहा- महाराज, हम अच्छा करेंगे। हर तीसरे दिन आता था और एक इंजेक्शन लगा जाता था। कुछ दो-महीने तक आता रहा और इंजेक्शन लगाता रहा। उनका लीवर बिलकुल अच्छा हो गया। उसके

बाद डाक्टरकी बदली हो गयी तो गोरखपुर चले गये। मैं (भागवतका कुछ अनुवाद सुनाना था तो) गोरखपुर गया था। वह वहाँका सर्जन था।

एक दिन भोजन करनेके लिए ले गया अपने घर तो मैंने उनको धन्यवाद दिया कि तुमने हमारे ब्रह्मचारीका लीवर अच्छा कर दिया। तो उसने कहा कि–महाराज, आपको सच–सच बताता हूँ कि उनके लीवरमें कोई दोष नहीं था, बिलकुल ठीक था। परन्तु ऐसा वहम हो गया था लीवर बिगड़नेका कि वह कहनेसे कि तुम्हारे लीवरमें कोई दोष नहीं है, वे मान नहीं सकते थे। तब मैंने दो महीने तक हर तीसरे दिन डिस्टल वाटरका इंजेक्शन उनको लगाया। और, उसी उपायसे रोग दूर हो गया। रोगका वहम हो तो वहम दूर करनेके लिए ऐसे उपाय करने पड़ते हैं कि वह भ्रम छूट जाय। इसके लिये सच्चे उपायकी जरूरत नहीं होती है। 'आपसमें समसत्ता जिनकी *'लखि साधक बाधकता तिनकी'* अगर रोग झूठा है तो दवा भी झूठी चाहिए। यह जो मानसिक भ्रम होते हैं इनको मनुष्य अपनी ताकतसे छोड़ नहीं सकता। तो, उनको छुड़ानेके लिए भी युक्ति करनी पड़ती है। वह रोग युक्तिसे ही छूटता है। तो रोगका स्वरूप और कारण क्या है, निवारण क्या है और स्वस्थ पुरुषका लक्षण क्या है?

अब देखो, आपको क्लेश क्या है ? जो अपने जन हैं, माने परिवार है, परिकर है, उनकी मृत्युका नाम दुःख नहीं है। धन जानेका नाम दुःख नहीं है। आग लगनेका नाम दुःख नहीं है। दुःख माने होता है मैं दुःखी हूँ इस प्रकारकी वृत्तिका अन्तरमें उदय हो जाना। यह दुःख है ऐसा नहीं होता। यह तो आप बहार किसी चीजको बताकर, दुश्मनको देखेंगे तो कहेंगे कि यह हमारा दुःख आ रहा है। दुश्मन दुःख थोड़े ही है, वह तो अपनी पत्नीके

लिये बहुत प्यारा है। अपने पिताका दुलारा है वह दुःख थोड़े ही है! वह तो तुम्हारे मनने उसको दुःख बनाया है। शत्रुमें भी जो दुःखरूपता है वह तुम्हारे द्वारा कल्पित है। तो, यह दुःख है ऐसा अनुभव कभी नहीं होता है। 'मैं दुःखी हूँ' यह दुःखका रूप हमेशा ऐसा ही होता है। यह इसका विभाग है। जब आपको दुःख होगा तब 'मैं दुःखी हूँ' यह उसका रूप होगा। यह दुःख न–काला है, न पीला है, न एक फुटका है, न एक मीटरका है। दुःखमें लम्बाई–चौड़ाई नहीं है। दुःखकी उम्र नहीं है। दुःखमें रङ्ग नहीं है। दुःखमें आकार नहीं है, उसकी रेखाएँ नहीं हैं। तो, दुःखका एकमात्र रूप है, 'मैं दुःखी हूँ' इत्याकारक अभिमान। उस अभिमानके उदय होनेमें बाहरकी चीज कोई निमित्त हो सकती है। कोई मर सकता है, कोई बिछुड़ सकता है, तब 'मैं दुःखी हूँ' ऐसा आप मान बैठेंगे। अगर उससे दो दिन पहले लड़ायी हो गयी हो, तो उतना दुःख नहीं होगा। आपके घरमें कोई ऐसा बहीखाता हो जो पुलिस या इन्कमटेक्सके अफसरोंके द्वारा पकड़ लेनेपर हानिकी सम्भावना हो तो उसकी चोरी हो जाने पर आराम मिलेगा, कि चलो चोरी चली गयी अच्छा हुआ! हमारा रजिस्टर पकड़ा जाता तो बहुत बड़ा नुकसान होता। अच्छा हुआ कि रजिस्टर ही चोरी हो गया। लोग आग भी लगा देते हैं, यह सुनी हुई बात कहता हूँ।

सुनते हैं एकदिन किसीके घरपर छापा पड़ा। तब उनको बताया कि भाई छापा डालनेको तो आये ही हो। बैठो यहाँ ड्राईंगरूममें, थोड़ा बैठो, खाओ–पीओ। तब उन्होंने जब चाय बनानेके लिए घरमें अँगीठी जलायी तो उसमें जो बेकारके नोटके बण्डल थे सब डाल दिये। देखो, वहाँ नोटके बण्डलके जलनेसे सुख मिला। और, ऐसे ही नोट जल जाता तो ? हाय–हाय, हमारा सब कुछ जल गया, हम दुःखी हो गये। तो, नोट जलना दुःख नहीं है, उससे दुःखकी

संवेदना उत्पन्न होना यह दुःख है। 'मैं दुःखी हूँ'–यह बात दुःखके निमित्तके कारण उससे उदय होनेवाली वृत्तिके साथ तादात्म्यापन्न हो गया इसलिए 'मैं दुःखी हूँ' ऐसा भाव बनता है। वेदान्तकी बात समझनेमें थोड़ी कठिनाई होती है। दुःखको आभासभास्य नहीं माना जाता वेदान्तमें, साक्षीभास्य माना जाता है। यह वेदान्तका पारिभाषिक शब्द है। जैसे यह रूमाल है न, तो वह आभासभास्य है। माने, आँखके द्वारा परिच्छिन्न जीवचैतन्य इस रूमालको देख रहा है। लेकिन दुःखको साक्षीभास्य मानते हैं आभासभास्य नहीं मानते। माने, न दुःख आँखसे देखा जाता है, न कानसे सुना जाता है। चिदाभास दुःखको नहीं देखता, परन्तु चिदाभास 'मैं दुःखी हूँ' यह अनुभव करने लगता है। और साक्षी उसको देखता है। 'मैं दुःखी हूँ' यह वृत्ति साक्षीभास्य है।

तो, रोगरूप दुःखको दूर करनेके लिए, अगर उसकी वजह ढूँढे तो, या तो आप दुनियाकी कोई चीज चाहते होंगे कि यह मिले और वह नहीं मिली। अथवा यह न मिले ऐसा चाहते होंगे और मिल गयी होगी और या तो कोई भोगकी इच्छा की होगी, वह पूरी नहीं हुई होगी। आपने कुछ सपने सँजोये होंगे कि हमको ऐसा पति मिले, ऐसी पत्नी मिले, ऐसी मोटर मिलेगी, ऐसा मकान मिलेगा और वह स्वप्न टूट गया होगा। मनोराज्य भङ्ग हो गया होगा। हम एक रातमें करोड़पति हो जायेंगे, तो इसके लिए सट्टा किया होगा और दूसरे दिन दिवाला निकल गया होगा। क्योंकि यह मनोराज्य तो बिलकुल अपुष्ट होते हैं न! लोग अपने मनमें आयी हुई बातको सच्ची मान बैठते हैं। तो, आपको दुःख कहाँसे आया होगा ? चीज चाहते होंगे नहीं मिली होगी, भोग चाहते होंगे नहीं मिला होगा, सपना सँजोया होगा नहीं मिला होगा, या आपके अभिमानपर कहींसे चोट पड़ गयी होगी। आप मानते होंगे अपनेको बड़ा भारी बुद्धिमान, विद्वान् और किसीने मूर्ख, बेवकूफ सिद्ध कर दिया होगा।

एक सज्जनको किसीने टेलीफोन करके बेवकूफ बना दिया। बोला कि मुम्बईसे बात कर रहा हूँ, लेकिन मालूम पड़ा कि वह बोल रहा है आसामसे। उसने बताया कि मैं आपका अमुक रिश्तेदार हूँ। उस सज्जनको लगा कि यह तो हमारा पूज्य है, रिश्तेदार है, बहुत पुराने है, और बहुत वर्षोंसे नहीं मिले हैं। उस आदमीने बताया कि हमारा आदमी अमुक स्टेशन पर चोरी हो जानेसे बहुत व्याकुल है तुम पैसा दे आओ। अब बेचारा पैसा जाकर दे आये। दे आये तो बादमें मालूम पड़ा कि न वह आसामसे फोन था, न उनके उस रिश्तेदारका फोन था। वे तो बेवकूफ बन गये। तो, दुःख कहाँसे आता है ? अपनेको बहुत बुद्धिमान समझनेवालेको जब कोई बेवकूफ बना देता है तब बहुत दुःखी होता है। अब हम लोगोंको तो दिनभरमें आठ-दस बार लोग बेवकूफ बना जाते हैं। तब बेवकूफ बननेका भी दुःख नहीं होता है। उसकी भी आदत पड़ गयी! तो, उसको भी सहन कर लो।

असलमें दुःख आता कहाँसे है ? बुद्धिमें निर्मलता न होनेसे दुःख आता है। बुद्धि साफ नहीं है। देहमें 'मैं' करके बैठी है। दुश्मनको मार डालना चाहती है। दोस्तको हर समय गलेसे लगाकर रखना चाहती है। कहीं जो चीज है नहीं वहीं वह चीज मानकर बैठे होंगे। योगदर्शनका अभिप्राय यह है कि संसारमें जितने दुःख होते हैं, उनके मूलमें जरूर नासमझी है।

'अविद्याक्षेत्रम् उत्तरेषाम्'-सूत्र है योगदर्शनका। संसारमें जितने दुःख होते हैं उनमें कहीं-न-कहीं नासमझी है। तो, अब देखो, दुःख रोग है। और नासमझी उसका कारण है, निदान है, आदिकारण है। कहीं-न-कहीं नासमझी है। तुम क्यों ईश्वरकी इच्छासे जो हो रहा है उसमें दखलअन्दाजी करने गये थे ? तुमने क्यों दूसरेके मनको मन नहीं समझा ? कि हमारे ही मनका हो, दूसरेके मनका न हो!

तुमने अपनेको क्यों तानाशाह बना लिया कि जो हम हुक्म देंगे वही होगा ? तो कहीं-न-कहीं अपनी नासमझी दुःखी होनेमें जरूर होती है।

देखो, दुःख हो रहा है यह रोग है। और, उसका कारण नासमझी, अविद्या है। तो, उस नासमझीको दूर करनेके लिए माने रोगकी चिकित्सा, उसकी दवा जो अन्तःकरणकी शुद्धि है उसमें उपयोगी ध्यान है। और, इस दवाका फल क्या होगा? कि आप सहज अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओगे। 'मैं दुःखी हूँ' यह अभिमान होना जब मिट जाय, जैसे आपको अभिमान होता है कि मैं धनी हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं बुद्धिमान हूँ, मैं विद्वान् हूँ, हमारे पीछे लाखों भेड़ें चलती हैं। ऐसा होता है न! क्या समझते हो हमको ? हम अमेरिकामें गये तो वहाँ हमारे लाख चेले हो गये। अब वे बेचारे न ब्रह्मको जानें, न आत्माको जानें, न ध्यानको जानें, न समाधिको जानें और बोले-भाई, लाख अमेरिकन हमारे चेले हो गये। वे लोग अध्यात्मविद्या कुछ जानते ही नहीं है, लाख भेड़ें तुम्हारे पीछे चलें! इससे तुम बड़े भारी थोड़े न हो गये ? अज्ञान लोग-अनजान लोग, भेड़ें किसीके पीछे-पीछे चलें तो इसमें बड़प्पन काहे का ? तो, अभिमान जो है वह बड़ा भारी दुःख देता है। जब 'मैं दुःखी हूँ' यह अभिमान तुम्हारे हृदयमें उदय न हो, तब हम कहेंगे कि हा भाई, अब तुम स्वस्थ हुए। उस स्वस्थताके लिए ध्यान करना पड़ता है। कहो कि ध्यान ही से दुःख दूर हो जायेगा। 'मैं दुःखी हूँ' यह अभिमान दूर हो जायेगा! तो, बिना अन्तःकरण शुद्ध हुए ध्यान होगा नहीं और अन्तःकरणशुद्धिके लिये छँटाई करना जरूरी है। और, छँटाई बिना ध्यानके नहीं होती है। जब अपनेमें बैठोगे तब दूसरा छूटेगा माने छँटाई होगी। जब भगवान्‌के ध्यानमें बैठोगे, तब दूसरेका ध्यान अपने आप छूट जायेगा। लेकिन जो केवल अभ्याससे ही बैठते हैं उनका उतनी ही देरके लिए छूटेगा

जितनी देरके लिए अभ्यास करेंगे। और, जो सहज स्थितिमें हो जायेंगे उनका हमेशाके लिए छूट जायेगा। तो, आओ ध्यानकी बात फिरसे प्रारम्भ करते हैं। यह तो, ध्यानकी आवश्यकता और ध्यानका माहात्म्य हुआ।

ध्यान क्या होता है ? ध्यानमें ऐसा आप समझें कि आप किसी मोटरमें बैठकर यात्रा कर रहे हैं। परन्तु आपकी मोटरमें ब्रेक नहीं है। तो वह गड्ढेमें गिर सकती है, वह बन्द हो सकती है। कोई अकस्मात् कर सकती है। आप जिस रास्तेपर ले जाना चाहें उस रास्तेपर न चले ऐसा हो सकता है। तो, यह आपके अन्तःकरणमें, मनमें, बुद्धिमें एक जो मोटर चल रही है, जिस अन्तःकरणपर बैठकर आप जीवनयात्राका निर्वाह कर रहे हैं उसमें ब्रेक लगानेका सामर्थ्य आपके पास है कि नहीं है ? आपकी जीवनयात्रा तो चल रही है। खाते हैं, पीते हैं, मौज करते हैं, काम करते हैं, परन्तु ये बेधड़क, बेतहासा बहती चली जा रही है कि उसमें वारक यन्त्र, ब्रेक आपके काबूमें है ? तो, इस जीवनयात्रामें जो निरोध शब्दका प्रयोग किया जाता है। योगमें निरोध शब्दका प्रयोग करते हैं, निरोध माने ब्रेक। तो वह कितना प्रबल होना चाहिए ? यह नहीं कि तेज रफ्तारसे मोटर चल रही है और जोरसे ब्रेक लगाया और टूट गया ब्रेक! ब्रेक बड़ा समर्थ होना चाहिए। और वह ऐसा समर्थ होना चाहिए कि वह किस-किस चीजपर लगे? इसकी गिनती बता देते हैं आपको।

पीछे की अच्छी यादें और बुरी यादें अपने मनमें आती रहती हैं। अच्छा, हम जब चाहें तब उनका आना रोक सकते हैं कि नहीं ? जब यह बातें आनी लगती है बाबा, तब हजार उपाय करो वह नहीं रुकती हैं। तब आपके मनमें यह निरोधका सामर्थ्य है कि जब हम चाहें अतीतको काटकर बिलकुल अलग कर दें। स्मृति अच्छी

या बुरी होती है। बुरी स्मृति आती है तो दुःख होता है, और अच्छी स्मृति आती है तो सुख मिलता है।

हमारी एक माता हैं। वह एकदिन किसीके घर मातम-पुर्सी करने गयी। अब वहाँ रोनेका वातावरण था, सब लोग रो रहे थे। तो, उन्होंने सोचा हम भी रोवें, सब लोग रोते हैं तो उनको रोना न आवे। तो, मुँहपर रूमाल लगाया। और अपने माँकी मरनेकी याद, बापके मरनेकी यादकी, भाई मरनेकी याद की। अब कितनी भी याद करें रोना उनको आवे ही नहीं। याद कर-करके रोनेकी कोशिश कर रही थीं। तो, ईश्वर कृपासे स्मृति चाहे अच्छी हो, चाहे बुरी जब हम अतीतके साथ अपना सम्बन्ध काटना चाहें तो बिलकुल काट सकें यह सामर्थ्य आपके भीतर रहना चाहिए। जब ध्यानका हम अभ्यास करेंगे कि हम रामका, कृष्णका, विष्णुका, शिवका, निर्विषयताका, निर्विकल्पताका, अपनी पूर्णताका जब हम ध्यान करना चाहें और जब हम ध्यानमें बैठ जायँ और बीती हुई बातोंका याद आना बन्द हो जाय। बीती हुई बातोंकी याद बन्द करनेका आपमें सामर्थ्य है कि नहीं ?

एक दूसरी बात करते हैं। ऑफिसमें लोग मेजपर सिर रखकर सो जाते हैं! सत्सङ्गमें भी सो जाते हैं, परन्तु हमारे सत्सङ्गी ऐसे नहीं हैं हो! सत्सङ्गमें बैठे और कुम्भकर्णकी श्रीमती आ गयी। कुम्भकर्णकी पत्नीको निद्रा बोलते हैं। जब वह कुम्भकर्णके मरने पर विधवा हो गयी तो रामजीने कहा कि-बोलो तुमको क्या चाहिए? उसने पूछा-महाराज, आगेका जीवन कैसे व्यतीत करें, कैसे बितावें? रामजीने कहा-तू सत्सङ्गमें जो पापीलोग आते हैं उनके सिरपर बैठ जाना और सत्सङ्ग करना। ऐसा वरादन रामजीने दिया। जब देखो नींद आ जाती है। यह निद्रा हमारे काबूमें नहीं रहती है। ऐसा अभ्यास होना चाहिए कि जब चाहें पाँच मिनटमें सो जायँ और जब चाहें बिना

सोये रह सकें। गाँधीजीका ऐसा अभ्यास था कि उनको पाँच मिनटका अवकाश मिल जाय तो उसमें वे नींद ले लेते थे। प्राकृत समाधिका नाम निद्रा है और आध्यात्मिक निद्राका नाम समाधि है। आप अभ्याससे अगर नींद पैदा कर सकें तो उसका नाम समाधि है और जो प्रकृति ही आपके सिरपर डाल देती है समाधि, उसका नाम नींद है। तो, इसमें अभ्यास होनेसे यह साधन हो जाता है। प्रकृतिसे आनेके कारण साधन नहीं होती है निद्रा।

एक और बात देखो कि आपके मनमें कल्पनाएँ तो होती रहती हैं। और ऐसी-ऐसी कल्पनाएँ होती हैं जो दुनियाके पर्देपर कहीं नहीं हैं। ऐसे-ऐसे विकल्प आपके मनमें उठते हैं। जिनके लिए शब्द तो हैं परन्तु वस्तु कहीं नहीं है। तो, आपका मन नरकको कल्पना ज्यादा करता है कि स्वर्गकी। आगे होनेवाले सुखकी ज्यादा कल्पना करता है कि दुःखकी ? यह कालका जो भविष्य है वह वर्तमानकालकी कल्पना है। जैसे भूतकी दृष्टिसे भविष्य ही वर्तमान होकर आया है ऐसे वर्तमान ही भविष्य बनकर दिखायी पड़ता है। भूतके संस्कार उसमें मिले होते हैं कि आगे ऐसा होगा....ऐसा होगा...। होगा कि नहीं वह आपको मालूम नहीं, परन्तु सोचते हैं कि ऐसा होगा...ऐसा होगा...रात बीतेगी...दिन उगेगा, कमलकी कली खिलेगी-और हम खूब पेट भर-भरकर रस पीयेंगे। ऐसी कल्पना कमलकी कलीमें फँसा हुआ भँवरा कर रहा था।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।

वह भँवरेके मनमें विकल्प हो रहा था कि कमलकी कली मुस्कुराएगी और हम खूब छक-छककर रस पीयेंगे।

इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त! हन्त नलिनीं गज उज्जहार।।

'रह गयो मनको मनमें मनसुबो...' हाथीने आकर कमलको उखाड़ा और मुँहमें डाल दिया। तो, कुछ ऐसी बातोंकी कल्पना अपने मनमें होती रहती है कि जो धरतीके पर्देपर कहीं नहीं है। कभी हुई ही नहीं ऐसी अनेक चीजें हैं जिनकी कल्पना तो हमारे मनमें है लेकिन वह चीज नहीं है। 'शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः' (योगसूत्र 1) तो, यह जो संकल्प-विकल्प मनमें होते हैं वे बड़े दुःख देते हैं। जब सङ्कल्पके अनुसार नहीं होता है तो बड़ा दुःख होता है कि हाय...हाय..हमारा सङ्कल्प टूट गया।

दिल्लीमें एक आदमी आर्यसमाजी हैं, तो वे ज्योतिष-मुहूर्त तो मानते नहीं हैं। तब उन्होंने अपने आप ही निश्चय किया कि लड़केका ब्याह है तो सात बजे यहाँसे बारात निकलेगी। एक घण्टे रास्तेपर रहेगी, आठ बजे पहुँच जायेंगे और नौ बजे ब्याह हो जायेगा। अब क्या हुआ कि बैण्डवाले जो हैं वे सात बजे नहीं आये। साढ़े सात बज गये, पौने आठ हो गये, अब वह पाँव पीटे और चिल्लायें घरमें कि व्याहका मुहूर्त बिगड़ रहा है। अरे! कौन ज्योतिषसे पूछा है, तुमने ही तो नक्की किया है न ? तो खुद ही नक्की करते हैं और खुद ही पाँव पीटते हैं कि हमारी कल्पनाके अनुसार नहीं हुआ। तो, आप अपनी कल्पनाओंको रोक सकते हैं कि नहीं ? यह जो भविष्यके बारेमें आपके मनमें झूठी-झूठी कल्पनाएँ होती रहती हैं और आपको लगती हैं कि बिलकुल सच्ची हैं। अपनी ही कल्पनाको हम बिलकुल सच्ची मानते हैं। इसमें नरककी कल्पना हो, तब तो आप उसी समय दुःखका दर्शन करेंगे। और स्वर्गकी कल्पना हो तो उसी समय सुखका दर्शन करेंगे। वैकुण्ठकी कल्पना हो तो शान्तिका अनुभव करेंगे। लेकिन आपके मनमें यह जो कल्पनाकी गति है, इसपर आप ब्रेक लगानेमें समर्थ हैं कि नहीं ? कि जब चाहें तब इनको बन्द कर दें, इनको छोड़ दें। विपर्यय सबको होता है। विपर्यय माने किसी

चीजको उल्टी समझ बैठना और बहुत–बहुत बार उल्टी समझ लेना। उल्टी समझ भी कभी फायदेकी होती है, कभी नुकसानकी होती है। भ्रान्ति भी कभी–कभी लाभकारक होती है।

जो भूलकी वृत्ति है इसको आप रोक सकते हैं कि नहीं ? आँख कुछ देख रही है, कान कुछ सुन रहा है, जीभ फटाफट बोल रही है। एक आदत होती है कि मुँहमें हर समय कुछ पड़ता रहे और वह चलता रहे। देखो, तम्बाकू पैदा करनेवाले प्रायः तम्बाकू नहीं खाते, परन्तु जो खाते हैं उनका मुँह हमेशा चलता रहता है। तो, बोलनेमें बोलते रहना, खानेमें खाते रहना, बैठने पर हर समय हाथ हिलाते रहना, आँख कहीं–न–कहीं दाँयें–बाँयें चलती रहती है।

हमारे तो एक सेठ कहते हैं कि बच्चे तो महाराज जब काम करनेका समय होता है तब विविध भारती जो रेडियो पर आता है न, वह खोलकर बैठ जाते हैं काम नहीं करते हैं। कोई कहता है बच्चे तो महाराज शामको सात बजेसे लेकर दस बजेतक टी. वी. देखनेमें लगे रहते हैं। पढ़ना–लिखना तो उनका छूट गया। घरमें मारधाड़ आ गयी, घरमें प्रेम आ गया, मोहब्बत आ गयी! बेटी और माँ दोनों बैठकर प्रेमके दृश्य एक साथ देखते हैं! ऐसी शिकायत करते हैं महाराज! तो हर समय आँखको कुछ देखनेको मिले, हर समय कुछ सुननेको मिले, हर समय कुछ बोलनेको मिले, हर समय खानेको मिले, हमारी इन्द्रियाँ हर समय प्रवृत्त ही रहें। उनको निवृत्त नहीं कर सकते। आप मोटर चला तो सकते हैं, लेकिन उसको रोक नहीं सकते। मोटर रुक तो गयी, लेकिन अब चल नहीं सकती। उसको दाँये–बाँये घूमा नहीं सकते। आप मोटरके चालक तो बन गये लेकिन पीछे उसको हटा नहीं सकते। मोड़ आनेपर मोड़ नहीं दे सकते। इसका मतलब है कि आपके मनकी जो मोटर है वह आपके काबूमें नहीं है।

तो, ध्यानका प्रयोजन क्या है ? ध्यानका प्रयोजन यह है कि आपकी शान्तिमें असीम शक्तिका उदय हो जाय। जहाँ शान्ति है वहाँ शक्तिका उदय होता है। और, जहाँ अशान्ति है वहाँ शक्तिका क्षय होता है। ध्यान माने आपके भीतर जो ईश्वरकी शक्ति है, पूर्णताकी शक्ति है, जो आपके हृदयमें ही भभकनेवाली है, जिसका उद्गम स्रोत, वह अखण्डधारा शान्तिकी, पूर्णताकी जो आपके हृदयमें प्रकट होनेवाली है, उसके बन्द दरवाजेको खोल देनेवाला उस अनन्त सूर्यके प्रकाशको, जो कि आपके हृदयमें-से ही फैलनेवाला है उसके बटनको दबा देनेवाला ध्यान है। अनन्तप्रकाश आपके हृदयमें हो जाय उसके लिए दबानेका बटन है ध्यान। अनन्तज्ञानका भण्डार खुल जाय, आपके हृदयमें वह शान्ति आवे जिससे ईश्वरकी शक्तिके साथ आपका सीधा सम्बन्ध हो जाय।

इसके लिए दोषका प्रक्षालन, माने दोषको धोना, गुणोंको प्रकट करना और अपनेमें जो कमी है उसको भर देना जरूरी है। जैसे मेकअप करते है न, तो कोई दाग लगी होती है तो उसको छुड़ा दिया, कहीं चाम कुरकुरा है तो इसको चिकना बना दिया, कहीं गड्ढा है तो उसको मसालेसे भर दिया। जब बाल सफेद होते हैं तो उसको काटकर फेंक देते हैं। कोई देख न ले कि हमारे बाल सफेद हुए हैं। बालको इस तरह सँवारते हैं!

हमारे पास एक सज्जन आये थे। बड़े आदमी हैं, अमेरिका भी ज्यादा आते-जाते रहते हैं। तो, उनके सिरपर आगेके बाल नहीं है, तो अमेरिकामें पीछेसे उखाड़कर आगे लगा दिया। मैंने पूछा ये लगे रहेंगे? तो, बताया कि हाँ ऐसे ही लगे रहेंगे और बढ़ेंगे भी। क्योंकि चामके अंशसे एक जगहसे निकाला और दूसरी जगह उसको गड़ा दिया तो वहाँकी चामके अंशके साथ उसका सम्बन्ध हो गया। जहाँ बाल कम हैं वहाँ जोड़ देना, जहाँ सफेद

बाल हैं उनको काट देना, जहाँ बिखरे हुए बाल हैं उनको सँवार देना। ध्यानका काम है आपके अन्तःकरणका निर्माण। आप अपने तनको जैसे सँवारते हैं वैसे अपने मनको सँवारिये।

जिसका भीतर सँवारा हुआ नहीं है, हम उसकी बोलीसे पहचानते हैं कि यह ध्यानकी बात करता है यह प्रेमकी बात करता है, यह प्यारे-प्यारे नन्ददुलारे श्यामसुन्दरकी बात करता है। परन्तु इसके हृदयमें जो स्नेह होना चाहिए, वाणीमें स्निग्धता नहीं है। इसकी उद्दण्डतामें प्रेम नहीं है, वह समझमें आता है। तो, अपने शरीरको सँवारनेका, बाहरी चीजको सँवारनेका ध्यान करते हैं! कोई सोचेंगे कि आज कैसी साड़ी पहनेंगे ? कैसा बाल सँवारेंगे? कौन-सा आभूषण पहनेंगे ? कैसी बिन्दी लगावेंगे, तो हमारा शरीर बड़ा सुन्दर लगेगा ? लेकिन मनको तो ऐसा कपड़ेके नीचे दबाकर रखा है कि चाहे जितनी मैल छातीपर बैठी हो, दूसरा थोड़े ही देखता है। तो यह मनको निर्मल बनानेकी प्रक्रिया जो है, अन्तःकरणको निर्मल बनानेकी जो प्रक्रिया वह ध्यान है। तो, इसमें-से कभी कुछ निकाला जाता है-'ध्यानं निर्विषयं मनः' (सांख्य दर्शन 6.25) कभी इसमें कुछ भरा जाता है। विजातीय-वृत्तिका तिरस्कार-पूर्वक सजातीय-वृत्तिका प्रवाह करना पड़ता है भला! अनात्माकारवृत्तिको हटाकर आत्माकारवृत्तिका प्रवाह करना पड़ता है।

ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहङ्कृतिं विना

अन्तःकरणमें अहंकार तो होवे नहीं और ब्रह्माकारवृत्तिका प्रवाह होता रहे। अन्तःकरणकी वृत्तियोंके प्रवाहको कभी शान्त करना पड़ता है। दूधको गरम भी करना पड़ता है और उसमें उफान आनेपर पानीका छींटा और परिपक्व हो जानेपर उसको ठण्डा भी करना पड़ता है। तो, आप अपने अन्तःकरणको यदि निर्मल बनाना चाहते हैं तो इसमें-से कभी कुछ निकालना पड़ेगा, दोषापनयन करना पड़ेगा।

इसमें कभी भगवान्‌का ध्यान, बड़ा सुन्दर मन्द-मन्द मुस्कुराता हुआ, प्रेमभरी चितवनसे देखता हुआ और ठुमुक-ठुमुककर पादविन्यास करता हुआ, पीताम्बर फहराता हुआ, मुकुटकी लटकन, चितवनकी मटकन, पाँवकी थिरकन ऐसा ध्यान करना पड़ेगा। कभी शान्त रखना पड़ेगा। 'ध्यानं निर्विषयं मनः' करना पड़ेगा।

अन्तःकरणके निर्माणकी प्रक्रिया यह है कि, हम उसको बिलकुल अपने अनुरूप बना सकें। अपने अनुरूप बनानेका अर्थ क्या होता है ? कि अन्तःकरण शीशाकी तरह निर्मल स्वच्छ हो जाय और उसमें हम अपने प्रतिबिम्बको ठीक-ठीक देख सकें कि आखिर हम कैसे हैं ? जब शीशा मैला होगा, टूटा हुआ होगा, झूलता हुआ होगा तो उसमें आप अपनेको कैसे देख सकेंगे ? इसलिए, कर्तृत्वका उद्वेग न हो, भोक्तृत्वका उल्लेख न हो, वासना न हो, ऐसे शुद्ध सात्त्विक अन्तःकरणका दर्पण हो, इसके लिए ध्यान है, यह ध्यानका काम है।

●

प्रवचन : 14

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

ध्यानके लिए पवित्रताकी आवश्यकता है। आसनमें थोड़ा फेरफार हो जाय तो कोई हानि नहीं है। क्योंकि पातञ्जल योगदर्शनमें आसनोंका पृथक्-पृथक् वर्णन नहीं है। माने, यह पद्मासन है, यह सिद्धासन है, यह वीरासन है, यह स्वस्तिकासन है, ऐसा मूलमें नहीं है। उन्होंने आसनकी एक परिभाषा की-'स्थिरसुखमासनम्'। सुख बना रहे। यह नहीं कि इधर घुटनेमें दर्द हो रहा है, कमरमें दर्द हो रहा है, सिरमें दर्द हो रहा है। तो दर्दकी ओर ज्यादा ख्याल जायेगा तो ध्यानमें बाधा पड़ेगी। इसलिए कभी पाँव फैलानेकी जरूरत पड़े तो फैला लिया। कभी उठकर टहलनेकी जरूरत पड़े तो पाँच मिनट उठकर टहल भी लिया। परन्तु आसनका इतना आग्रह नहीं करना चाहिए कि मन ही विक्षिप्त हो जाय। मनको शान्त करना आसनका फल है। 'स्थिरसुखमासनम्'-उन्होंने मूलसूत्रमें आसनका स्वरूप इतना ही बताया है। सुखकी स्थिरता आसन है। इसका उपाय है प्रेमकी शिथिलता और अनन्तकी समापत्ति। आगे कुछ करना नहीं है। सङ्कल्प लेकर न बैठें कि आगे कुछ करना है। और परमात्माका चिन्तन करें, स्मरण करें।

अब इसका फल है, तब ठण्ड-गर्मी, सुख-दुःख यह तुमको सतायेंगे नहीं। सुखकी स्थिरता बनी रहेगी। उसमें तीन बात नहीं होनी चाहिए। एक तो, बहुत-सा सामान इकट्ठा करके आसनमें नहीं बैठना चाहिए। ऐसी गद्दी हो, ऐसी रजाई हो, ऐसा कम्बल हो, क्योंकि इससे फिर आलस्य आने लगेगा। और, मददके लिए कोई दूसरे आदमीको नहीं रखना चाहिए। अन्तर्मुख होनेका यह मार्ग है जिसमें बेसामान, बेसाथी और बेश्रम। इसमें परिश्रम नहीं होना

चाहिए। सुषुप्तिमें जो भी आराम मिलता है, वह इन तीन बातोंके कारण मिलता है। सुषुप्ति कालमें कोई साथी नहीं है, कोई सामान नहीं है और कोई परिश्रम नहीं है। जब ये छूट जाते हैं, तब संसारके दुःख भी उसके साथ छूट जाते हैं। दुःख तो सामान लेकर आता है, साथी लेकर आता है, परिश्रम लेकर आता है। सामान, साथी और परिश्रमसे दुःख होता है।

अच्छा, अब योगदर्शनमें समाधि लगानेके जो उपाय वर्णित किये गये हैं उसमें 'निद्रालम्बन'-चित्तका भी वर्णन है। सुषुप्ति-कालमें तुम्हारे चित्तकी कैसी दशा होती है ? बिलकुल शान्त होता है, निर्विषय होता है, निर्देश होता है, निष्काल होता है। उस समय चित्त कालकी वृत्ति, देशकी वृत्ति और वस्तुकी वृत्ति नहीं करता। वृत्ति माने व्यवहार, उस समय चित्त पूरब-पश्चिमका व्यवहार नहीं करता, भूत-भविष्यका व्यवहार नहीं करता, तुम-मैंका व्यवहार नहीं करता निद्राकालमें। तो, ठीक वैसी ही दशा अपने चित्तकी जाग्रत् कालमें हो जाय। इसको जाग्रत्-सुषुप्ति बोलेंगे! जाग्रत् अवस्थामें ही सुषुप्त्याकार चित्तवृत्ति आलम्बन हो, तो आपको बहुत आराम, बहुत शान्ति मिलेगी।

अच्छा, असत्य बोलनेसे वाणीसे अपवित्रता आती है और हिंसा करनेसे क्रियामें अपवित्रता आती है। चोरी करनेसे धनमें अपवित्रता आती है। ब्रह्मचर्यभङ्ग करनेसे मनमें अपवित्रता आती है। और ज्यादा परिश्रम करनेसे समाजमें ही अपवित्रता आ जाती है।

परन्तु, योगदर्शनमें अपने अन्तःकरणको पवित्र करनेके लिए प्रवृत्त होता है। अच्छा, पवित्रताके लिए एक उपाय बताते हैं। आप शान्तिसे आसन पर आसनसे बैठ जाइये। अब पवित्रताकी भावनाके लिए एक युक्ति आपको सुनाता हूँ। आपके गुरु हैं, इष्टदेवता हैं या तो नहीं है, क्योंकि जो लोग सङ्ग्रही होते हैं वे 'नहीं'

वालोंका भी संग्रह करते हैं, नहीं तो वे लोग बेचारे निराधार हो जायेंगे। और प्रचारगोष्ठीके आधार तो निगुरे लोग ही होते हैं, क्योंकि वे ही बादमें चेले बनते हैं जो प्रचारके काम आते हैं।

अब हमलोग विचारगोष्ठी, चिन्तनगोष्ठी करते हैं। एक वस्तुका विचार करनेके लिए बात करते हैं, प्रचार करनेके लिए नहीं करते हैं। यह तो, जबतक स्वयं अधिकारीके मनमें प्यास नहीं होगी, तबतक उसपर चाहे जितना बरसे वह सब फिसलकर गिर जायेगा। बह जायेगा, बेकार हो जायेगा जिसके मनमें प्यास नहीं होगी। तो, जब आप शान्तिसे बैठ जायँ, तो अपने सिरमें ज्ञानके दाता गुरुदेव बैठे हैं। और प्रसन्न मुद्रामें हैं। गुरुदेव सहस्रदल खिले हुए कमल पर बैठे हुए हैं, उनके शरीरसे, ज्योति निकल रही है। पहले गुरुका ही ध्यान होता है। और उनके चरणनखसे ऐसी रोशनी निकल रही है और ऐसी अमृतकी धारा गङ्गा बह रही है कि उससे हमारा रोम-रोम पवित्र हो रहा है। मन-मन पवित्र हो रहा है, कण-कण पवित्र हो रहा है।

जो, ईश्वरको नहीं मानते वे भी गुरुको मानते हैं। आश्चर्य है बौद्ध सम्प्रदायमें, जैन सम्प्रदायमें एक ईश्वरवाद नहीं है। प्रत्येक जीवात्माकी इकाई ही शुद्ध होकर अपने स्वरूपमें बैठती है और अलग-अलग रहती है। तो, वे भी बुद्धका या महावीरका ध्यान मानते हैं। ईश्वरको नहीं मानते परन्तु गुरुको मानते हैं। आश्चर्य देखो। और उसीसे उनका सम्प्रदाय चलता है। एक ईश्वरवादी नहीं हैं और सच पूछो तो अनेक ईश्वरवादी भी नहीं हैं फिर भी गुरुको मानते हैं।

अब आप यह देखो कि गुरुकी मुस्कानसे, चितवनसे, चरणनखसे ऐसी अमृतकी धारा और ऐसी रश्मि निकल रही है, ऐसी किरणें निकल रही हैं, जो तुम्हारे शरीरके भीतरके एक-एक अंशको ज्योतिर्मय और पवित्र बना देती हैं। अब यदि हम एक मिनट रुक जायँ तो, आप प्रेक्टिकल ध्यान कर सकते हैं।

अब कदाचित् गुरुमें आपकी आस्था नहीं है। वैसे गुरु कभी मरता नहीं है। और आप अगर अन्धविश्वासकी बात न मानें तो एक दूसरी बात भी आपको बताते हैं। वह कभी भ्रष्ट भी नहीं होता है। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजने हमको बताया था कि जब तुम्हारा कोई गुरु हुआ, तुमने गुरु माना, बनाया या गुरुने अनुग्रह करके तुमको शिष्य बनाया, तुम्हारे उपर कृपा की तो उसने एक मूर्ति, एक आकार तुम्हारे भीतर अपना डाल दिया। तुम्हारे हृदयमें उनकी एक साकार मूर्ति रह गयी। गुरुजी रह गये बाहर और उसने अपना एक प्रतिबिम्ब तुम्हारे हृदयके अन्दर डाल दिया। साकारमूर्ति तुम्हारे दिलमें, दिमागमें बैठ गयी। तो, यदि बाहरवाला गुरु मर जाय तो भी भीतरवाला वह जो साकार उसकी मूर्ति है, आकृति है, वह नहीं मरेगी। और यदि बाहरवाला भ्रष्ट हो जाय तब भी भीतरवाला भ्रष्ट नहीं होगा। इसलिए यदि तुम्हें अन्तर्मुख होना है तो भीतरवालेको पकड़ो। प्रसंगवश आपको यह बात कह दी।

मानो, गुरुपर किसीकी आस्था न हो, तो इष्टदेवपर है कि नहीं ? तो, अपने हृदयमें इष्टदेवका चिन्तन करो और उससे जो ज्योति, किरणें फैल रही हैं अपने शरीरमें, वे एक-एक नसमें, एक-एक नाड़ीमें, एक-एक स्नायुमें, रक्तकी एक-एक बूँदमें, हड्डी-मांसके एक-एक कणमें अपने इष्टदेवकी पवित्र ज्योति भर रही हैं ऐसा चिन्तन करें। यह ध्यान नहीं है, यह स्नान है।

अच्छा, अब गुरु और इष्टदेव भी न हो, तब ? धर्म वह होता है जो सबका संग्रह करे। जिसके घेरेमें एक भी व्यक्ति आनेसे छूट जाता है वह धर्म अधूरा है। जिसको यज्ञका अनधिकारी मानते हैं उसको भी भगवत् भजनका अधिकारी मानते हैं। कहीं भी, कोई भी मनुष्य छूट न जाय इसके लिए धर्म है।

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।
(महानारायणोपनिषद्)

सम्पूर्ण लोकके लिए कल्याणकारी होता है धर्म। वह पतितके लिए भी होता है। पतितके साथ प्रायश्चितके रूपमें धर्म जाता है भला पश्चात्तापके रूपमें धर्म जाता है, राम-राम-के रूपमें धर्म जाता है। धर्म कभी किसीके पास जानेसे इन्कार नहीं कर सकता। वह सबका उद्धार करनेके लिए, कल्याण करनेके लिए है। जैसे जो साँपका विष उतारनेका मन्त्र जानता है न, उसके लिए एक बन्धन होता है। चाहे चाण्डालको साँप काट जाय, चाहे पापीको साँप काट जाय, चाहे वेश्याको साँप काट जाय, जब उसके पास खबर आती है कि उसको साँप काट गया है तो उस मन्त्र जानने-वालेको जाना ही चाहिए, उसका विष उतारनेके लिए। इसी प्रकार धर्मका यह काम है कि वह सबके पास उसका मंगल करनेके लिए, कल्याण करनेके लिए जाय। अगर उसमें यह सामर्थ्य नहीं है, अगर पशु-पक्षीके उद्धारका भी यदि सामर्थ्य नहीं है तो वह धर्म अधूरा है।

तो, आओ जो लोग निगुरे हैं और निईष्ट हैं उनके लिए भगवान् सूर्यका तो उदय होता है न, सूर्य तो देखे हुए हैं, आजान देवता बोलते हैं। अब उनको ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि सूर्य मण्डलसे एक अमृतमयी धारा हमारे सिरपर गिर रही है और ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करके सम्पूर्ण शरीरको, मनको अमृतमय बना रही है। यह स्नान है, ध्यान नहीं है।

शैवको चिन्तन करना चाहिए कि हमारा सिर यह जो चामसे, रक्तसे, मांससे, और हड्डियोंसे घिरा हुआ है उसके भीतर एक आकाश है। वह आकाश शिवरूप है। बिलकुल कर्पूर गौर और छल-छल छलक रही है गङ्गा उससे। उस प्रकाशरूप शिवसे छलक रही है गङ्गा। कपालाकाशमें माने खोपड़ीके आकाशमें जो चिदम्बरम्

कर्पूरगौर भगवान् शङ्कर हैं उनसे जो गङ्गाकी धारा बह रही है उसमें स्नान कर रहे हैं।

अब शाक्तको चिन्तन करना चाहिए कि पराशक्ति जगदम्बा मूलाधार चक्रमें सुषुप्त पड़ी है। वहाँसे उनको जाग्रत् किया स्वाधिष्ठानमें, मणिपूरकमें, अनाहतमें, विशुद्धमें, आज्ञामें, सहस्रारमें अमना पर्यन्त ले जाकर नीचेसे शक्ति उठी और सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो रही है और मैं उससे पवित्र हो रहा हूँ। आप अपनेमें पवित्रताका अनुभव करें और अपनेमें जो हीनताका भाव है उसको छोड़ दें।

जब आप ध्यान करना चाहेंगे तो बिना लक्ष्यसे करते हैं कि किसी लक्ष्यसे करते हैं ? और उसमें मुख्य प्रश्न यह है कि आप कहाँ बैठकर करते हैं। चलिये आप वैकुण्ठमें भगवान् नारायणके समीप बैठ जाइये। आप वृन्दावनमें राधा-कृष्णके पास बैठ जाइये। आप अयोध्यामें सीतारामके पास बैठ जाइये। आप सारे आकार-विकार छोड़कर निराकारमें बैठ जाइये। लेकिन आपका लक्ष्य कुछ है कि नहीं है ? यदि ईश्वरकी प्राप्ति या परमार्थका साक्षात्कार या समाधि आपका लक्ष्य नहीं है तब ध्यान करके आप क्या पावेंगे ? लौकिक वस्तुओंको पानेके लिये भी ध्यान होता है। अणिमा, महिमा, लघिमा यह सब सिद्धियाँ ध्यानसे मिलती हैं। पञ्चतन्मात्राके परमाणुओंमें अपनी वृत्ति लगा देनेसे अणिमा सिद्धि प्राप्त होती है। और व्यापक महद्तत्त्वमें अपनी मनोवृत्ति लगा देनेसे महिमा सिद्धि प्राप्त होती है। वायुमें अपने वृत्तिकी धारणा करनेसे लघिमा सिद्धिकी प्राप्ति होती है। तेजोमय परमात्माके स्वरूपमें वृत्ति लगानेसे प्रकाश नामकी सिद्धि प्राप्त होती है।

लौकिक कामनाओंसे भी ध्यानका उपयोग किया जाता है परन्तु लौकिक कामनाओंको परमार्थके मार्गमें विघ्न मानते हैं। जब

भगवान्‌के भजनमें, ध्यानमें आप स्थित हों, तब एक कदम दूर या एक मिनट बादमें आनेवाली चीज या एक मिनट पीछे छूट गयी हुई चीज या परमात्माके अलावा दूसरी चीजको चाहना वृत्तिकी अपवित्रता है। अब आप ध्यान दें कि एक मिनट पीछे जो छूट गयी, एक मिनटके बादमें जो आनेवाली है, और आपसे जो एक इंच दूर है और आपके आत्मा-परमात्मासे अलग है उस वस्तुको जब आप चाहेंगे तो ध्यानकी वृत्ति सिमटेगी नहीं फैल जायेगी। एक मिनट पीछे चली गयी, एक मिनट आगे चली गयी, एक मिनट सामने चली गयी, एक दूसरी वस्तुमें चली गयी, तब इसमें वृत्तिका सिमटाव नहीं, फैलाव हो जायेगा। इसलिए यह सब काम है। अगले क्षणको चाहना भी काम है, बीते हुए क्षणको चाहना भी काम है, दूसरेको चाहना भी काम है। यह सब काम है और यह सब काम रामकी प्राप्तिमें, रामके साक्षात्कारमें विघ्न होकर आता है। यह भी एक वृत्तिकी अपवित्रता है। अन्धकार-मूढ़ता भी दोष है। चञ्चलता भी दोष है। रसास्वाद भी दोष है। लय; विक्षेप, कशाय और रसास्वाद ये चारों दोष हैं।

यदि आप अपनेको देह मानकर बैठेंगे और ध्यान करेंगे तब देहके शत्रुमें, देहके मित्रमें, देहकी ममता बहुतोंसे है। और जब ध्यान करके उठेंगे तब वही शत्रु, वही मित्र, वही राग, वही द्वेष बना रहेगा। क्योंकि आपने 'मैं'को तो देहमें रखा है। इसलिए जब 'मैं' जगेगा तब देहमें ही जगेगा। आप सो जाते हैं तो किसीसे दुश्मनी करके सो जाते हैं, दोस्ती करके सो जाते हैं तो दूसरे दिन जगने पर वह फिर दुश्मन और दोस्तके रूपमें मिलता है। ध्यान अपने 'मैं'के स्थानको भी बदल देता है। आप अन्तरङ्ग हो जाते हैं तो, उठनेपर वह दोस्त, वह दुश्मन, वह राग, वह द्वेष ज्यों-के-त्यों नहीं मिलेंगे। उनकी पकड़ कुछ हल्की-फुल्की मिलेगी, वह ढीली-शिथिल हो जायेगी। क्योंकि आपने बन्धनको तोड़कर अपनेको अपने आपमें स्थित किया है।

अब जैसे सुषुप्तिदशामें, गाढ़ निद्रामें, जिस समय सपने नहीं आते हैं उस अवस्थामें अपने मनकी जो दशा होती है प्रकृतिसे उस दशामें जाग्रत् अवस्थामें अपने मनको स्थिर करना। तुरन्त नहीं हो जायेगा, उसके लिए थोड़ा अभ्यास करना पड़ता है। ऐसा भी नहीं है कि मनको ज्यों-का-त्यों छोड़ दिया जाय। जा तेरी मर्जी जहाँ हो, वहाँ जा-ऐसा करेंगे तो ध्यान नहीं होगा। नाम-रूपको छोड़ देना जरूरी है। दुनियाके नाम-रूपको छोड़ दें और अस्ति-भाति-प्रियके रूपसे परमात्माका चिन्तन करें। परमात्मा सदा है और प्रकाश-स्वरूप, ज्ञानस्वरूप है और परम प्रेमास्पद माने सबसे ज्यादा प्रेम जिससे है वही है। बात बहुत सीधी-सी दिखती है, परन्तु अस्तिका अर्थ यह है कि जो कभी न मरे, कभी बाधित न हो, जिसकी मृत्युका अनुभव न हो सके। तब भला हम कैसे जानें कि इसकी मृत्यु नहीं होगी ? हम आपको बता सकते हैं कि इसकी मृत्यु नहीं होगी, यह आप जान सकते हैं। यह मालूम ही तब पड़ता है जब पहले 'मैं' हूँ। जगत् मालूम पड़ता है 'मैं'के होनेपर, परलोक मालूम पड़ता है, 'मैं'के होनेपर, ईश्वर मालूम पड़ता है, 'मैं'के होनेपर। जो भी यहके रूपमें मालूम पड़ता है वह मैंके होनेपर ही 'यह'के रूपमें मालूम पड़ता है। इसलिए यह की उम्र कम है और 'मैं'की उम्र ज्यादा है। तो, ईश्वरके साथ मिलाना हो, तो पहले यहको मत मिलाइये, पहले 'मैं'को मिलाइये। 'यह'में होता है नाम-रूप और 'मैं' जबतक 'यह'से सम्बन्ध रखता है तबतक उसका भी नाम-रूप होता है। और 'मैं' जब 'यह'से सम्बन्ध छोड़ देता है तब वह अनाम और अरूप हो जाता है। इस सबका अर्थ होता है, जो हजार-हजार, लाख-लाख, करोड़-करोड़, अस्ति-अस्ति मालूम पड़ रहा है इस अस्ति नाम-रूपके समुद्रमें एक सत् रूप जिसकी मृत्युका अनुभव कभी हो ही नहीं सकता। आप क्या यह अनुभव कर सकते है कि 'मैं' मर गया?

यदि 'मैं' मर गया यह अनुभव कर सकते हैं तो यह किसको अनुभव हो रहा है ? जो जिन्दा है उसीको अनुभव हो रहा है। इसलिए 'अस्ति' पदका अर्थ 'मैं' पदका लक्ष्यार्थ है।

अच्छा, सबको जानता कौन हैं ? हमको सेठजी जानते हैं, हमको नेताजी जानते हैं, हमको देवताजी जानते हैं। हाँ जी, सब जानते हैं आपको परन्तु सब जानते हैं यह आप जानते हैं। इसलिए, आपका जानना अकाट्य है। आपका ज्ञानस्वरूप अकाट्य है। मैं जड़ हूँ यह अनुभव यदि आप करेंगे तो यह अनुभव भी चेतन ही होगा। इसलिए चेतन स्वरूप आप ही हैं।

अच्छा, आप सृष्टिमें सबसे अधिक प्रेम किससे करते हैं ? लोग झट नाम बता देंगे कि हम अपने कुत्तेसे प्रेम करते हैं, हम हीरे-मोती-सोनासे प्रेम करते हैं। हम बच्चेसे प्रेम करते हैं। स्त्री-पुरुषसे प्रेम करते हैं। यह तो सब शेष प्रेम है। शेषीप्रेम अपने आपसे होता है। अपने आपासे प्रेम है, इसलिए उससे जिसका सम्बन्ध है, उसके लिए जो उपयोगी है, उसके सम्पर्कमें जो आते हैं, उसके लिए प्रेम मालूम पड़ता है।

यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलम् रज्जौयथाहेर्भ्रमः। (रा.बा.)

इसी परमप्रेमास्पद, परम प्रियतम आत्माकी उपस्थितिसे ही, इसीके लवलेशसे सबमें प्यार मालूम पड़ता है। 'मैं' अपना प्रिय नहीं हूँ यह अनुभव कभी नहीं हो सकता। 'मैं' मर गया यह अनुभव कभी नहीं हो सकता। मैं अज्ञानस्वरूप हूँ यह अनुभव भी कभी नहीं हो सकता। तब देखो, अपने आपको जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिके विस्तारोंसे अलग करो।

'ॐ सच्चिद् एकं ब्रह्म' सत्चिद् परब्रह्म अद्वितीय परमात्मा है। यदि 'वह' अपनेसे अलग है तो 'मैं' कम और 'वह' है। और यदि उससे 'मैं' अलग हूँ तो 'वह' कम हो जायेगा। इसलिए 'वह' और 'मैं'

इसको दो रखकर पूर्णताका स्थापन नहीं हो सकता। पूर्णताका चिन्तन नहीं हो सकता। यदि 'वह' मुझसे अलग है तो जड़ है। जो मुझसे अलग होगा वह जड़ होगा और यदि 'मैं' उससे अलग हूँ तो मैं परिच्छिन्न हूँ। 'मैं' कटा-पीटा हुआ हूँ उससे अलग होकर और 'वह' जड़ मूर्च्छित-मूढ़ हो गया है मुझमें अलग होकर।

परमात्मा अगर मुझसे अलग होगा तो वह दृश्य हो जायेगा। और दृश्य होनेसे जड़ हो जायेगा। और परोक्ष होनेपर कल्पित हो जायेगा। और, यदि मैं परमात्मासे अलग हूँ तो पूर्ण परमात्मासे अलग होनेपर 'मैं' कट-पीट जाऊँगा, टुकड़ा हो जाऊँगा, कचरा हो जाऊँगा। मैं दरिया नहीं रहूँगा। दरियासे यह बूँद, यह फुहिया अलग हो गयी। इसलिए ब्रह्म उसको कहते हैं जो अद्वितीय होता है और अस्ति, भाति, प्रियरूप होता है। और जो प्रत्यक्चैतन्यसे अभिन्न होता है। यह समझदारीकी बात है। पहले अपने लक्ष्यको समझ लें तब ध्यान करें।

अच्छा, जब अपने स्वरूपमें आप स्थित हो जायेंगे तब जोर लगाकर ध्यान करनेकी जरूरत नहीं रहेगी। ये जो पहलेसे ही ध्यानमें अभ्यासका और पौरुषका निषेध कर देते हैं कि पौरुष मत करो, अभ्यास मत करो जो होता है सो होने दो! वे तो आपको आपके लक्ष्यसे ही वञ्चित कर देते हैं।

एक आदमी यात्रा कर रहे थे अपने गिरोहके साथ और जङ्गलमें पहुँच गये कहीं। तब यह हुआ कि लकड़ी ले आओ तो रसोई बनावें। अब आदमी लकड़ी लानेके लिये जानेको तैयार हुआ। उसने कहा कि सरकार! लकड़ीका क्या करेंगे ? तो बताया कि, उसमें आग जलावेंगे। तो, आग जलाकर क्या करेंगे ? कि दाल-चावल पकावेंगे। तब उसके बाद क्या होगा? कि भोजन करेंगे। और उसके बाद क्या करेंगे ? तब कहा कि जंगलका स्थान है आगको

बुझा देंगे। नहीं तो जंगलमें आग फैल जायेगी और सब जल जायेगा। उसने कहा कि सरकार, जब आखिरमें आग बुझाना ही है तो जलानेकी क्या जरूरत है? और, इतनी लकड़ी लाकर खटपट करनेकी क्या जरूरत है? अब-ल्यो! तो, न लकड़ी आवेगी, न आग जलेगी, न रसोई बनेगी, न खायेंगे। जब पहले ही आग जलानेका जो उपाय है उसका परित्याग कर दोगे, जहाँ तुम फँसे हो, जहाँ दुःख भोग रहे हो, जहाँ कराह रहे हो, वहाँसे उठनेका यदि उपाय ही नहीं करोगे और पहले आग ही जली नहीं और बुझ गयी। एकबार ज्ञानकी आग जला दो। और अज्ञानका ईंधन जल जाने दो। उसके बाद आग बुझ जाय तो कोई हर्ज नहीं है।

तो, पहले ही दिन सहज स्थितिमें नहीं बैठ जाना। जो विकारोंकी स्थितिमें बैठे हुए हो वहाँसे अपनेको उठानेकी कोशिश करना। रोग आता है शरीरमें। कभी अप्रवृत्ति हो जाती है, कभी संशय हो जाता है, कभी प्रमाद होता है, कभी आलस्य होता है, कभी वैराग्यकी कमी होती है, कभी झूठे देवता-दानी दिखायी देने लगते हैं।

एक सज्जन भजन कर रहे थे एकान्तमें तो उनको स्वप्न आ गया। अब स्वप्न सिद्ध हो गये और छूट गया भजन! किसीके सामने जैसे ऐसा हुआ कि भूत-प्रेत प्रकट हो गया, डर गये! किसीके सामने कोई देवता आ गया कि मैं तो भगवान् हूँ। तो यह सब भ्रान्ति दर्शन है।

जबतक द्वैतका आत्यन्तिक बाध न हो जाय तबतक अपनेको सिद्ध मत मान बैठना। अलब्ध भूमिकत्वमें ही स्थिति होगी जो भूमिका तुमको प्राप्त नहीं है उसका झूठा अभिमान हो जायेगा। अभिमान कई तरहके होते हैं। अरे! मैं दिनमें तीन बार नहाता हूँ, इसका भी अभिमान होता है। हमारे गुरु बड़े भारी हैं इसका भी अभिमान होता है। कि हम तीर्थमें रहते हैं इसका भी अभिमान होता है। हम इतना दान करते हैं,

इसका भी अभिमान होता है। हमने इतनी विद्या प्राप्त की है, हमारी इतनी बुद्धि है, इसका भी अभिमान होता है।

सिद्धाईका अभिमान करके बैठ जाना यह भी विघ्न है परमात्माकी प्राप्तिमें। तो, सम्पूर्ण परिच्छिन्नताओंके अभिमानसे बचना। परन्तु जबतक परिच्छिन्नताएँ रहेंगी तबतक अपने आपको जोड़ लेंगे। इसलिए इनकी सत्ताका नितान्त जो अभाव है उस अभावके अधिष्ठानके रूपमें, प्रकाशकके रूपमें, स्वयंप्रकाशके रूपमें, देशकालके विकल्पसे रहित यह पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण योगदर्शनमें विकल्पवृत्ति मानी गयी है हो! क्योंकि पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण कहीं होते नहीं हैं। यह हमारा हाथ कहाँ है ? पूर्वमें है कि पश्चिममें है, उत्तर है कि दक्षिण है, उपर है कि नीचे है बताओ कोई कि कहाँ है ? किस दिशामें है ? यह शब्द ज्ञानानुपाधि वस्तुशून्य है। शब्दसे वस्तु मालूम पड़ती है माने शब्द ज्ञानानुपाधि है, परन्तु वस्तुशून्य है। अच्छा, भूत-भविष्य कबसे शुरु होता है ? किस सेकेण्डसे भूत और भविष्य शुरु होता है ? और सेकेण्ड, भूत-भविष्यके बीचमें वर्तमान कहा है, बताओ ? कोई लकीर खींच दो कि इसका नाम वर्तमान है! यह योगदर्शनकी दृष्टिसे विकल्प है। यह शब्द ज्ञानानुपाधि वस्तु शून्य है, तो जो तुम लम्बाई-चौड़ाईका और भूत-भविष्यका ध्यान करते हो वह विकल्पका ध्यान है। विकल्पाकारवृत्ति है।

अच्छा, कहो भाई कि हम अन्दर-बाहरका ध्यान करते हैं, वह भी विकल्प है। और, कोई भी ऐसी वस्तुका नाम लेकर बता दो कि जो बिना देशके, बिना कालके, बिना अन्दरके और बिना बाहरके भास रही हो! यह तो मूले कुठाराघातम् हुआ न। बिना लम्बाई-चौड़ाई लिये, बिना वक्त लिये और बिना बाह्य-अन्तरका भेद किये कोई वस्तु भास सकती है क्या? तो असलमें वस्तु जो है वह अपने

अत्यन्ताभावके अधिष्ठानमें ही भास रही है। देश, काल और वस्तु सहित, हम वस्तुके अभावका प्रतिपादन नहीं करते हैं परन्तु अधिष्ठानज्ञानसे वस्तुके बाधका प्रतिपादन करते हैं।

एकदिन आपको सुनाया था कि लयकी प्रक्रिया दो नम्बरकी प्रक्रिया है और बाधकी प्रक्रिया एक नम्बरकी प्रक्रिया है। तो, अपने प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्मस्वरूपमें बैठकर, मुझमें माया नहीं है, प्रकृति नहीं है, गुण नहीं है, महद्तत्त्व नहीं है, अहङ्कार नहीं है, पञ्चतन्मात्रा नहीं है, पञ्चमहाभूत नहीं है, पञ्चमहाभूतोंका विलास नहीं है, मैं अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा हूँ यह निश्चय करके परब्रह्म परमात्माके अतिरिक्त कुछ नहीं है। तब ? अष्टावक्रगीताका एक दो श्लोक झाड़ दें, वह तो बम गोला ही है।

त्यजैव ध्यानं सर्वत्र मा किञ्चिद्धृदि धारय।
आत्मा त्वम्मुक्त एवासि किं विमृश्य करिष्यसि।।

(अष्टावक्रगीता 15.20)

ध्यानका अर्थ होता है एक जगहसे मन हटाया और दूसरेमें लगाया। दूसरेसे मन हटाया और एकमें लगाया। अब तो दूसरा रहा ही नहीं। स्वरूपका ज्ञान होनेसे जब दूसरा रहा नहीं तो किससे हटावें और किसमें सटावें ? ध्यान छूट गया। कुछ भी नहीं है। जो कुछ है भास रहा है, भान मात्र है। व्यवहारका लोप नहीं हुआ। कुछ भी हृदयमें रखने योग्य नहीं है। नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त अपनी आत्माका स्वरूप है। अब विचार करनेकी भी जरूरत नहीं रहती। 'ज्ञानं च मयि संन्यसेत्' (11.19.1) उस वृत्तिज्ञानका भी संन्यास कर दो जिसने अविद्याको दूर किया था। अब?

समाधिमथ कर्माणि मा करोतु करोतु वा।
हृदयेनास्तसर्वास्थो मुक्त एवोत्तमाशयः।।

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके पास नाटेसे एक महात्मा रहते

थे। गणेशजीके नामसे हम सब बुलाते थे। वे जब अष्टावक्रगीताका श्लोक बोलते थे तो कहते बमगोला फेंका है। उन दिनों बमगोला ही सबसे बड़ा था।

अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि।
अयमेव हि ते बन्धो द्रष्टारं पश्यसीतरम्।।

तुमसे भी परे तुमको देखनेवाला कोई है यह जो सोचते हो यही तुम्हारा बन्धन है। यह जो तुम अपने स्वरूपमें स्थित होनेके लिये समाधि लगा रहे हो, अरे! जब रसोई पक गयी, भोजन कर लिया, तृप्त हो गये तब आग जलानेकी क्या जरूरत है? बोले–अभी आग जलानेका मोह नहीं छूटता है यदि बन्धन है।

ईश्वर कृपासे मैं पहले सुना चुका हूँ कि ध्यान दवा है। और रोगकी निवृत्तिके लिए इसका सेवन किया जाता है। तो, रोग और रोगके कारणको समझकर इसके लिए ध्यानकी चिकित्सा करनी चाहिए। और, ध्यानके द्वारा चिकित्सा हो जानेपर जब उसका लाभ हो, यही वेदान्त–दर्शनमें और दूसरे दर्शनोंमें अन्तर है कि असलियतका अनुभव हो जाने पर, साक्षात्कार हो जाने पर कार्य नहीं रहता। कर्म नहीं रहता यह नहीं। आप देखो गीतामें–

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।। (3.17)

उसके लिए यह करना आवश्यक है, अवश्य कर्तव्य इसके लिये कुछ नहीं होता है। 'कार्यं कर्म समाचर' दोनोंका एक साथ प्रयोग है। कर्म दो तरहके होते हैं। एक कार्य और एक अकार्य। जिज्ञासुके लिए कार्य कर्म होता है और जीवन्मुक्त महापुरुषके लिए कर्म तो होता है, परन्तु कार्य नहीं होता है। वह किसी कर्मको करनेके लिए आबद्ध नहीं है कि यह सन्ध्या–वन्दन नहीं करेगा, अग्निहोत्री नहीं करेगा, गायत्री जप नहीं करेगा तो उसके लिए कार्यका कोई बोझ नहीं है।

शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्रके संवादमें यही है, जब श्राद्धके स्थानमें शङ्कराचार्य स्वामी पहुँच गये तो मण्डन मिश्रने डाँटा। 'कन्थां वहसि दुर्बुद्धे'। इतनी बड़ी गठरी अपने कन्धेपर लाद रखा है! '**शिखायज्ञोपविताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति।**' यदि चोटी रहती सिरपर और जनेऊ रहता कन्धेपर तो क्या भार हो जाता? शङ्कराचार्यने कहा कि यदि हम श्रौत रीतिसे शिखायज्ञोपवीतका परित्याग न करते तो सन्ध्या-गायत्री अनिवार्य होती। कन्थरी तो मैं रखता हूँ इसके साथ कर्तव्यका बोझ नहीं है। इसके साथ सन्ध्या-वन्दन और अग्निहोत्र नहीं है। इसके साथ यज्ञशाला नहीं है। 'इन्द्राय स्वाहा' नहीं है।

यदि शिखा-यज्ञोपवीत ग्रहण करूँगा तो वेदमें निर्दिष्ट सारा बोझ मेरे ऊपर आ जायेगा।

शिखायज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति।

कहनेका तात्पर्य यह है कि जबतक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होगा, तत्त्वका दर्शन नहीं होगा, परमार्थरूपसे 'स्व'की अवस्थिति नहीं होगी, तबतक सारे कार्य, सारे कर्त्तव्य तुम्हारे सिरपर बोझके रूपमें लदे रहेंगे। और स्वरूपका साक्षात्कार करनेपर समाधिकी कर्त्तव्यता भी नहीं है, उपासनाकी भी कर्त्तव्यता नहीं है, ध्यान और धर्मकी कर्त्तव्यता भी नहीं है। कर्त्तव्यतासे मुक्त है। परन्तु उसके द्वारा होगा क्या ? अपनेको पवित्र करनेके लिए ज्ञान उदय होनेके पूर्व जो उसने पवित्र आचरण किया है, पवित्र ध्यान किया है, पवित्र साधना की है, पवित्र धर्मानुष्ठान किया है वह बाधितानुवृत्तिसे उसके जीवनमें प्रवाहित होते रहते हैं।

●

प्रवचन : 15

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

साधनाके अभ्यासका एक फल यह भी है कि हमारे जीवनमें शक्तिका जागरण हो जाय और हम बुराइयोंकी ओर नीचे न दबें। क्योंकि साधना करते भी रहें और बुराइयोंके नीचे दबे भी रहें तो वह साधना बाँझ–वन्ध्या कहलावेगी। मतलब फलकी प्राप्ति नहीं होगी। जब मन एक जगह किचड़में फँसा हो, लगा हो तब उसको सीधे–सीधे वहाँसे हटाना बड़ा कठिन पड़ता है।

एक माँ–बाप हमारे पास आये, बोले–महाराज! हमारी लड़कीका तो किसीसे प्रेम हो गया है और वह उसीसे ब्याह करना चाहती है। आप समझा दो उसको! मैंने कहा–भाई, जिससे वह प्रेम करती है उसको सीधे–सीधे छुड़ाना सम्भव नहीं है। जिसको वह प्रेम करती है तुम उससे कोई बढ़िया लड़का जो उससे ज्यादा बढ़िया हो, ज्यादा स्वस्थ हो, ज्यादा योग्य हो, वह लाकर हमको दिखाओ तब हम उससे कहें कि भाई, वह नहीं यह। और, जबतक दूसरा तुम्हारे पास है ही नहीं तबतक उसको निराधार, विध्वंसात्मक साधनामें क्यों डालते हो ? तो किसीकी वृत्ति विध्वन्सात्मक होती है और किसीकी रचनात्मक होती है। बौद्धोंमें सैकड़ों युक्ति देकर संसारको, जगत्‌को शून्य सिद्ध करते हैं। परन्तु कितनी भी अकल लगाकर शून्य समझो जगत्‌को, प्रपञ्चको, वह शून्य नहीं होगा। क्योंकि यदि एक सत्यका दर्शन होता और दूसरेको शून्यरूपसे देखते तो चल जाता। वह तो अधिष्ठानका ज्ञान हुए बिना, स्वयंप्रकाशका ज्ञान हुए बिना केवल प्रपञ्चको शून्य–शून्य कहते हैं कहनेवाला बच जाता है।

जो लोग सिर्फ नकारात्मक साधना करते हैं, जिनकी

साधनामें रचनात्मक पहलू नहीं है उनकी साधना शक्तिका जागरण नहीं करती। बुराइयोंको दबानेका, संघर्ष करनेका सामर्थ्य उनके अन्दर प्रगट नहीं होता और जैसी धारा बही उसमें वह तो बह गये।

तब यह साधानाका दो पहलू होना चाहिए। एक तो जहाँसे हम मनको हटाना चाहते हैं वह और जहाँ लगाना चाहते है माने जिसका सहारा लेकर हटना चाहते हैं वह। राममें मन लगाओ, संसारमें-से मन हट जायेगा। जैसे, यह आपका शरीर है इसीमें मन लगाओ।

एक महात्मा कहते थे कि इसमें तीन ॐकार बने हैं। ॐको बौद्ध भी मानते है, जैन भी मानते है। 'ॐ नमो अरिहन्ताणं'में भी ॐ है। और ॐ मणिपद्मे हुम्‌में भी ॐ है। हमारे तो जितने वैदिक सम्प्रदाय हैं सब-के-सब ॐको मानते हैं। दोनों पाँव और मूत्रेन्द्रिय सहित ॐका अकारात्मक अंश है। और नाभि पर्यन्त 'उ'कारात्मक है और नाभि बिन्दु है। अब दोनों हाथ और वक्षःस्थल पर्यन्त दूसरा ॐ है, कण्ठपर्यन्त मुखपर्यन्त 'उ'कार और बिन्दु है। और दोनों भौंहे और नासिका मिलकर तीसरा ॐकार है। शिरोभाग तक 'उ'कारात्मक और बिन्दु है। देखो, यह सहारा है, आलम्बन है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठम् एतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनम् ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।

एकको पकड़कर दूसरेको छोड़ा जाता है, यह आलम्बन है। आपको हजार-हजार वस्तुओंमें लगे हुए मनको, भटकते हुए मनको यदि स्थिर करना हो, शान्त करना हो, सत्यके अधिक निकट लाना हो तो स्थूल आलम्बन लेकर उसको सूक्ष्ममें मिला दीजिये। सूक्ष्म आलम्बन लेकर उसको कारणमें मिला दीजिये। ॐ... ॐ.... ॐ.... और कारण निराकार हो जायेगा। इसमें सब आकार समा जाते हैं। आप स्वयं उसके द्रष्टा-साक्षी हैं। यह 'त्वम्' पदार्थका शोधन है।

और यह सम्पूर्ण प्रपञ्च, इसकी सूक्ष्मावस्था, इसकी कारणावस्था और उसका अधिष्ठान साक्षी, सम्पूर्ण प्रपञ्चका अधिष्ठान साक्षी यह 'तत्' पदार्थका शोधन है। वैशेषिक पदार्थोंका निर्णय करते हैं और नैयायिक ईश्वरको सिद्ध करते हैं। यह 'तत्' पदार्थ है। और सांख्य पदार्थोंका निर्णय करता है और योग 'त्वम्' पदार्थका शोधन करता है। पूर्वमीमांसा अन्तःकरणको शुद्ध करती है। और उत्तरमीमांसा त्वंपदार्थ और तत्पदार्थ दोनोंको एक करती है। छहों दर्शन एक ही काममें लगे हुए हैं। इनका समन्वय है। समुच्चय नहीं है।

एक साथ दो नावमें पाँव नहीं रखा जाता। समुच्चय नहीं है। सब एक साथ नहीं है बारी-बारी है। तब 'तत् ' पदार्थका शोधन, 'त्वम्' पदार्थका शोधन, अन्तःकरणका शोधन और परमार्थरूपसे एकत्वका निश्चय। तो, यदि आपके जीवनमें शक्ति जाग्रत् नहीं होती है, चाहे जपसे जगाओ, पूजासे जगाओ, व्रतसे जगाओ, पाठसे जगाओ, नियमसे जगाओ, ध्यानसे जगाओ, अभ्याससे जगाओ। आपके भीतर शक्ति होनी चाहिए कि जिसको छोड़ना चाहें छोड़ दें और जिसको पकड़ना चाहें उसको पकड़ लें। निरालम्ब होना चाहें तो निरालम्ब हो जायँ। लेकिन यदि शक्तिको जाग्रत् किये बिना आप कुछ चाहेंगे तो, जैसे सोते समय तो आप बिलकुल समाधिस्थ ही हो जाते हैं! दोस्त छूट गया, दुश्मन छूट गया, दुनियादारी छूट गयी, न कोई साथी है, न कोई सामान है, न कोई परिश्रम है, कोई साधन अभ्यास भी नहीं रहता। बोले-मैं सुषुप्तिमें पहुँच गया। लेकिन उठनेके बाद सारी दुनिया ज्यों-की-त्यों आपके पास आ जाती है। ऐसे यदि बिना शक्ति, सामर्थ्यका उदय हुए आप समाधिमें भी चले जायेंगे तो समाधिमें प्रपञ्चका विस्मरण तो हो जायेगा लेकिन, उठनेके बाद वही दुनिया फिर आपके साथ आकर जुड़ जायेगी। वही दोस्त, वही दुश्मन, संसारसे, प्रपञ्चसे छुटकारा नहीं मिलेगा।

समाध्यादीनिकर्माणि जहाति जडधीर्यदि।
मनोरथान् प्रलापांश्च कर्तुमाप्नोत्यतत्क्षणात्।।

हमारे एक साथी हैं, अभी ईश्वरकृपासे जीवित हैं। आजसे पैंतीस वर्ष पहले रोज शीर्षासन करनेका छः घण्टेका उनका अभ्यास था। वे कोई मुद्रा सिद्ध करते हैं। जीभको तालूसे लगाकर छः घण्टेतक शीर्षासन लगाकर रखते थे। जब छः घण्टेके बाद जब निकलते थे, तो उनकी आँखें लाल-लाल होती थीं। और रक्तका जो बोझ है वह सिरपर ज्यादा चढ़ जाता था। गर्मी चढ़ जाती थी। और वे वहाँसे निकलनेके बाद गाली देना शुरू करते थे। जीभ पर कोई नियन्त्रण नहीं। वे शरीरको उल्टा-खड़ा कर देते थे, परन्तु उठनेके बाद जीभ काबूमें नहीं रहती थी। ईश्वरकृपासे वे जिन्दा हैं और अब उतनी गाली-गलौच तो नहीं करते हैं। हम तीस-पैंतीस वर्ष पहलेकी बात आपको सुनाते हैं।

आप भी जब भजनमें बैठें तो संसारके जो राग-द्वेष हैं वे कम हो जायँ इसके लिए अपने मनको किसी अन्तरंग वस्तुमें लगायें और अन्तरंग वस्तुमें लगानेके लिए शक्तिका जो स्रोत्र है वह उर्ध्वमुखी हो रहा है। देखो, कामसे शक्तिका अधोगमन होता है। और, प्रेमसे शक्तिका उर्ध्वगमन होता है। प्रेमसे जो आँसू आते हैं ठण्डे-ठण्डे और बीच आँखसे निकलते हैं। प्रेमके आँसू गरम नहीं होते और वह आँखके किनारेसे नहीं निकलते बीचसे निकलते हैं। शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है। एक शीतलताका अनुभव होता है। तो, जैसे कोई फव्वारा छूट रहा हो, ऐसे फव्वारेकी तरह शक्तिरूपी पानीको फेंके; क्योंकि आपके शरीरके अन्दर शक्तिका एक झरना है उसको उर्ध्वमुखी कीजिये। उर्ध्वमुखी माने मूलाधारसे शक्ति निकलकर, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्रके क्रमसे बिलकुल शक्ति, जैसे बिजली चमकती हो, ऐसे

उर्ध्वमुखी हो। शक्तिकी गति टेढ़ी-मेढ़ी होती है बिजलीकी तरह! शक्तिकी गति वक्र होती है।

बाहरको छोड़नेके लिए भीतरका कोई आलम्बन लीजिये। और आलम्बन लिए बिना ही यदि आप पहलेसे ही राग-द्वेषसे मुक्त हैं, जन्मसे ही मुक्त हैं राग-द्वेषसे, तो भगवान् आपका भला करे। बहुत बढ़िया है, इससे उत्तम स्थिति और क्या होगी? पर यदि राग-द्वेषको मुक्त किये बिना ही आप सोचेंगे कि मन एकाग्र हो जानेसे हमारे सारे दोष निवृत्त हो जायेंगे तो मन एकाग्र होनेसे ही सारे दोष निवृत्त नहीं हो जाते हैं। क्योंकि वह तो चित्तकी भूमि है।

एक बार बहुत लोग कीर्तन करते हुए जोर-जोरसे चिल्लाते हुए ढोल बजाते हुए सैकड़ोंकी मण्डली दक्षिणेश्वरके पास पहुँची कोलकातामें। तो, परमहंस रामकृष्णदासजी बहुत दुःखी हुए। तब किसीने पूछा कि परमहंसजी आप दुःखी क्यों हो रहे हैं ? तो उन्होंने कहा कि ये सब डाकू, चोर, गुण्डे, इकट्ठे होकर कीर्तन कर रहे हैं, भगवान्का नाम ले रहे हैं। तब ? सब अच्छा, लेकिन इससे इन गुण्डोंकी जो शक्ति बढ़ेगी उससे वे हिंसा करेंगे, चोरी करेंगे, डाका डालेंगे। क्योंकि इससे उनकी शक्ति तो बढ़ेगी; लेकिन उसका प्रयोग गलत स्थान पर करेंगे। तो, जो संसारासक्त प्राणी हैं उनकी शक्ति बढ़नेपर वे संसारका ही संग्रह करते हैं। इसलिए ध्यानकी शक्ति बढ़ानेके लिए आपको अपनी सम्पूर्ण अधोमुखी गतियोंको उर्ध्वमुखी करना पड़ेगा।

अब आलम्बनकी बात सुनाते हैं। निराकार आलम्बनको पकड़ना वैराग्यवानके लिए ही सम्भव होता है। साकार आलम्बनको पकड़ना विषयी पुरुषके लिए भी सम्भव होता है। संसारी पुरुष भी चाहे तो साकार आलम्बनको पकड़कर संसारसे मुक्त हो सकता है। बौद्धलोगमें भी मतभेद है। क्षणिक विज्ञान

साकार है कि निराकार है? तो, वे क्षणिक विज्ञानको साकार मानते हैं। और, अपने यहाँ विज्ञानको क्षणिक नहीं मानते नित्य मानते हैं। और, नित्य मानकर वैष्णवलोग इसको नित्य साकार भी मानते हैं। उपासक लोग इसको नित्य साकार मानते हैं।

नित्यता दूसरी वस्तु है और सत्यता दूसरी वस्तु है। जो वस्तु अनादि होती है वह नित्य हो यह भी आवश्यक नहीं है और सत्य हो, यह भी आवश्यक नहीं है। अनादित्व प्रयुक्त शब्दका नहीं है। अनादि भी शान्त होता है, बाधित होता है, उसकी निवृत्ति होती है। अब यह बात न करके साकार आलम्बनकी बात करते हैं।

साकारका आलम्बन लेकर आप प्रपञ्चासक्तिको छोड़िये, निराकारका आलम्बन लेकर प्रपञ्चासक्तिको छोड़िये, निरालम्ब होकर प्रपञ्चासक्तिको छोड़िये। परन्तु अपने मनको जो अनन्तसत्य है परमार्थ स्वरूप परमात्माके चिन्तनमें लगाइये।

श्रीउड़ियाबाबाजीके यहाँ यह चर्चा चली कि एक साधारण साधकको ब्रह्मसंस्कारसे अपने अन्तःकरणको संस्कृत करनेके लिए क्या करना चाहिए ? प्रपञ्च संस्कारसे संस्कृत अन्तःकरणमें ब्रह्म-संस्कार भर दिया जाय तो वह ब्रह्म संस्कारसे संस्कृत हो जाय। प्रपञ्चका संस्कार निवृत्त हो जायेगा। अब रहा ब्रह्म संस्कार तो ब्रह्मानुभूतिसे प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वकी अनुभूतिसे ब्रह्म संस्कार भी बाधित हो जायेगा। लेकिन पहले संसारके संस्कारको बाधित करनेके लिए ब्रह्मसंस्कार जाग्रत् करना चाहिए। तो, ब्रह्माकारवृत्ति-जनित संस्कारके सहायतासे तत्त्वज्ञानकी जो अग्नि है वह प्रदीप्त होती है, उद्दीप्त होती है।

अब आओ, ब्रह्मज्ञानका संस्कार अन्तःकरणमें कैसे पड़े, इसके लिए थोड़ेसे अभ्यास जो शास्त्रोंमें बताये हैं उनकी चर्चा सुनाते हैं। सबसे आसान-

तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम्।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः।।

(पञ्चदशी 7.106)

इस ब्रह्माभ्यासको जो विद्वान् हैं, समझदार हैं वे समझते हैं। मूर्खलोग नहीं समझते हैं। क्योंकि प्रपञ्च संस्कार मिटाकर ब्रह्मसंस्कारको जाग्रत् करनेके लिए ब्रह्माकाराकारवृत्ति करनेके लिए चिन्तनकी एक धारा बहे और, ब्रह्मचिन्तनकी धारा बहे। टुकड़े-टुकड़े-टुकड़ेका चिन्तन न करें। हम नदीको देखें और लहरकी ओरसे नजर हट जाय। हम जलको देखें और जो फूहारें उठ रही हैं उनपरसे दृष्टि हट जाय। 'तत् तच्चिन्तनम्' ब्रह्मका चिन्तन हो। 'ब्रह्म' माने जितने टुकड़े-टुकड़े पदार्थ संसारमें दिखायी देते हैं, कोई लाल, कोई पीला, कोई हरा, तरह-तरहके टुकड़े, किस्म-किस्मके टुकड़े दिखायी देते हैं इनके अत्यन्ताभावसे उपलक्षित इनका न होना जिसका इशारा है, उस ब्रह्मतत्त्वका बारम्बार चिन्तन! चिन्तनकी धारा न बह सके तो, 'तत् कथनम्' कहे। बोल-बोलकर सुनाओ। वाणीसे भी साधना होती है। अच्छा, कोई श्रोता न मिले और लोग कहें कि ऐ! बड़े उपदेशक बने हो, आये हो प्रचार करने! वैसे बोलनेका शौक तो सभीको होता है। बड़ी जोरकी वासना है बोलनेकी! वह मुँह बन्द ही नहीं रहने देती। जीभको हिलाये बिना मानती ही नहीं।

पंडित सोई जो गाल बजावा। (रामचरितमानस)

जो जीभकी ललरीसे गाल बजाता है उसको पण्डित कहते हैं। जैसे मुँह है घण्टा और इसमें जीभ है ललरी तो मुँहके घण्टेमें जीभकी ललरी टना-टन, टना-टन बजती है 'पंडित सोई जो गाल बजावा।' तो, सामनेवालेने कहा कि-तुम बड़ा उपदेश करने चले हो, जाओ...जाओ अपने चेलेको उपदेश करो। तो, सबको उपदेश

ही नहीं करना। 'अन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ' कुछ सुनाओ और कुछ सुनो। यह नहीं कि तुम ही सुनाते जाओ, रेडियोकी तरह फरा-फर, फरा-फर। सामनेवालेकी भी कुछ सुनो। एक-दूसरेको ब्रह्मतत्त्व समझानेमें मिल-जुलकर प्रयास करो।

एतदेव परत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः।।

यह ब्रह्माभ्यास है। ब्रह्मको दुहराना है। दुहरानेसे अन्तःकरणमें संस्कार बनता है। और, यह संस्कार 'तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कार-प्रतिबन्धी'-इस ब्रह्माभ्याससे जो संस्कार उत्पन्न होता है वह प्रपञ्चके संस्कारको रोक देता है। और प्रपञ्चका संस्कार जब रुक जाता है तब स्वरूपमें स्थिति होनेपर इस संस्कारकी भी जरूरत नहीं रहती।

अब देखो, दूसरा ब्रह्माभ्यास सुनाते हैं। आप, भावनाको, बुद्धिको, प्रेमको तो संसारमें देना चाहते हो। कि कर्म किसके लिए करते हैं ? कि रुपयाके लिए। कि प्रेम किससे करते हैं ? कि किसीको पानेके लिये। कि बुद्धि कहाँ लगाते हैं ? कि संसारमें गौरव प्राप्त करनेके लिए। और, परमार्थ! तो, वह तो मिला-मिलाया ही है। ब्रह्म तो मिला-मिलाया ही है। उसके लिए कुछ करनेकी जरूरत थोड़े ही है ? तब कहो कि कुछ छोड़नेकी भी जरूरत है। तो, कहते हैं कि नहीं महाराज! वह तो चलता ही रहता है। छोड़ना भी कर्म ही है। छोड़ना भी साधन ही है।

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके यहाँ चर्चा चलती थी कि-

दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम्।
सम्पन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाणनिर्वृतिः।।

दृश्य है ही नहीं। इस ज्ञानको जाग्रत् करो कि दृश्य दृष्टिसे पृथक् नहीं है और दृष्टि द्रष्टासे पृथक् नहीं है। और जब दृष्टि और दृश्य पृथक् नहीं हैं तब द्रष्टामें द्रष्टापन भी पृथक् नहीं है। 'दृश्यं

नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम्'–यह दृश्यका जो कलंक पंक है, इसका प्रक्षालन कर दो। दृग्मात्र है दृश्य, दृष्टि, द्रष्टाका भेद नहीं है। यदि ऐसा अनुभव हो गया तो निर्वाणका परमानन्द तुम्हारे अन्तःकरणमें जाग्रत् हो गया। यह तो, दूसरेको पकड़नेकी कोशिश करनेसे ही हम पराधीन होते हैं।

अब दूसरा–

सर्गादावेव नोत्पन्नं दृश्यं नास्त्येवसर्वथा।
इदं जगदहं चेति ब्रह्माभ्यासं विर्दुबुधाः।।

ब्रह्माभ्यास क्या है ? असलमें आदि सर्गमें यह नामरूपात्मक प्रपञ्च पैदा ही नहीं हुआ। और इस समय है ही नहीं। और आगे होगा भी नहीं, रहेगा भी नहीं। और, यह जो जगत् दिखायी पड़ रहा है, जगत् माने 'गतिशील'। 'गच्छति इति जगत् ' जो जा रहा है, जा रहा है। शरीरसे बाल निकल रहे हैं, फिर वे लौटके घुसेंगे नहीं भीतर। आँखकी रोशनी निकल रही है। 'इदं जगदहं चेति'–जो हिलता हुआ, जाता हुआ नजर आ रहा है वह जगत् मुझसे भिन्न नहीं है। केवल आत्मासे अभिन्न ब्रह्म ही है। 'ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः' इसका नाम ब्रह्माभ्यास है।

अब लो, एक और सुनाते हैं–

संशान्तसर्वसंकल्पा या शिलावदवस्थितिः।
जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सास्वरूपस्थितिः परा।।

मनमें कोई सङ्कल्प न उठ रहा हो। सङ्कल्प तभी उठता है जब दुनियामें यह चीज सुखकारी है और यह दुःखकारी है यह भेद बनता है। तब सुखकारीकी प्राप्तिके लिए और दुःखकारीकी निवृत्तिके लिए सङ्कल्प उठता है। सम्यक् कल्पना ही दुःखकी जननी है। सब सङ्कल्प शान्त हो जायँ। जैसे एक चट्टान बिना सङ्कल्पके होती है ऐसे हो गये। परन्तु, इसमें नींद नहीं है माने सुषुप्ति नहीं है

और जाग्रत्‌का विक्षेप भी नहीं है। लय-विक्षेपसे रहित संकल्परहित शान्त अवस्था।

संशान्तसर्वसङ्कल्पा या शिलावदवस्थितिः।
जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा।।

आप 'स्व' रूपमें बैठ गये यदि ब्रह्मके अभेदका बोध है तब आपको पूर्णता प्राप्त हो गयी और यदि ब्रह्मके अभेदका ज्ञान नहीं है तो आप अपनी एक इकाईमें असंगतामें, दृग्‌भावमें, द्रष्टाभावमें बैठे रहिये और यदि ब्रह्मसे अभेदका बोध है तो आपके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

हमारे मित्र हैं एक। वे साधन-भजनमें लगे ही रहते हैं। और, चित्र-विचित्र साधन-भजन करते हैं। वे अभी थोड़े दिन पहले एक साधनके अभ्यासमें बैठे थे, बैठे थे छः महीनेके लिए परन्तु एक ही महीनेमें बाहर आ गये। तब लोगोंने पूछा कि यह क्या हुआ ? बोले कि जब भगवान्‌ने हमसे कहा कि साधन करो तो किया और कहा मत करो तो छोड़ा, हमारा साधनमें क्या आग्रह है? उन्होंने कराया तो किया और छुड़ाया तो छोड़ा। हम गुरुजीके गुलाम हैं कामके गुलाम थोड़े हैं ? वह तो उन्होंने कहा करो तब किया और कहा छोड़ दो तो छोड़ दिया। तो आपको यह सुनाते हैं कि सचमुच जो लोग भक्त होते हैं, भावुक होते हैं उनके सामने भगवान् प्रकट होते हैं।

अभी दो-चार दिन पहले एक आर्यसमाजी विद्वान् मेरे पास आये थे। बड़े अच्छे विद्वान् हैं, मैं तो उनको पहचानता था बचपनसे, परन्तु वे मुझे नहीं पहचानते थे। जब क्रान्तिकारी आन्दोलन चलता था उसमें वे बड़े जोरसे लगे थे स्वामी प्रेमपुरीजीके साथ रहते थे। वे हैं तो आर्यसमाजी परन्तु जब नारायण स्वामीकी चर्चा आयी कि उनको भगवान्‌के दर्शन हुए थे तब उन्होंने स्वयं कई ऐसी कथाएँ

सुनायीं जिनमें लोगोंको भगवान्का साक्षात् -प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। इतनी बड़ी दुनिया दिख रही है बिना हुए तब उसमें भगवान् भी आ जायँ दर्शन देनेके लिए तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

तो, शङ्कर भगवान्ने श्रीउड़ियाबाबाजीको दर्शन दिया और दो श्लोक सुनाये, पहला श्लोक–

जडतां वर्जयित्वैतां शिलाया हृदयं च यत्।
अमनस्कं महाबाहो तन्मयो भव सर्वदा।।

यह पहला श्लोक कि जड़ताका परित्याग करो और चट्टानके (शिलाके) हृदयके समान मनोरहित, संकल्परहित बैठ जाओ। बस, ऐसी अवस्थामें बैठ जाओ जहाँ जड़ता नहीं है, और संकल्प नहीं है। जड़ता नहीं है इसलिए चिन्मय है और संकल्प नहीं है इसलिए शान्ति है। शान्त चिन्मयमें बैठ जाओ। बस, शान्त चिन्मात्र...। बाबा एक श्लोक बोलते थे कि मैं चिन्मात्र हूँ, तुम चिन्मात्र हो, वह चिन्मात्र है। यह सम्पूर्ण जगत् चिन्मात्र है। चिन्मात्र माने केवल चेतन 'चिदोवैति चिन्मात्रम् ' सब चिन्मात्र है। सब नहीं है केवल चिन्मात्र है। मैं चिन्मात्र, तुम चिन्मात्र, यह चिन्मात्र, वह चिन्मात्र। दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है। 'तन्मयो भव सर्वदा'–इसका नाम ब्रह्म नहीं है, ब्रह्माभ्यास है। ब्रह्माभ्यास करनेसे अन्तःकरणका जो कूड़ा–कचरा है वह इस शान्तिमें, इस चिन्मयतामें भस्म हो जाता है। और, अपना जो अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप है उसके अनुभवकी योग्यता आ जाती है। यह मैं वेदान्तियोंसे सम्भाल कर बोल रहा हूँ। इससे अनुभवकी योग्यता आजाती है। दूसरा श्लोक–

नेति नेतीति वाक्येन शेषितं यत्परं पदम्।
निराकर्तुमशक्यत्वात्तदस्मीति सुखी भव।।

आज देखो, आपको श्लोक–ही–श्लोक सुना रहे हैं। कई

बहुत दिनोंसे छूट गये थे! यह जब श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके सामने सत्संग होता था तब जुबान पर ये श्लोक तैरते रहते थे। अब इधर पच्चीस वर्षसे छूट गया है। मैंने कहा-चलो! आज दौरोहनी हो जायेगी! 'नेति नेतीति वाक्येन यत्परं पदम्'- इति न, इति न, यह नहीं-यह नहीं। इति पदका अर्थ है, ब्रह्मातिरिक्त सब। वेद, शास्त्र, पुराण, समाधि, परोक्ष, प्रत्यक्ष, अपरोक्ष सब इति-'इति' माने 'यह'। और 'न' माने 'नहीं'। न इति-न इति, नेति-नेति, सबका निषेध कर देने पर जो परमपद शेष रह जाता है। 'शेषितं यत्परं पदम्', 'निराकर्तुमशक्यत्वात्'-बोले-उसको भी एकबार घरसे बाहर निकालनेकी कोशिश करो। अरे, भाई तुम अपनेको घरमें-से बाहर निकालनेकी कोशिश कैसे करोगे ? उसको कोई 'ना' बोल ही नहीं सकता। 'नेति'के द्वारा वक्ताका, साक्षीका, अधिष्ठानका, चेतनका, ब्रह्मका, अमृतका निषेध नहीं होता है। इसका निराकरण करना किसीके लिए सम्भव नहीं है। क्योंकि जो निराकरण करेगा उसीकी आत्मा है। इसलिए इसका निराकरण नहीं हो सकता। यह मेरा स्वरूप है, परब्रह्म परमात्मा-ऐसा जानकर सुखी हो जाओ। ये दो श्लोक श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजको शङ्करजीने सुनाये थे, उपदेश दिया था। बाबा साक्षात् शिव ही थे।

●

प्रवचन : 16

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

हम जो कुछ देखते हैं अपने मनको ही देखते हैं। यह मनुष्य है, यह स्त्री है, यह पुरुष है यह बाहर रहकर नहीं दिखता है। जब बाहरकी वस्तु आँखके द्वारा अथवा दूसरी इन्द्रियोंके द्वारा अपना प्रतिबिम्ब हमारे हृदयमें भेज देती हैं और मन तदाकार हो जाता है। तब हम मनको ही देखते हैं। वेदान्तियोंको भी यही मान्य है। हृदयके केमरेमें पहुँची हुई जो वस्तु है वही दिखती है। दूरबीनसे, खुर्दबीनसे, रोशनी करके कैसे भी इन्द्रियोंके द्वारा हम जब वस्तुको अपने दिलमें पहुँचा लेते हैं तब वह दिखती है। हमको दुनियामें जो कुछ दिखता है वह दुनिया नहीं दिखती है तदाकार हुआ दिल ही दिखता है, तदाकार हुआ मन ही दिखता है, तदाकार हुई वृत्ति ही दिखती है। यह जो दुनियामें दुःख होता है, शोक होता है, भय होता है, मोह होता है इसमें दुनियाका दोष नहीं है। हमारे मनकी तदाकारताका दोष है। यदि हमने अपने मनमें वहाँसे हटा लेनेका अभ्यास डाल दिया होता, यदि मनको किसी एक आकारमें रखनेका अभ्यास डाल दिया होता, या मनको निराकार रखनेका अभ्यास डाल दिया होता तो हम जो चाहते वही देखते। न चाहते न देखते। यह जो दिनभरमें सत्रह बार दुःख, सत्रह बार सुख आता रहता है व्यवहारमें, वह न आता।

भारतसावित्रीका कहना है–

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्।।

जैसे वेदमें गायत्री होती है, चारों वेदमें एक ही गायत्री है।

वैसे महाभारतमें चार श्लोक हैं उन्हें 'भारतसावित्री कहते हैं। वह महाभारतकी गायत्री है। उनमें-से एक गायत्री यह है कि जीवनमें रोज जो हजार बार शोक आता है और हजार बार जो भय आता है यह केवल मूढता है। जिसका मन संसारके शत्रु-मित्रमें है, राग-द्वेषमें है, सुख-दुःखमें है और उसमें अटक गया है, भटक गया है और उसने वहाँसे अपने मनको हटानेका सामर्थ्य नहीं बनाया है। किसी सुन्दरमें सटानेका सामर्थ्य नहीं बनाया। मनको खाली रखनेका सामर्थ्य नहीं बनाया। उसीको हजारों बार सुख और हजारों बार दुःख प्राप्त होते है। हजारों बार शोक और हजारों बार भय प्राप्त होता है।

जिसने अभ्यास करके अपने मनको हटानेकी आदत डाल ली बुरेसे और अच्छेसे सटानेकी आदत डाल दी, या बिलकुल खाली रखनेकी आदत डाल ली, वह अपने मनको जिस रूपमें देखना चाहेगा उस रूपमें देख सकता है। वह सुखमें भी दुःख देख सकता है। वह दुःखमें भी सुख देख सकता है। परन्तु दुःख देखना तो किसीको इष्ट ही नहीं है। वह दुःख क्यों देखे ? ईश्वर स्वयं आनन्दमय है। वह अगर दुःख भी बनाने लगे और अपने हाथसे बनावे, तो उसमें उसका आनन्द इतना बढ़ जाता है कि वह दुःख, दुःख नहीं रहता आनन्द हो जाता है। और, यह आत्मा परमप्रिय, परमानन्द स्वरूप है। वह यदि अपने नजरसे कुछ बनावे तो वह हमेशा सुख-ही-सुख बनावे। क्योंकि उसको सुख ही इष्ट है, दुःख तो इष्ट है ही नहीं। अगर, सृष्टि हमारी बनायी हुई हो, तो हम अपने लिए दुःख कभी नहीं बनावेंगे। और, यदि ईश्वरकी बनायी हुई हो तो, ईश्वर ऐसा मैटर है जिसमें दुःखका लेश भी नहीं है। वह अपने आपको सृष्टिके रूपमें प्रकट कर देता है।

तो, यह जो हमारा मन एक जगह अटक जाता है,

भटकने लगता है, कहीं लटकता-लटकता फिरता है, तब उसको दुनियाकी बातें खटकने लगती हैं। हमारे काबूसे बाहर हो जाता है। तो, दुनियाकी सब चीजें छूट रही हैं और यह मन उनको रखना चाहता है। जो बातें आ रही हैं उनको आनेसे रोकना चाहता है। आनेवाली बातोंको रोकनेमें भी संघर्ष, तनावका सामना करना पड़ता है। और मिली हुई वस्तुको रोकनेके लिए भी कि यह हमारे पास बनी रहे उसमें भी तनावका सामना करना पड़ता है।

ध्यान माने मोटी-से-मोटी, स्थूल-से-स्थूल भाषामें मनको ऐसी आदतमें डाल देना है, जिसमें वह हम जैसा चाहें वैसा रहे। हम कहें कि चल! दिलमें बैठ जा! तो वह बैठ जाय। हम कहें कि सब छोड़ दे तो सब छोड़ दे। हम कहें कि इसको पकड़ ले तो वह पकड़ ले। हम कहे कि चुप और मन चुप! जिसने अपने मनको नहीं सधाया उसने घोड़ेको सधा लिया तो क्या हुआ ? नौकरको सधा लिया तो क्या हुआ ? असलमें मनका बेकाबू होकर जहाँ कहीं अटक जाना-यही सबसे बड़ा दुःख है। हमारे बाल काले ही रहें सफेद न हों। हमारे कपड़े पर दाग न लगे। हमारे अन्दर बुढ़ापा न आवे। हमारी जान-पहचानका कोई मरे नहीं। दुनियामें कहीं आग न लगे। अब, दुनिया तो अपने ढंगसे चलती है। तुमने अपने मनको इन-इन बातोंमें फँसा दिया है। तो, ध्यानका अर्थ है कि यह जो फँसाव है मनमें वहाँसे अपने मनको छुड़ा लिया जाय।

आपको शायद मालूम हो और किसीको न मालूम हो। आप लोग वृन्दावनका नाम सुनते हैं। और सुनते हैं कि वहाँ रसिक-ही-रसिक रहते हैं। वहाँ तो ब्रह्मकी चर्चा भी नहीं होती। वैसे हमलोग वहाँ रहते हैं तो ब्रह्मचर्चा ही मुख्यरूपसे करते हैं। वृन्दावनमें वेदान्तकी चर्चा बड़े जोर-शोरसे करते हैं। परन्तु आधा माने, सबेरे

वेदान्तकी चर्चा करते है और शामको रसकी चर्चा, रसिकताकी चर्चा करते हैं। तो, प्रातःकाल कोई-रसिक नाराज भी हो जाय तो शामको वह खुश हो जाता है। तो, हम वहाँकी बात आपको सुनाते हैं। और जिसको जानकारी न हो, उनको जानकारी देनेके लिए सुनाते हैं।

निम्बार्क सम्प्रदायमें जो श्रीराधाकृष्णका ध्यान है उसमें पहले शून्यका ध्यान किया जाता है। मैं बड़े प्रामाणिक रूपसे यह बात कहता हूँ। पहले शून्यका ध्यान फिर महाशून्यका ध्यान। निराकार, निर्गुण परब्रह्म परमात्माका चिन्तन जहाँ प्रपञ्च नामकी, दुनिया नामकी कोई चीज ही नहीं है और, उसके बाद वृन्दावनका चिन्तन। माने प्रपञ्चको हटानेके लिए पहले शून्य चिन्तन, महाशून्य चिन्तन, ब्रह्मचिन्तन, परब्रह्म चिन्तन और उसके बाद वृन्दावनका चिन्तन है। पहले दुनियाको छोड़ दिया। यह निम्बार्कसम्प्रदायकी मान्यता है। उनका जो मूल ग्रन्थ 'महावाणी' है जिसे हरिव्यास-देवजीने श्रीभट्टजीसे प्रेरणा प्राप्त करके लिखी है। जैसे हम वेदको मानते हैं, ऐसे ही निम्बार्क सम्प्रदायके रसिक 'महावाणी'को मानते हैं। उनकी यह बात है कि पहले ब्रह्मचिन्तन होना चाहिए।

श्रीराधावल्लभ सम्प्रदायमें तो ध्यान करनेकी यह रीति ही है कि ब्रह्मभूमि पर श्रीराधाकृष्ण भगवान् विराजमान होते हैं। पहले ब्रह्मध्यान करके वे अपने हृदयकी पवित्रता मानते हैं। और, उसका फल मानते हैं राधाकृष्णकी लीलाका चिन्तन। कभी 'श्रीहितसागर' पढ़ें तो इसमें 'सनत्कुमारसंहिता', जिसमें समूची-की-समूची अष्टयाम पद्धतिका ध्यान करनेके लिए उद्धृत की हुई है। उसमें यह बात आती है।

हमारा कहना यह है कि आप देखते हैं अपने मनको। अपने मनको ही देखकर रोते हैं, अपने मनको ही देखकर हँसते हैं। अपने मनको ही कभी दुश्मन देखते हैं कभी दोस्त देखते हैं। बाहरवाला

आपके हृदयमें नहीं घुसता है। आपका मन ही जब दुष्टाकार होता है तो दुष्ट दीखता है, और जब शिष्टाकार होता है, तब शिष्ट दिखता है। यह जो मन अपनी उच्छृङ्खलतासे दुष्ट-शिष्ट बनता रहता है और आपको मालूम ही नहीं कि कब मूड खराब हो जाय आपका! आपको मालूम ही नहीं है। तो जरा आपका मूड आपके काबूमें रहे इसकी आदत आपके जीवनमें डालना आवश्यक है। इसके बिना आप सुखी नहीं हो सकते। आपके दुःख नहीं मिट सकते।

आओ! आपको योगदर्शन और वृन्दावन एकमें मिलाकर दिखा दें। ज्ञान, योग और भक्ति। ज्ञान चित्तको निरावरण करता है। योग सत्‌में स्थित करता है। और भक्ति आनन्दरसको प्रकट करती है। आनन्दसे वैराग्य होता है। ज्ञानसे अज्ञानका नाश होता है और योगमें, सत्‌में स्थिर होनेसे वृत्तियोंका निरोध हो जाता है। और, वेदान्तका असली सिद्धान्त यह है कि यह सत्, चित्, आनन्द तीनों एक हैं, आत्मा हैं, ब्रह्म हैं। तीनों बिलकुल जुदा-जुदा नहीं है। तो, आप प्रेक्टिकल माने व्यावहारिक ध्यानकी चर्चा करते हैं, इसके लिए ही मैंने यह पृष्ठभूमि, धरातल, यह बैठनेकी भूमि, जगह आपको बतायी कि आप अपने मनको ही देखते हैं, तो आप अपने मनको अच्छाइयोंमें डाल दें।

एक सन्त थे वृन्दावनमें, उनको किसीने कहा कि-सन्तजी चलो कश्मीर चलें। उन्होंने पूछा-वहाँ क्या है ? उसने बताया कि बड़े सुन्दर दृश्य हैं, बर्फ है, हरियाली है, झरने हैं, चश्माशाही है वहाँ। सन्तने कहा-हमको आँख बन्द करनेपर जैसा बर्फिला पहाड़, हिमाच्छादित शिखर, जैसे झरने, जैसा वन, जैसे फूल, जैसे हरिण और जितने सुन्दर दिव्यलोकके देवता हमको दिखते हैं वैसा क्या कश्मीरमें चलनेपर दिखायी पड़ेंगे ? प्रार्थना करनेवालेने कहा कि ना महाराज! वैसे तो नहीं दिखायी पड़ेंगे। तो बोले-कि हम तो यहीं

अच्छे हैं। कश्मीर ले जाकर जो तुम दिखाओगे हम यहीं देख रहे हैं।

आओ! आप बैठे रहो जहाँ-के-तहाँ। यह तो ख्यालमें जबतक शरीर है तबतक तुम शरीर हो। तो, ख्याल शरीरसे हट गया तो तुम शरीर नहीं हो। अगर, शरीर छोड़नेका मन न हो तो वृन्दावनको अपने दिलमें बुला लो। और, इससे अलग होनेका थोड़ी देर मन हो तो आप देखो कि आपका मन वृन्दावनमें है, आप सशरीर वृन्दावनमें हैं कि वृन्दावन आपके मनमें है। यह तो कल्पना हुई। तो यह कल्पना नहीं है। आप जो अपनेको गड्ढेमें डाल रहे हो वहाँसे निकालनेका प्रयत्न है। आपकी कल्पना पैसेके बिना रो रही है। आपकी कल्पना दुश्मनसे रो रही है, दोस्तके बिना रो रही है, मकानके बिना रो रही है। यह आपकी कल्पना रो रही है। आप इसकी जगह यह देखो कि पृथिवीने अपना सौन्दर्य प्रकट कर दिया। वह पर्वत गिरिराज, साक्षात् ईश्वरकी विभूति है। वह वृन्दावनकी ब्रह्ममयी भूमि, वहाँके वृक्ष, वहाँकी लता, वहाँके हरिण, वहाँकी गाय, वहाँके ग्वालबाल....आप एकबार दिव्य पार्थिव विभूतिमें अपने मनको ले चलिये। कैसी मृदु-कोमल भूमि है। कैसी हरी-हरी घास है! कैसे वृक्ष हैं! कैसी लताएँ हैं! कैसे पुष्प हैं! कैसे फल हैं! कैसे हरिण है!

स्मरेद् वृन्दावने रम्ये मोहयन्तमनारतम्।
गोविन्दम् पुण्डरीकाक्षं गोपकन्याः सहस्रशः।
आत्मनो हृदयाम्भोजे प्रेरिताक्षिमधुव्रताः।।

आप एकबार मुम्बईको मुम्बईके स्थानपर रहने दीजिये। और, गुरु-शास्त्रके आदेशानुसार अपनेको भगवान्‌की लीलामें ले चलिये। यमुनाजी बह रही है। सरोवर है। जलने अपनी समग्र विभूति वहाँ प्रकट कर दी है। क्या सुन्दर प्रकाश है! मधुर-मधुर, मीठा-

मीठा प्रकाश है। न शीत है और न गर्मी है। आप अपने मनको वहाँ ले चलिये जहाँ वायुने अपनी शीतलता, अपनी सुगन्ध, अपनी मृदिमा मृदुलता-ही-मृदुलता प्रकट कर दी है। आप वहाँ ले चलिये अपने मनको जहाँ जंगली बाँस खड़े हैं और वायुके लगनेसे बाँसुरी सरीखी ध्वनि करते हैं। वहाँके एक-एक बाँससे बाँसुरीकी ध्वनि आरही है। आकाशने अपना सौन्दर्य प्रकट कर दिया है। योगदर्शनमें यही है।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी।।

यदि आप अपने मनको स्थिर करना चाहते हैं तो यह जो संसारी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी कल्पना आपके मनमे भरी हुई है इसकी जगह पर दिव्य शब्द जहाँ बाँस बोलते है, जहाँ कोयल कूकती है, जहाँ पपीहा पी कहाँ....पी कहाँ...बोलता है, जहाँ हरिण छलांग भरते हैं, जहाँ बछड़े दूध पीते हैं। जहाँ लताएँ मुस्कुरा रही हैं। जहाँ वृक्ष ऊँचा सिर करके खड़े हैं और अपने फलको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित कर रहे हैं। जहाँ दूर्वामयी, हरिन्मणिमयी, पन्नाकी, मरकतकी जहाँ भूमि है, दूबोंके कारण। उस भूमिमें अपने मनको एकबार ले चलिये! यह दिव्यभूमि है, ईश्वरमयी भूमि है। यह संसारकी भूमि नहीं है। ईश्वरने वहाँ अपने आपको सद् रूपमें प्रकट किया है। धरतीके रूपमें प्रकट किया है, जलके रूपमें प्रकट किया है, सौन्दर्यके रूपमें प्रकट किया है। आप शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जितना देखते हैं यह संसारमें, वृन्दावनमें मायाका परदा हट गया है। वहाँ जड़ताका पर्दा फट गया है। वहाँ भगवान्‌ने अपनेको दिव्यलोकके रूपमें प्रकट किया है।

अब वहाँ आप देखें यमुना पुलिन तो है, गौएँ वहाँ पानी पीनेके लिए जा रही हैं। ग्वालबाल भी हैं परन्तु न वृक्षोंमें श्यामसुन्दर दिखते हैं, न लताओंमें दिखते हैं, न जमुनाजीमें दिखते हैं। न गायोंमें

दिखते हैं, न ग्वालबालोंमें दिखते हैं। श्यामसुन्दर नहीं दिखते हैं। आपके मनमें एक उत्सुकता जाग्रत् होती है, कि होंगे तो यहीं कहीं लेकिन दिखते क्यों नहीं? यह प्यास तबतक नहीं जगती है जबतक दुनियाकी ओरसे मन हटता नहीं है। आपके मनमें ईश्वरके लिए प्यास कितनी है ? आपने इसको कभी नापा है ? तौला है ? कितनी प्यास है ईश्वरके लिए ?

कहते हैं हमलोग आध्यात्मिक सत्संग करते हैं। बीस वर्षसे करते हैं, चालीस वर्षसे करते हैं लेकिन उन्नति तो हुई नहीं। अरे! कभी प्यास भी लगी आपके मनमें ईश्वरके लिये ? आपके मित्रके बिछुड़ जानेपर जो व्याकुलता आपके हृदयमें आती है, बच्चे स्कूलसे न लौटनेपर जो व्याकुलता आपके मनमें आती है, पैसा न मिलनेपर जो व्याकुलता आपके हृदयमें आती है, स्त्री, पुत्र, पत्नी, पति न मिलने पर जो व्याकुलता आपके हृदयमें आती है क्या ऐसी व्याकुलता कभी आपके हृदयमें भगवद्प्राप्तिके लिए हुई है ? यह प्यास जगे बिना अगर आप भगवान्‌का ध्यान करेंगे तो भगवद् रसका उदय नहीं होगा। हम चाहे किसी भी कारणसे, कोई ब्रह्म होकर अपनी प्यास मिटा दे, चाहे संसारके भोगमें लगाकर कोई अपनी प्यास मिटा दे। जिसको प्यास नहीं है उसको भगवद्रसका अनुभव नहीं होता है। जिसके हृदयमें प्यास है उसको भगवद्रसका अनुभव होता है। ये चाहते ही नहीं है तब बढ़िया शर्बत ग्लास भरकर दे दे, तो जब प्यास नहीं है तब जूठा छोड़ देंगे, गिरा देंगे या बिना मनके पीयेंगे। असलमें प्यास होनी चाहिए।

यहीं कहूँ श्याम काहू कुंज में फिरत होइहैं।
भुज भरि भेटिबे को हिय उमहत है।।

आपका हृदय कभी ब्रह्मके स्पर्शके लिए उछलता है? कहो कि यह कौन-सा वेदान्त ले आये कि ब्रह्मका स्पर्श! यदि

आपको ब्रह्मसंस्पर्श सुनकर वेदान्तसे कुछ घटी हुई बात मालूम पड़ती है, कुछ कम बात मालूम पड़ती है तो हम जोर देकर कहते हैं कि आपने गीता नहीं पढ़ी।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते (गीता 6.28)

यहाँ आपको श्रीकृष्णकी बाँसुरी सुननेको मिलेगी। उनके वक्षःस्थलका स्पर्श मिलेगा। उनके सौन्दर्यामृतका पान मिलेगा। उनके सौकुमार्यका आस्वादन मिलेगा। उनके अधरामृत, उनके चरणामृतकी उपलब्धि होगी। यहाँ श्रीकृष्णके अंग-अंगसे निकला हुआ सौरभ आपको तृप्त कर देगा। परन्तु आपके हृदयमें प्यास तो हो!

'कहाँ गये श्याम', 'कहाँ गये श्याम' इस वृन्दावनमें, वृक्षोंके वनमें, लताओंके झुरमुटमें, इन खिले हुए पुष्पोंमें, इन हरिणोंमें, इन गायोंमें, इन ग्वालिनोंमें, इस जमुनाजीकी तटपर कहीं वह प्यारा छिपा हुआ है। *यहीं कहूँ श्याम काहू कुंजमें फिरत होइहैं।* 'भुज भरि भेटिबे को हिय उमहत है'-मन होता है कि कहीं मिल जाय तो दोनों हाथोंसे पकड़कर उसको छातीसे लगा लें। तो, जबतक मनमें प्यास जाग्रत् नहीं होती तबतक भगवद् रसका अनुभव नहीं होगा। कुञ्ज है, कुञ्जमें पत्तेकी और पुष्पोंकी शय्या है। उसमें प्रकाश है परन्तु उसमें श्याम नहीं है। यह कुञ्ज क्या है ? आपका हृदय ही कुञ्ज है। यहाँ कोमलता है, यहाँ सुन्दरता है, यहाँ मधुरता है, यहाँ कहींसे धीमी-धीमी बाँसुरीकी आवाज भी आ रही है, कुछ रुम-झुम भी आवाज सुनाई देती है, परन्तु श्यामसुन्दरका दर्शन नहीं होता। उसके लिए आपका हृदय फटता है ? व्याकुलता होती है ? उसको पानेकी आपके मनमें चाह है ? आप दुनियाके रिश्तेदारोंमें, नातेदारोंमें, वस्तुओंमें रच-पच गये हैं। *'सौ-सौ धक्के खाय, तमाशा घुसके देखे'*-रोज-रोज पिटते हैं। कोई-न-कोई रोज आपको पीटता है।

आप तो भले मानुष है, हम जानते हैं लेकिन रोज-न-रोज कोई दुःख पहुँचाता रहता है और दुःख पाते रहते हैं, धक्के खाते रहते हैं और उसी तमाशेमें जाकर शामिल होना चाहते हैं। एकबार जब सच्चा सुख, सच्ची शान्ति, सच्चा आनन्द पानेके लिए हृदय व्याकुल होता है, तब प्यास लगती है हृदयमें। और जब प्यास लगती है, तब सुगन्धका एक झोंका आता है। रसकी एक धारा आती है। एक दिव्य रश्मिपुञ्ज प्रवेश करता है। एक सुखकी हवाका झोंका आता है। और एक मधुर स्वरलहरी सुनाई देती है। अब जिन लोगोंको योगदर्शनका पता नहीं है वे लोग इसको नहीं समझेंगे।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी।

(महर्षि पतञ्जलि)

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं जो विषय तुम्हें प्यारे हैं वही जब दिव्यरूपसे तुम्हारें मनमें आने लगेंगे तब तुम्हारा मन वहाँ स्थिर हो जायेगा। 'विशोका वा ज्योतिष्मति'-उस समय आपका मन बिलकुल शोक रहित हो जायेगा। अपने प्रियसे मिलनेके लिए आप शरीरका मल धोना नहीं चाहते, सुगन्ध लगाना नहीं चाहते, सुन्दर वस्त्र पहनना नहीं चाहते। अपनी त्वचाको मधुर बनाते नहीं। अपने होंठोको चमकाते नहीं। बढ़िया-से-बढ़िया वस्तु वहाँ ले जाकर अपने प्रियतमको अर्पित करनेके लिए आप तैयार नहीं होते हैं। तो, प्यास जगनी चाहिए। यह प्यास जो है उसीकी मूर्ति गोपियाँ है भला!

'स्मरेत् वृन्दावने रम्ये'-प्यासको भी हम मूर्त बनाकर देखते हैं। योगदर्शनके सिद्धान्तको मूर्तिमान् बनाकर देखते हैं। वहाँ प्यास गोपी बनकर आती है। **'गोपगोपीरनारतम्'**-निरन्तर देखो, बीचमें टूटने न पावें। **'गोविन्दं पुण्डरिकाक्षं गोपकन्याः सहस्रशः'**-हजारों गोप कुमारियाँ, हजारों चित्तकी वृत्तियाँ जो

आती हैं वह, जो आती हैं वह श्रीकृष्णको ढूँढ़ती हुई आती हैं। परमप्रेमास्पद, परमानन्द स्वरूप, परब्रह्मकी मूर्ति, परमानन्दकी मूर्ति '**नवीन नीरदश्याम**'–श्यामसुन्दरको ढूँढती हुई, ढूँढती हुई आती है। आप एकबार उस प्यासके साथ एक तो हो जाइये। आपके हृदयमें प्यास न हो तो किसी प्यासी गोपीमें, ग्वालमें, किसी प्यासी हरिणीकी आँखोंमें, किसी दूध पिलानेके लिए व्याकुल गायके दूधमें, आप अपनेको मिला दीजिये। किसी पेड़के फलमें मिला दीजिये जो श्यामसुन्दरके मुखमें जाना चाहता है। किसी लताके पुष्पमें मिला दीजिये जो श्यामसुन्दरके गलेका हार बनना चाहता है। तो, इससे क्या होगा ? कि इससे जहाँ आपका मन फँसा हुआ है, जिसको एक मिनटके लिए भी छोड़ना नहीं चाहता वहाँसे आपके मनको छूटनेमें सहारा मिलेगा। आपका बेकाबू मन आपके काबूमें आने लगेगा।

आत्मनो हृदयाम्भोजे प्रेरिताक्षिमधुव्रताः।
पीडिता कामबाणेन चिरमाश्लेषणोत्सुकाः।।
मुक्तहारलसत्पीनोत्तुङ्गस्तनभरानताः।
स्रस्तधम्मिल्लवसना मदस्खलितभाषणाः।।

प्यासकी मूर्ति, प्यास...प्यास...प्यास... हजार प्यास। यह कौन है ? कि गोपी है। उनके हृदयमें श्रीकृष्णसे मिलनेकी लालसा है। श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए व्याकुलता है। श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए तड़पन है। श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए दर्द है। और, वह यह चाहती है कि हम जाकर श्रीकृष्णके हृदयसे लग जायँ। उनको अपने बालकी सुधि नहीं है, उनको अपने कपड़ेकी सुधि नहीं है। उनको अपने आभूषणकी सुधि नहीं है। 'मैं क्या बोल रही हूँ' इसकी उनको सुधि नहीं है। उनके पाँव सीधे नहीं पड़ते। जब इस तरह हमारी एक-एक वृत्ति गोपीके रूपमें अपनी इन्द्रियोंसे श्रीकृष्णरसका पान करनेके

लिए जब व्याकुल होती है तब कहींसे सुगन्धका एक झोंका आ जाता है। तब बाँसुरीकी स्वरलहरी कानोंको भर देती है। तब पाँवके नूपुर रुनझुन-रुनझुन बज उठते हैं। तब श्रीकृष्णका सौन्दर्यमयरूप, मन्द-मन्द मुस्कान मुखारविन्द पर, प्रेमभरी चितवन, अनुग्रह भरी भौंहे दीखने लगती है।

वैराग्यहीन वेदान्ती हमेशा दुःखी रहता है। यह बात ध्यानमें रखना कि जिन्दगी भर वैराग्यहीन वेदान्तीको दुःखी रहना पड़ता है। क्योंकि उसने पहले वैराग्य सम्पादन नहीं किया, वेदान्ती हो गया। तब रोवेगा और कहेगा कि यह सब तो मिथ्या है। रो लेगा और फिर कहेगा कि यह सब तो मायाका खेल है। यह है कहाँ? 'दृष्टदुःखं न नश्यति'–और वैराग्य संपादन तब होता है, जब पहले एक जगह स्वाद आता है, एक जगह रस आता है तब, *'हरि सों जोरि सबन सों तोड्यो'*–भगवान्‌से मनोवृत्ति जुड़ती है और सबसे टूटती है।

हम दुःखी वेदान्तियोंसे दो बात भी नहीं करना चाहते। अपनेको ब्रह्म भी कहे और अपनेको दुःखी भी माने। ऐसे वेदान्तियोंको हम वेदान्तीप्रुब मानते हैं। अपनेको वेदान्ती तो कहता है परन्तु वेदान्ती नहीं है। एक बार *'हरि सो जोरि सबन सों तोड्यो'*–एकबार भगवान्‌से अपनी मनोवृत्तिको जोड़कर, और सबसे तोड़ लो। फिर पैसेके लिए रोना नहीं आवेगा, रिश्तेदारके लिए रोना नहीं आवेगा, शरीरके लिए रोना नहीं आवेगा। क्योंकि तुम तो अपनेको तत्त्व मानो। माने मिट्टी मानो तो मौतका भय मिट जायेगा। अपनेको पानी मानो तो स्वाद न मिलनेका भय मिट जायेगा। अपनेको ज्योतिर्मय मानो तो नासमझीका भय मिट जायेगा। अपनेको सुकुमार, स्पर्शमय वायु मानो तो कहीं बन्धन नहीं रहेगा। आप अपनेको आकाश मानो कहीं अवकाश नहीं रहेगा। जब इन तत्त्वोंके साथ एकता होनेपर भय मिट जाता है तो, ब्रह्मतत्त्वसे एक होनेपर तुम्हारा

भय और दुःख नहीं मिटा तो तुम अपनेको ब्रह्मज्ञानी भले मानो; लेकिन वह सिर्फ ज्ञानाभिमान ही बढ़ायेगा।

जे ज्ञानमानविमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।।

जब तुम्हारा हृदय गोपियोंकी तरह प्रेमकी पीड़ासे व्यथित होता है तब उसमें वंशीकी ध्वनि आती है, तब उसमें नूपुरकी रुमझुम आती है, तब उसमें सौरभ आता है, तब उसमें सौन्दर्य प्रकट होता है, तब उसमें माधुर्य आता है, तब उसमें सौकुमार्य आता है और आपके सामने भगवान् प्रकट हो जाते हैं। हम नहीं कहते कि आप ध्यान करो। हम जो वर्णन करते है उसको सुनो।

फुल्लेन्दीवरकान्तमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियम्
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुम् गोगोपसंघावृतं
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे।।

'फुल्लेन्दीवरकान्तम्'-अंगकी कान्ति कैसी है ? कितने प्यारे है ? कि जैसे खिला हुआ नीलकमल हो। कई लोग होंगे जो महाराज कृष्णका ध्यान पसन्द नहीं करेंगे, परन्तु नीलकमलका ध्यान पसन्द करेंगे। आपके सामने एक खिला हुआ नीलकमल है। उसका मुखारविन्द है चन्द्रमाके समान। और, सिरपर मोरमुकुट है। बड़ा प्यारा है। ललाटमें गोरोचनका तिलक है। भौंहें टेढ़ी हैं। चितवनमें प्रेम है। सुचिक्कन कपोल हैं। और, मुखारविन्दमें मन्द-मन्द मुस्कान है। दाँतोंकी चमक बाहर निकल रही है। और मुख कुछ थोड़ा-सा टेढ़ा है। ठुड्डी थोड़ी गहरी है। कन्धेपर पीताम्बर है। गलेमें माला है और वक्षःस्थल पर श्रीवत्सका चिह्न है। भृगुपादका चिह्न है। 'श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरम्'-कौस्तुभमणि चमक रही है, झलक रही है। और वस्त्र पीताम्बर है। बड़ी सुन्दर है वह मूर्ति। और गोपियाँ

अपने नेत्रोंके कमलसे उसकी पूजा कर रही हैं। प्यासी-प्यासी गोपियाँ अपने रसमय नेत्र कमलको उन्हें समर्पित कर रही हैं। 'गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुम्' पूजा बाहरके कमलोंसे नहीं हो रही है, नेत्रोंके कमलोंसे पूजा हो रही है। 'जनु तहँ बरिस कमलसित-श्रेनी'-जब गोपी देखती है तो बारम्बार-बारम्बार नेत्रकमल जाकरके चढ़ते हैं उसके ऊपर, समर्पित होते हैं। और चारों ओर गौएँ हैं, ग्वालबाल है। और, बाँसुरी बजा रहे हैं गोविन्द, दिव्य वस्त्राभूषण हैं। आप वृन्दावनमें हैं और आप वृन्दावनमें गायोंसे घिरे हुए, गोपोंसे घिरे हुए, गोपियोंके नेत्रोंसे पूजित मुरली मनोहर श्याम सुन्दरका दर्शन कर रहे हैं। आप शब्दके साथ तैरिये। आप, वाक्यके साथ तैरिये एक बार। अपने मनको तैरने दीजिये, भगवान्‌की लीलामें और उसका रस लीजिये।

अब प्रेक्टिकल ध्यानकी बात कल करेंगे।

●

प्रवचन : 17

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

अनिष्टमें लगे हुए मनको इष्टमें लगाया जाय। अनिष्ट क्या है? दुःख अनिष्ट है। जो इष्ट न हो सो अनिष्ट। दुःख किसीको इष्ट नहीं है। दुनियामें कोई नहीं चाहता है कि हमको दुःख हो। दुःख अपना इष्ट नहीं है। एक सज्जन कह रहे थे कि कुन्तीने भगवान्‌से दुःखका वरदान माँगा। माँगा था; किन्तु इसलिए कि उनको मालूम था कि जब-जब हमारे ऊपर दुःख आता है, तब-तब भगवान् श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करनेके लिए आते हैं। तब दुःख भूल जाता है, परम सुखकी प्राप्ति हो जाती है। असलमें उसने परमसुख माँगा, दुःख नहीं माँगा था। दुःख किसीका इष्ट नहीं है। दुःखसे, शोकसे, भयसे, अपने मनको मुक्त करें और परमात्मामें, परमार्थमें, अपने लक्ष्यमें, अपने इष्टमें, अपने मनको लगा सकें इसके लिए ध्यानकी आवश्यकता होती है।

अज्ञानको दूर करनेके लिए ज्ञानकी आवश्यकता होती है। असत् व्यवहारको दूर करनेके लिए सत् व्यवहारकी आवश्यकता होती है। यदि ईश्वरकृपासे आपके मनमें कोई दुःख नहीं है, भय नहीं है, शोक नहीं है तो भगवान् आपका मंगल करें। हमेशा आपके हृदयमें सुख बना रहे।

दुःखके निवारणका उपाय यह है कि आप दुःखके स्तरको समझिये। दुःखका स्तर शारीरिक नहीं है, वह अन्यगत नहीं है, वह मनोगत है। किसीको जब दुःख होगा, जब भय होगा, जब शोक होगा तब वह मनमें ही रहेगा। 'मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते'-जब मन अमन हो जाता है तब द्वैतकी उपलब्धि ही नहीं होती। आओ!

दुःखका, शोकका, भयका प्रतिकार माने उसको मिटानेका उपाय मानसिक स्तर पर करें। मानसिक धरातलमें करें।

मनको दो हिस्सोंमें बाँट दो। एक मन आत्माके साथ रहकर देखता है और एक मन दृश्यके साथ होकर देखा जाता है। मनके बिना ज्ञाता भी नहीं होता है, ध्याता भी नहीं होता है। और मनके बिना ध्येय भी नहीं होता है। ध्याता और ध्येयका, ध्यान करनेवाले और ध्येय वस्तुका विभाग मनसे ही होता है। तब आओ, हजारों टुकड़ेमें बँटे हुए मनको पहले दो टुकड़ेमें बाँट लें। यह तो बड़ा भारी संक्षेप होगा। बड़े-से-बड़े गणितके सवालका यह हल होगा कि आपने वस्तुका विभाग कर दिया, विभाजन कर दिया, विश्लेषण कर दिया। एक मन होता है सैलानी और एक मन होता है, मुश्तकिल। थोड़ी देरके लिए उसको मुश्तकिल मत कहो कायम मुकाम कहो। 'विचार सागर' पञ्चदशीका पाठ करो। जबतक आप मनको दृश्यकी ओरसे हटावेंगे नहीं तबतक सुख-शान्ति नहीं मिलेगी। चाहे देहमें 'मैं'को रखो तब भी दुःख मिलेगा, दुनियामें मनको रखोगे तब भी दुःख मिलेगा। इसलिए-

तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी।
राम नमामि नमामि नमामी।।

उ. का. 103.7

आओ, एकबार अपने श्याम-सुन्दर मुरली-मनोहर पर दृष्टि डालें। मन ही वृन्दावन, मन ही यमुना, मन ही गोवर्धन-एक बार मनको बदलो तो सही! मनका वृन्दावन, मनकी यमुना मैया, मनके गिरिराज, मनके वृक्ष, मनके लता। क्या फूल खिल रहे हैं, क्या फल-फूल रहे हैं, क्या पक्षी चहक रहे हैं, क्या हरिन छलाँग भर रहे हैं, क्या गौएँ चर रही हैं, क्या बछड़े उछल-कूद मचा रहे हैं। एकबार मनको अपने अनुसार कल्पनामें डूब जाने दो। वह स्वयं

उच्छृङ्खलतासे बहुत सारी कल्पनाएँ करता रहा है। ऐसे मत सोचो कि ईश्वर हमसे दूर है। आपका आत्मा परब्रह्म परमात्मासे एक है। आपका कर्तारि माने कर्ता-भोक्तारूप परमेश्वरसे एक है। आपका असंग चिदात्मरूप परब्रह्म परमात्मासे एक है। आपका मानसिकरूप हिरण्यगर्भसे एक है। आपका स्थूलरूप वैश्वानरसे, विश्वात्मासे एक है। आप जो चाहो सो बनाकर देख सकते हो। वेदान्ती लोग इस बातसे खुश हो जाँय कि आप चाहें तो ईश्वरके रूपको बनाकर भी अपने हृदयमें देख सकते हैं। परन्तु आपने तो इस सामर्थ्यको छोड़ क्यों दिया ? आप तो, दुःख बनाने लगे, भय बनाने लग गये, शोक बनाने लग गये। आपने इस सामर्थ्यको छोड़ क्यों दिया कि जब चाहें तब मुरलीमनोहर, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर, प्राण-प्यारे नन्द-नन्दनको अपने हृदयमें, अपने मनमें ही दृश्यके रूपमें देख सकें। यह सामर्थ्य आपको प्राप्त था; लेकिन आपने इसको छोड़ क्यों दिया ? आप तो दुःख बनाने लग गये। भय बनाने लगे, शोक बनाने लगे।

आओ, एक बार फिर देखो, 'गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे'-बड़ी श्रद्धासे, बड़े आदरसे आप देखो, आपके हृदयमें साँवरा-सा चन्द्रमा खिला हुआ है। यही मनमें स्वाद देनेवाला, रस देनेवाला यही है। पाँचों सखियाँ इसीसे प्रेम करती हैं।

बंगलामें एक 'काला चाँद' नामकी पुस्तक है। इसमें ऐसी बढ़िया कहानी है। पाँच सखी जो हैं, वह उससे प्रेम करती हैं। वह काला चाँद, वह साँवरा-सलोना, चटपटा, मसालेदार जिसको देखकर जीभपर पानी आजाय। आँखें ललचा जाय। मन मचल उठे ऐसा जो मन्द-मन्द मुस्कानवाला, प्रेमभरी चितवनवाला-'गोविन्दम्'। इस गोविन्दके साथ श्रद्धा और आदर जोड़ो। क्यों ? क्योंकि गोविन्द है। सारे वेद-पुराण-उपनिषद्-दर्शन इसका प्रतिपादन करते हैं। सम्पूर्ण वाणीके द्वारा, सम्पूर्ण वेदोंके परम

तात्पर्य-'गोविन्दम्' । 'गो' माने 'वाणी'। सम्पूर्ण गौएँ जिसकी ओर आँख उठाकर देख रही हैं और उन्होंने घास खाना छोड़ दिया। सब गौएँ घास खाना छोड़कर, बछड़ोंको दूध पिलानेका ख्याल छोड़कर उन्हींकी ओर देख रही हैं। महात्माजी जप कर रहे थे, श्याम सुन्दरको देखकर जपकी माला छूट गयी। त्राटक लगा रहे थे, त्राटक टूट गया। सम्पूर्ण वेदोंके परम तात्पर्य 'गोविन्दम्'! क्या सुन्दर मुखारविन्द है! कान उनकी बाँसुरी सुनना चाहते हैं, वचन सुनना चाहते हैं। यह देखो श्यामसुन्दरको-

देखन को नयना तपे
बचन सुनन को कान,
मिलने को हियरा तपे,
मेरे जिय के जीवन प्राण!

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो हवाचं उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।

(केनोपनिषद्)

केनोपनिषद्में यही है-मन-का-मन, आँख-की-आँख, प्राण-का-प्राण वह आपके हृदयमें है। तो, आओ एकबार 'गोविन्दम्'-उनकी मूर्तिको देखो। किस रूपमें प्रकट हुआ? मोरका मुकुट, घुँघराले बाल, गोरोचनका तिलक, टेढ़ी अनुग्रहसे भरी हुई भौंहे, प्रेमभरी चितवन, सुचिक्कन मरकतमणिके समान कपोल, नासिकामें गुलाब, होठोंपर मन्द-मन्द मुस्कान, दाँत चमक रहे, होठोंसे लाली बरस रही है! क्या इन्द्रधनुष बन रहा है उसका मुखारविन्द। कभी मुस्कुराता है, कभी बाँसुरी बजाता है-'गोविन्दम्'।

आप अदृश्य वस्तुको देखना चाहेंगे तो उसको शब्दका सहारा लेकर दिखाना पड़ेगा। आपके मनको हम शब्दके द्वारा पकड़कर यहाँसे वहाँ पहुँचा रहे हैं, जहाँ भगवान् प्रकट हैं। आप

हमारे शब्दके साथ तैरिये, हमारे वाक्यके साथ तैरिये। आपके पाँव वहीं नहीं जा सकते, आप हाथसे उनको नहीं पकड़ सकते, आप जीभसे उसको नहीं चख सकते तो आप आइये जरा हमारे इस शब्दकी डोरीके साथ अपनी सुरत लगा दीजिये। यह शब्द हमारे और सुरत आपकी, और दोनों मिलकर अपनी सुरतको, अपने ख्यालको, अपने तवज्जोको, अपने ध्यानको हमारे शब्दोंके साथ श्यामसुन्दरके पास चलने दीजिये। अगर उसमें आपको रस आजायेगा, राग हो जायेगा, तो संसारका राग छूट जायेगा। वैराग्य मनको हुक्म देनेसे नहीं होता। धनके लिए रोते हो और हुक्म देते हो कि हे मन! धनसे वैराग्यकर, बेटेसे वैराग्य कर, स्त्रीसे-पुरुषसे वैराग्य कर! यह आपका हुकुम माननेवाला नहीं है, लेकिन इसको कुछ बढ़िया चीज दो जहाँ उसको स्वाद आवे, रस आवे तो आपका मन लग जायेगा और संसारसे वैराग्य हो जायेगा।

वह श्याम सुन्दर चलता है, नाचता है, वह खड़ा होता है, वह बैठता है, वह सोता है। वह श्याम सुन्दर चलता-फिरता है, वह पत्थरकी मूर्ति नहीं है। जीवन्त चेतन, चलती-फिरती आकृतिका आप ध्यान करें। उसके चरणोंके नाखूनमें-से रोशनी निकलती है और ह्रदयका अन्धकार दूर हो जाता है। उसके तलवे लाल-लाल चमक उठते हैं। वह मुस्कुराता है और मुखसे निकली हुई रोशनीसे आपके ह्रदयका अन्धकार दूर हो जाता है। वह प्यारभरी आँखोंसे देखता है, आपका प्राण, आपका मन उधर खींच जाता है।

वेदान्तियोंको इतना लाभ है कि उनको संसारकी अनेकताका चिन्तन छूट गया। और योगियोंको यह लाभ है इसमें कि साढ़े तीन हाथकी आकृतिमें धारणा हो गयी, इतने कालतक ध्यान हो गया और इन्द्रियोंका प्रत्याहार हो गया। विषयोंकी ओरसे इन्द्रियाँ खींचकर श्रीकृष्णमें लग गयी तो प्रत्याहार हो गया। और, साढ़े तीन

हाथके देशमें रहनेसे धारणा हो गयी, और इतने कालतक श्रीकृष्णका चिन्तन करनेसे ध्यान हो गया। आप सम्बन्धकी कल्पना छोड़ दीजिये। ऐसे तो इसकी भी जरूरत पड़ती है। वेदान्ती हों, तो श्रीकृष्णमें जगत्कारणत्वकी स्थापना कीजिये। योगी हो तो आनन्दानुगत समाधिके द्वारा लीन हो जाइये श्रीकृष्णमें। और, वेदान्त ज्ञान चाहते हो तो श्रीकृष्णके सर्वांगमें अपने मनको घुमाकर एक अंगमें स्थापित कर दीजिये मुस्कानमें। केवल मुखारविन्दको देखिये, केवल मुस्कानको देखिये, और उसको छोड़कर आकाशको देखिये। और आकाशको छोड़कर अपने स्वरूपमें बैठ जाइये। यह प्रक्रिया वेदान्तियोंके लिए है।

भक्तोंके लिए इसकी प्रक्रिया दूसरी है। **गोविन्दं कलवेणुवाद-परं दिव्याङ्गभूषं भजे'।**

योगमें ध्यान सिमटकर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होता है और फिर सर्वव्यापक हो जाता है। आपलोग उसमें भी कभी कोई द्वैतकी शंका नहीं करना। क्योंकि आप मनमें एक चीजको अँगूठेके बराबर देखें और एक चीजको साठ हाथकी देखें तो यह साठ हाथमें और अँगूठे भरमें कोई फर्क होता है ? दोनों मनके ही रूप है। मन ही अँगूठा भरका दिखता है, मन ही साठ हाथका दीखता है। इसी प्रकार यह साकार मूर्ति जो साढ़े तीन हाथकी दिखती है और यह जो सर्वव्यापक आकाशव्यापी पदार्थ दिखता है–ये दोनों मनमें ही दीखते हैं। मनके ही रूप हैं। सर्वव्यापी अन्तर्यामी कहकर धोखेमें न पड़ें और इसको छोटा समझकर इसका तिरस्कार न करें। ये दोनों मनके ही रूप हैं। जब परमात्माका अनुग्रह होकर साक्षात् उसका आविर्भाव होता है तब ये दोनों रूप टूट जाते हैं। तब परमात्माका जो असली स्वरूप है, अनुग्रह विग्रह स्वरूप, वह प्रकट हो जाता है।

आओ, आपको हम ध्यानकी प्रक्रियामें भक्त लोग जो

ध्यान करते हैं वह सुनाते हैं। भक्तोंमें भी दो किस्म हैं। एक तो भगवान्‌का ध्यान करते हैं, ऐश्वर्यके साथ, ये ही जगत्-कारण हैं। ये ही जगत्‌के निमित्तकारण हैं। बनाया है इन्होंने, स्वयं अलग हैं। ये ही अपनी शक्तिसे उपादानकारण भी हैं। अभिन्ननिमित्तोपादान-कारण हैं। तो, यह महात्म्य ज्ञान होनेसे श्रद्धा होती है और आदरबुद्धि होती है, भक्ति होती है और सेवा करनेका मन होता है। महात्म्यज्ञान अवश्य चाहिए। वल्लभाचार्यजी महाराजने इस बातको पकड़ा है।

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा।।

(वल्लभवेदान्तमें भक्ति)

वल्लभाचार्यजीने कहा-महात्म्यज्ञान पूर्वक प्रेम होना चाहिए। तो यह श्रीकृष्णके महात्म्यका आप ज्ञान प्राप्त करें ये ही परात्पर परमतत्त्व हैं। एक तो होता है ऐश्वर्यज्ञानपूर्वक जैसे वैकुण्ठाधिपति हैं, गोलोकाधिपति हैं, साकेताधिपति हैं। इन्हींके डरसे वायु चलती है, अग्नि प्रज्वलित होती है, सूर्य प्रकाश देता है, समुद्र पृथिवीको डुबोता नहीं, पृथिवी सबको धारण करती है यह सब इन्हींका अनुशासन है। ऐसा सोचकर परमेश्वरबुद्धि भी जोड़ो और भगवान्‌का ध्यान भी करो।

एक हैं माधुर्य प्रधान। अब आप देखो-श्रीकृष्णकी मधुरता ही मधुरता है। केवल मिठास-मिठास है। माधुर्यमें सम्बन्धकी प्रधानता हो जाती है। ये हमारे सखा हैं, ये हमारे पति हैं, ये हमारे प्रियतम हैं। परन्तु सम्बन्ध हो ही, यह सब भक्त आवश्यक नहीं समझते हैं। क्योंकि प्रेम जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचता है, तब सब सम्बन्धोंको खींचकर एकमें मिला देता है। कभी माँ बनकर श्यामसुन्दरको अपनी गोदमें ले लो। कभी सखा बनकर कन्धेपर

हाथ रखो। कभी प्रेयसी बनकर उनसे प्रेम करो। कभी महात्माके रूपमें अपने आत्माके रूपमें उनका अनुभव करो। कभी दास्य बनकर अपने स्वामी मानकर हाथ जोड़ो। प्रेम सब सम्बन्धोंको पीसकर बिलकुल एक कर देता है।

जब प्रेम होगा तो पत्नी यह नहीं कहेगी कि दूध पिलाना तो सासका काम है। यह चायका प्याला उठाना नौकरका काम है। प्रेम हो जाने पर नौकरका काम भी हो जायेगा, माँका काम भी हो जायेगा, पत्नीका काम भी हो जायेगा। प्रेम सब सम्बन्धोंको बिलकुल एक कर देता है। त्रिपुटी भंग करना–'त्रिरूपभङ्गपूर्वकम्' (नारदभक्तिसूत्र) प्रेममें यह गुण है कि वह प्रेम सब सम्बन्धोंको पीस डालता है। लेकिन शुरु–शुरुमें सम्बन्धकी आवश्यकता पड़ती है।

आओ हम बिना सम्बन्धके भगवान्‌का ध्यान करते हैं अभी। उनकी ओरसे तो सबके साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। एक ही है उनके सिवाय और कुछ नहीं है। अब, 'कलवेणुवादनपरम्'–भक्तका भगवान् बढ़ता है और योगीका भगवान् छोटा होता है। यह दोनोंमें क्रम है। तो, श्रीकृष्णका मुखारविन्द, फिर नेत्र, फिर सम्पूर्ण विग्रह चरणभागसे लेकर मुकुटतक और मुकुटसे लेकर चरणारविन्द पर्यन्त और फिर उसमें चेष्टाका ध्यान–'कलवेणुवादनपरम्'–कि होंठ कैसे फड़कते हैं, बाँसुरी बजाते समय ठुड्डी कैसे हिलती है स्वरके अनुसार, तालके अनुसार, रागके अनुसार, आँख कैसे तिरछी होती है उसपर आप ध्यान जमावें। कन्धा टेढ़ा, गला टेढ़ा, कमर टेढ़ी, पाँव टेढ़ा। शक्तिका स्वरूप वक्र होता है, टेढ़ा होता है। भगवान् श्रीकृष्ण टेढ़े होकर तुम्हारे सीधे हृदयमें टेढ़ा होकर अटकना चाहते हैं। 'कलवेणुवादनपरम्' बाँसुरी बजा रहे हैं...अपने हृदयमें केवल इसी स्वरलहरीका ध्यान करें।

ओङ्कारार्थमुदीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः।

जैसे ॐकारकी दीर्घ ध्वनि होती है ऐसे बाँसुरी बज रही है। मध्यकालके सन्तोंने अनाहत ध्वनिके रूपमें चित्रित किया है वंशीध्वनिको। और, दस प्रकारकी ध्वनियोंमें-से वंशीको बहुत उत्तमकोटिकी ध्वनि माना है। मृदंगकी ध्वनि, मेघध्वनि और वंशीध्वनि आदि दस प्रकारकी नादोंमें यह उच्च प्रकारकी अनाहत ध्वनि मानी गयी है। यह आप नहीं बजा रहे हैं, श्यामसुन्दर बजा रहे हैं अपने मनको इसमें लीन हो जाने दो।

देखो, पहले सौन्दर्यामृतका आस्वादन, फिर नादामृतका आस्वादन! अब फैलने दीजिये। 'दिव्याङ्गभूषं भजे'-एक-एक अंगमें दिव्य आभूषण हैं। ऐसे सामान्यरूपसे नहीं कि याद कर लिया। आप कभी ध्यान दें कि श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर हीरेकी, मोतीकी, पन्नाकी जो मालाएँ हैं-आप लोगोंने लक्ष्मी नारायणके मन्दिरमें देखा होगा कि उनकी एक पंक्ति होती है, लड़ी होती है। माने लड़ीके बाद लड़ी, लड़ीके बाद लड़ी! यदि आपलोग इसमें विचरण करें तो योगकी धारणा और क्या होती है ?

'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' (पातञ्जलयोगसूत्रम्) आप अपने मनको इसी मालापर ले जाइये, हीरेकी माला पर। कन्धेसे लेकरके हृदय तक ले जाइये। और उसके बाद मोतियोंकी माला पर मन ले जाइये, उसके बाद पन्नेकी माला पर अपना मन ले जाइये। धीरे-धीरे माणिक्यकी मालापर मनको ले जाइये। इस तरह श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें ही मनको विचरण करने दीजिये। उनकी वनमालामें जो पचरङ्गी फूल है उन फूलोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी सुगन्ध है। भिन्न-भिन्न प्रकारके रङ्ग हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारके रस हैं। इनके स्पर्श भी अलग-अलग है। आप भौंरा बनकर उनका रस लीजिये और गुञ्जार कीजिये उनके ऊपर। 'दिव्याङ्गभूषम् भजे' एक-एक अङ्गसे आभूषणोंका चिन्तन कीजिये। अङ्ग है दिव्य उसमें

आभूषण है दिव्य। जैसे संसारी लोग आभूषण धारण करते हैं तो इस दृष्टिसे कि हमारा सौन्दर्य बढ़ जायेगा। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण अपने सौन्दर्यको बढ़ानेके लिए आभूषण नहीं धारण करते।

विस्मापनम् स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्।

भगवान् श्रीकृष्णका सौन्दर्य इतना विलक्षण है कि उसको देखकर स्वयं विस्मित, चकित हो जाते हैं।

अपरिकल्पपूर्वः कश्चमत्कारकारी।

ऐसा सौन्दर्य तो पहले मैंने कभी देखा नहीं। देखकर भगवान् स्वयं आश्चर्यचकित हो गये। 'विस्मापनम् स्वस्य च' सौभाग्य लक्ष्मीका 'परमपदम्'–सौभाग्य लक्ष्मीका परमपद है। और, 'भूषणम् भूषणाङ्गम्' उनके शरीरसे जो चमक निकलती है। और श्रीकृष्णकी मुस्कान जाकर जब हृदयके हार पर पड़ती है तब हार भी मुस्कुराने लगता है। अङ्गकी ज्योतिको छिपानेके लिए, इतना सौन्दर्य देखकर किसीकी आँखें चौंधिया न जाय, किसीका हृदय अद्भुत रसमें न चला जाय इसके लिए भगवान् आभूषण धारण करके और वस्त्राभूषण धारण करके अपने अङ्ग–अङ्गको छिपाते हैं।

यह रूपमाधुरी, लीलामाधुरी, वेणु माधुरी और प्रियामाधुरी यह चार प्रकारकी माधुरी श्रीकृष्णमें होती है। रूपमाधुरी है उनका साँवरा–सलोना सौन्दर्यामृत जो छलकता है उनके शरीरसे, उसको रूपमाधुरी कहते हैं। और बाँसुरी जो बजाते हैं उसको वेणुमाधुरी कहते हैं। और जो गोपियाँ अपनी प्यासी आँखोंसे उनको देख रही हैं उनकी प्यासी आँखोंमें आपका मन बैठा है और वे कृष्णरसकी प्यासी हैं, श्यामरसकी प्यासी हैं। विवृक्षित दृशः और, उनकी आँखमें बैठकर आपका मन भी प्यासा है। आपके मनमें कृष्ण हैं, आपके मनमें गोपी है–इसको प्रियामाधुरी कहते है। अब लीलामाधुरी है कि ठुमुक–ठुमुक कर चलना, लटक–लटक कर बाँसुरी बजाना। नृत्य

करना। किसीके कन्धेपर हाथ रखना। किसीको हृदयसे लगाना इसीको लीलामाधुरी कहते हैं।

आप और देखो परिकरमाधुरी। उधर गाय, हरिनी खड़ी होकर अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे श्यामसुन्दरको देख रही है। उधर वृक्ष झुक रहे हैं। और फल-पुष्प उनके चरणोंमें अर्पित कर रहे हैं। उधर लताएँ मुस्कुरा-मुस्कराकर अपने फूल उनके पर डाल रही हैं।

आओ, एक दृश्य आपको दिखावें। आप सिर्फ अपने मनको ढीला छोड़ दीजिये, और कुछ करनेकी जरूरत नहीं है। जहाँ-जहाँ यह हमारे शब्द ले जाँय वहाँ अपनी सुरतको जाने दीजिये। उसको समेटकर मत रखिये।

अस्ति स्वस्तरुणीकराग्रविगलत्कल्पप्रसूनाप्लुतं
वस्तु प्रस्तुतवेणुनादलहरीनिर्वाणनिर्व्याकुलम्।
स्त्रस्त-स्त्रस्तनिरुद्धनीविविलसद्गोपीसहस्त्रावृतं
हस्तन्यस्तनतापवर्गमखिलोदारं किशोराकृति।।

-श्रीकृष्णकर्णामृतम्

बचपनसे हमको 'स्त्रस्त-स्त्रस्त-निरुद्ध'। यही याद है। हमारे देखते-देखते निरुद्धको बदलकर लोगोंने 'निबद्ध' कर दिया और हम देखते ही रह गये। हमारी आँखोंके सामने यह शब्द बदल दिया गया। 'निरुद्ध को निबद्ध' बना दिया और मैं देखता रह गया। 'अस्ति स्वस्तरुणीकराग्रविगलत्कल्पप्रसूनाप्लुतं'-श्यामसुन्दर बाँसुरी बजा रहे हैं और स्वर्गकी अप्सराएँ, तरुणियाँ, देवियाँ, कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा कर रही हैं। जरा आपकी दृष्टिको आकाशकी ओर जाने दो क्या मृदु-मृदु, सुन्दर-सुन्दर अमृतकी फुहियोंके समान कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा की जा रही है-श्रीकृष्णके ऊपर। अब आकाश भी आपको दिखेगा। प्रकाश भी आपको दिखेगा। पुष्पोंकी

वर्षा भी आपको दिखेगी। श्रीकृष्णके शिरोभागपर स्वर्गकी देवियाँ पुष्पोंकी वर्षा कर रही हैं। हाथपर कल्पवृक्षके पुष्प, कमर पर कल्पवृक्षके पुष्प, कन्धेपर कल्प-वृक्षके पुष्प, सिरपर-मुकुटपर कल्पवृक्षके फूल। आपको एक विचित्र झाँकी दिखेगी।

मैंने एकबार एक झाँकी देखी थी। आपसे छिपानेकी कोई बात नहीं है। अबकी बात नहीं है जब बच्चा था तब। जबसे ब्रह्म दिखा तबसे झाँकियाँ कुछ कम दिखने लगीं! देखा था मैंने कि मुकुट फूलका, कुण्डल फूलका, झुलनी भी फूलकी, माला फूलकी और कपड़ा भी फूलका और कमरमें जो कटिवस्त्र होता है, कटिकाछनी भी फूलकी, हाथमें कंगन भी फूलका और पाँवमें नूपुर भी फूलका। फूल-ही-फूल था। वस्त्र नहीं, आभूषण नहीं बस फूलका ही वस्त्र और फूलका ही आभूषण। मैंने एक झाँकी ऐसी देखी थी। आप चाहें तो देख सकते हैं। परन्तु स्त्री देखनेसे, पुत्र देखनेसे, दुकान देखनेसे, शरीर देखनेसे आपको फुरसत नहीं है, अवकाश नहीं है।

जिन आँखिन ते यह रूप लख्यो
उन आँखिन ते अब देखिये का?

जिन आँखोंसे इस रूपका दर्शन होता है उन आँखोंमें यह ऐसा भर जाता है कि इससे दूसरा कुछ देखनेकी रुचि नहीं होती है। सारा रस समेट लेता है यह, सारी रुचि समेट लेता है यह। बड़ा भारी अवकाश है उसमें मन्द-मन्द मधुर प्रकाश फैला हुआ है। शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु चल रही है। और, स्वर्गकी देवियाँ श्रीकृष्णके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा कर रही हैं।

'वस्तु-प्रस्तुत-वेणुनाद-लहरी-निर्वाण-निर्व्याकुलम्'-वंशीकी ध्वनि जो फैलती है उसने निर्वाण मोक्षके आनन्दको लाकर सामने रख दिया है। कहीं व्याकुलता नहीं है, विक्षेप नहीं है, सर्वत्र शान्ति है। पर्वत शान्त है, वृक्ष शान्त है, लता

शान्त है, हरिण शान्त है, गाय शान्त है, जो गोपियाँ पहले प्यासी थीं वह शान्त होकर पी रही हैं। वस्तु कैसी है? कि निर्व्याकुल है। क्यों निर्व्याकुल है ? तो महाराज, उसने बाँसुरीकी ध्वनिका अमृत बाँट-बाँटकर 'निर्वाण'को साक्षात् अपरोक्ष उपस्थित कर दिया है।

'स्रस्त-स्रस्तनिरुद्धनीविविलसद्गोपीसहस्रावृतं'

गोपियोंके शरीरके कपड़े ढीले होकर गिरते जा रहे हैं और वे जबतक होश रहता है तबतक सम्भालती हैं। 'स्रस्त-स्रस्त' गिरते-गिरते वस्त्र 'निरुद्धनीविविलसद्'-हाथसे कभी पकड़ लेती हैं कि वस्त्र शरीरसे गिर न जाय। और कभी हाथ सम्भालना भूल जाता है। इस प्रकार गोपियाँ प्यास और रसका आनन्द ले रही है।

प्रेममें यदि केवल रस-ही-रस हो, स्वाद-ही-स्वाद हो तो वह एकरस हो जानेसे, जैसे खीर-ही-खीर खानी हो तो तबियत ऊब जाय। इसमें थोड़ी चटनी चाहिए, थोड़ा अचार चाहिए। तो, तृप्तिमें भी प्यास चाहिए। और..और..और...। और केवल प्यास-ही-प्यास हो और तृप्ति न हो तो दुनियामें इसको कोई चाहेगा ही नहीं। केवल प्यास पुरुषार्थ नहीं होती और केवल तृप्ति भी पुरुषार्थ नहीं होती। इसलिए प्यासके बाद तृप्ति और तृप्तिके बाद प्यास यह प्रेमका स्वरूप है।

'स्रस्त-स्रस्त' परन्तु सम्भाल लेती हैं कपड़ेको और फिर ढीला हो जाता है। सम्भाल लेती हैं वस्त्रको और फिर ढीला हो जाता है। ऐसी प्यासी-प्यासी गोपी है। 'गोपी सहस्रावृतम्' यह महाराज, कोई साधारण वस्तु नहीं है।

'हस्तन्यस्तनतापवर्गमखिलोदारं किशोराकृति'-हाथमें कुछ ले रखा है। हाथोंमें कुछ है। क्या है ? जो नमस्कार करनेवाले हैं उनको अपवर्ग लुटा रहा है। जो सिर झुकाते हैं तो मधुररसमें प्रवेश क्यों करते हो ? तुम जाओ मोक्ष लो, ब्रह्म हो जाओ। मुट्ठीमें ले रखा

है। अपवर्ग लुटा रहा है, मोक्ष लुटा रहा है, बड़े अधिक उदार हैं। परन्तु, यह है कौन ? कि ऐसा ही है। 'किशोराकृति' आकृतिसे किशोर है। रूप दूसरी चीज होती है हो! रूप दूसरी वस्तु है, रंग दूसरी वस्तु है और आकृति दूसरी वस्तु है। आकृति रेखाओंसे बनती है। आप देखें बालके समान उसके होंठ, कमलके समान उसके हाथ। आठ कमल निवास करते हैं श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें। दो आँख कमल हैं, समूचामुख कमल हैं, दो हाथ कमल हैं, दो पाँव हैं, नाभि कमल है। कमल-कमलका मानो एक मधु-ही-मधुका पुंज है। कमलके समान मृदु, कमलके समान सुन्दर, कमलके समान रसीला यह मधुर-मधुर दिव्य मधु ही मूर्तिमान होकर माधुर्य सार-स्र्वस्व श्रीकृष्णके रूपमें है।

हमारा निवेदन यह है कि आप यदि मनको पहले ही संसारसे हटाकर भगवान्‌में लगा लें तो आपका मन पवित्र हो जायेगा। आपका मन ऐश्वर्य-माधुर्यके चिन्तनसे रूपान्तरित हो जायेगा। आपके मनमें दिव्यभावका उदय हो जायेगा। उसके बाद आप मोक्ष प्राप्त कीजिये, ब्रह्मज्ञान प्राप्त कीजिये, वैकुण्ठ जाइये, समाधि लगाइयें। समाधिसे जब आप उठेंगे तब आपको यही पवित्र मन मिलेगा। और, यदि आप अपने मनको पवित्रतम श्रीकृष्णमें, राममें, शिवमें, लगाकर पहले पवित्रतम नहीं बना लेंगे तो जब आप समाधि लगाकर उठेंगे तब फिर वही गन्दकी आपके जीवनमें प्रवेश करेगी।

पहले इस मनको धो लो, साफ कर लो। इसको सौन्दर्यामृत, माधुर्यामृतकी वासनासे वासित कर लो। इसमें कुछ कुरूप न रहे, इसमें कुछ कटु न रहे। जब सौन्दर्यसे भरोगे तो कुरूप निकल जायेगा। जब माधुर्यसे भरोगे तब कड़वा निकल जायेगा। आपकी वाणी कड़वा बोलती है। आपका मन कड़वा हो जाता है। आपका

चरित्र कुरूप हो जाता है। आजकल 'विद्रूप' शब्दका हिन्दीमें चलन है। हमको 'विद्रूप' शब्दका इतिहास तो नहीं मालूम है कि वह कहाँसे आया है बंगलामें उसका प्रयोग होता है लेकिन संस्कृतमें नहीं होता है। परन्तु, आपका मन 'विद्रूप' हो गया है, कुरूप हो गया है। आपका चरित्र दुश्चरित्र हो गया है। आपका मन भय, मोह, शोकसे व्याप्त हो गया है। आपका मन पिशाचके समान चञ्चल हो गया है। दूसरोंको दुःख देनेवाला, अपनेको दुःख देनेवाला। पहले उसको ठीक-ठाक करनेके लिए मेरे प्यारे! अपने मनको पहले ठीक बना लो। और फिर उसके बाद चाहे समाधिमें बैठ जाओ और फिर जब उसमें-से उठोगे तब वही निकलेगा। असङ्ग हो जाओ फिर भी वह अपना काम ऐसे ही करेगा। आप ब्रह्म हो जाओ, वह मधुर-मधुर, सुन्दर-सुन्दर, पवित्र-पवित्र काम करता रहेगा। परन्तु लेकिन पहले मनको ठीक-ठीक बनाओगे नहीं, इसको दिव्य बनओगे नहीं तो भले तुम ब्रह्म हो जाओ लेकिन यह तुमको दुःख देना बन्द नहीं करेगा। जबतक रहेगा तबतक तुमको दुःख देता रहेगा।

अब ध्यानका एक और रूप आपको सुनाते हैं। एक ध्यान वह होता है जो ध्येयसे मिलकर ध्येयाकार हो जाता है। वेदान्ती लोग भी तत् पदार्थका ध्यान ऐसा ही मानते है कि वह ध्येयाकार हो जाता है। योगी लोग ऐसा मानते है कि यह ध्यान ध्यातामें लीन हो जाता है। वेदान्ती लोग बताते हैं-जो ध्यातृ-अवच्छिन्न चैतन्य है वही ध्येयावच्छिन्न चैतन्य है। इसलिए दोनोंकी एकताका बोध होनेपर मन चाहे समाधि लगावे, चाहे भगवद्चिन्तन करे दोनोंमें कोई फर्क नहीं होता है। क्योंकि जब दोनों एक है तब मन इधर रहा कि उधर रहा उसमें फर्क नहीं होता है। तो, जो ध्येयावच्छिन्नचैतन्य है वही ध्यातृ-अवच्छिन्नचैतन्य है। इसलिए जब दोनोंकी एकताका बोध हो जाता है तब मन यहाँ रहे कि वहाँ रहे, यहाँ-वहाँ दोनों एक। इसलिए तत्त्वज्ञ

लोग जो हैं वे इसमें कोई अन्तर नहीं करते। स्वामी-स्वामी करे तो, सेवा करे तो, यह भी उनकी बहुत प्यारी-बहुत प्यारी स्थिति है।

'तत्त्वयम् तुल्यमेव'

पहले अपने मनको पवित्र कर लेना चाहिए। घोड़ेको पहले सधा लो फिर उसके बाद चाहे लगाम ढीली कर लो, चाहे लगाम उतार लो। मालिकको तो कभी-कभी पता भी नहीं चलता है और घोड़ा अपने स्थानपर पहुँचा देता है। ऐसा हमने देखा है अपनी आँखसे कि मालिक घोड़ेपर बैठा-बैठा बेहोश हो गया और घोड़ा उसको एक मील, डेढ़ मील चलकर घरपर ले गया और जहाँ रोज उतरते थे वहाँ खड़ा हो गया। दूसरे लोगोंने देखकर उतार लिया, वे तो घोड़ेपर बेहोश हो गये थे।

आप अपने मनको ऐसा सधा लें कि वह छोड़ देनेपर भी अपने घरमें ही जाय। और यदि मनको पहले नहीं सधावेंगे तो यह न जाने कहाँ-कहाँ आपको ले जायेगा और क्या-क्या दुःख देगा? ज्ञानी होनेपर भी दुःख देना नहीं छोड़ेगा, योगी होनेपर भी दुःख देना नहीं छोड़ेगा। बड़ी ऊँची पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर भी वह दुःख देनेसे नहीं छोड़ेगा। यह तो, वृन्दावन राजधानीके जो स्वतःसिद्ध राधारमण स्वामी हैं, उनके रूप-सौन्दर्य-रस-माधुर्यकी वारिधिमें, उनके यशके समुद्रमें इस मनको डुबो दो। तर कर दो। मधुर-मधुर सुन्दर बना दो।

●

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम्।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः।।

भगवान् श्रीकृष्ण गोपाल हैं। गोपालका बाहरी अर्थ होता है 'गायोंके रक्षक' और अध्यात्ममें उसका अर्थ होता है हमारी इन्द्रियों मनोवृत्तियोंके रक्षक। गायके रक्षक, पृथिवीके रक्षक, वाणीके रक्षक, इन्द्रियतृप्तिके रक्षक, मनोवृत्तिके रक्षक, सम्पूर्ण जगत्के रक्षक, और परिवर्तनशील प्रकृतिके प्रेरक और रक्षक–यह 'गोपाल' शब्दका अर्थ होता है।

'गो' शब्दका प्रयोग निरुक्तमें कोई इकतीस अर्थोंमें किया गया है। 'गाय' शब्दके इकतीस अर्थ होते है। तो, शुरू–शुरूमें गोपालकी बात आपसे यह करनी है कि यदि आप गोपालसे मन मिला लोगे तो आपकी इन्द्रियाँ मनमाने ढंगसे संसारमें व्यवहार नहीं करेंगी। सन्ध्या–वन्दन करो, गायत्रीका जप करो, चरित्र शुद्ध होगा और, इष्टदेवकी उपासना करो तो वासनाशुद्ध होगी। और, योगसे स्थिति दृढ़ होती है। तो जब आप धर्मानुष्ठान भी नहीं करोगे, उपासना भी नहीं करोगे, योगाभ्यास भी नहीं करोगे और सीधे ब्रह्मज्ञानके शिखर पर चढ़ जाओगे तो वहाँसे गिरनेकी ही सम्भावना अधिक रहेगी। उसपर टिकनेकी सम्भावना अधिक नहीं होती। यह मैं आपसे अपने मनका सीधा निवेदन कर रहा हूँ। उपनिषद्, सद्गुरु और सम्प्रदायसे हीन वेदान्तीकी दुर्गति–ही–दुर्गति है। तो, सद्गुरुको भी लोग समझते हैं और उपनिषद्का भी स्वाध्याय करते हैं। परन्तु

सम्प्रदायकी बात जरा कम समझमें आती है। उसकी भी आवश्यकता होती है।

आपको वेदान्तकी केवल दो बात मैं सुना देता हूँ। उससे आपकी बुद्धि परमात्माकी ओर चलेगी। साधनामें एक क्रम है। यह नहीं कि चाहे जो शुरू कर दो। सबसे अलग मैं हूँ। यह आत्मस्थिति है। सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्चसे पृथक् 'मैं' हूँ। आत्मभाव और ईश्वरभाव उपाधिके कारण है। उपाधिरहित परब्रह्म परमात्मामें न जीवभाव है, न ईश्वरभाव है। वहाँ न सबसे अलग है न सब है। तो, यदि आप इस क्रमको स्वीकार करेंगे तो व्यतिरेककी दशामें ही संसार सम्बन्ध कट जायेगा। अन्वय दशामें सम्बन्ध और सम्बन्धिका भाव नहीं रहेगा। और, ब्रह्मानुभूतिमें सम्बद्ध्यमान जगत् ही नहीं रहेगा। तो, क्रम स्वीकार करना पड़ेगा। पहले व्यतिरेक, फिर अन्वय, फिर व्यतिरेक और अन्वयसे रहित परब्रह्म परमात्माका अनुभव।

यदि आप इसको स्वीकार कर लें तो आपने एक प्रकारसे शांकर-सम्प्रदायकी पद्धति स्वीकार कर ली। और, यदि कहें कि पहले हम सबको भगवान् देखेंगे और पीछे अपनेको असंग समझेंगे तो वह सम्प्रदायकी पद्धति नहीं होगी, उसमें सरभङ्गी होनेका डर ज्यादा रहेगा।

सरभंगी जानते हैं आप ? सरभङ्गी माने अघोरी। 'अघोर' सम्प्रदाय हो जायेगा कि सब परब्रह्म परमात्मा है। इसमें चोरी भी ब्रह्म है, अनाचार भी ब्रह्म है। चाहे जो खाय, जो पीवे, जो करे, जैसे मिले, जैसे रहे यह अघोर हो जायेगा। तो, सम्प्रदायका अर्थ होता है साधनाके क्रमको स्वीकार करना। पहले यह, फिर यह और फिर यह। यदि आप क्रम नहीं मानते हैं साधनामें तो आपका कोई सम्प्रदाय नहीं है। और साधना भी अनेक होती है। उसमें यदि एक साधनामें निष्ठा नहीं है तो, आपके सद्गुरु नहीं है। और, सद्गुरु यदि

उपनिषद्के सिद्धान्तका ही निरूपण नहीं करता है तो वह अवैदिक है। वह वेदके सम्प्रदायसे छूट गया।

तो, पहले जीवनमें आना चाहिए धर्म, माने चरित्र शुद्ध हो। धर्मके साथ-साथ उपासना आती है। यह तीन बार सन्ध्या-वन्दन करनेवाले लोग तीन बार गायत्रीका ध्यान करते हैं। तो, गायत्री देवीका जो ध्यान है वह पौराणिक है। उसमें जो स्त्रीके रूपमें गायत्रीका ध्यान है यह ब्राह्मी है, यह वैष्णवी है, यह शैवी है यह वैदिक नहीं है, पौराणिक है। और, सूर्यदेवताका ध्यान जो है वह वैदिक है और, सूर्यमें नारायणका जो ध्यान है वह पाञ्चरात्रिक है। और, सूम्पूर्ण जगत्के अभिन्ननिमित्तोपादन कारणके रूपमें सविता देवताका ध्यान है। सविता माने उपादान और देव माने स्वयंप्रकाश चैतन्य, अभिन्ननिमित्तोपादान कारण उसके सर्वात्मक ज्योतिका चिन्तन और वह भी प्रत्यक्‌चैतन्याभेदेन-'धियो यो नः प्रचोदयात्'।

कल कोई सज्जन कह रहे थे कि गायत्रीका ध्यान बताना। तो, जो सृष्टिका उपादान माने मसाला है, जिस मैटरसे इस सृष्टि बनी है और इसको बनानेवाला जो कुम्हार है वह स्वयंप्रकाशचैतन्य परमात्मा हमारे अन्तःकरणमें रहकर हमारी बुद्धि वृत्तियोंका प्रेरक साक्षी भी है। इसलिए जो यह है सो वह है और जो वह है सो यह है। यह गायत्रीका परमार्थ हुआ।

अब गायत्रीका अर्थ ऐसे निकला। गायत्री देवीका ध्यान सूर्यका ध्यान, सूर्यमें नारायणका ध्यान, अन्तर्यामी परमेश्वरका ध्यान, और प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वका ध्यान। और, आप अपने मनसे किसी पोथीमें-से गायत्री पढ़कर उसका ध्यान करना शुरू कर देंगे तो न सद्गुरु होगा, न सम्प्रदाय होगा, और न उपनिषद् होगी। वह केवल आपके मनोवृत्तिको पुष्ट करनेवाला ध्यान होगा। वेदान्तमें व्यतिरेक पहले, अन्वय बादमें और अन्वय-व्यतिरेक दोनोंका बाध,

दोनोंसे विलक्षण-किससे न्यारा और किसमें अन्वित जब दूसरा है ही नहीं तब अन्वय-व्यतिरेक भी मिथ्या है यह वेदान्तका परमार्थ है।

अब गोपालकी चर्चा करें। पहले अपने गायोंको गोपालके हवाले कर दो। **'गोविन्दं कलवेणुवादनपरम् दिव्याङ्गभूषं भजे'**-तो, धाम वृन्दावन, रूप साँवरा-सलोना और सो भी बड़ा मधुर, बाँसुरी बजाता हुआ, एक-एक गायका नाम ले-लेकर गाता हुआ, एक-एक गोपीका नाम लेकर पुकारता हुआ। बाँसुरी श्रीकृष्णकी प्यास है। गोपियोंको बुलानेके लिए बाँसुरी बजाते हैं। बाँसुरी श्रीकृष्णका आकर्षण है। बाँसुरी श्रीकृष्णका आनन्द है। इससे सम्पूर्ण गौएँ जैसे बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्णकी ओर देखने लगती हैं वैसे हृदयदेशमें बैठकर हमारे प्राणोंके प्राण, हमारे जीवनके सर्वस्व श्याम-सुन्दर जब बाँसुरी बजाते हैं तो इन्द्रियोंकी गति उल्टी हो जाती है। हमारी नाक उन्हींकी गन्ध सूँघने लगती है, हमारी जीभ उन्हींके रस चखने लगती है, हमारी आँख उन्हींका सौन्दर्य देखने लगती है, हमारी त्वचा उन्हींके स्पर्शका अनुभव करने लगती हैं। और, हमारे कान उन्हींके वचन सुननेको व्याकुल हो जाते है।

देखन को नैना तपै वचन सुनन को कान।
मिलने को हियरा तपै मेरे जीके जीवन प्राण।।
श्रीगोवर्धनवासी साँवरे लाल, तुम बिन रह्यो न जाय हो।
बृजराज लड़ैते लाडिले, तुम बिनु रह्यो न जाय हो।

(चतुर्भुजदास)

तो, जब हम गोपालका आश्रय ले लेते है तब जैसे गौएँ घास चरना छोड़कर अपना मुँह बाँसुरी बजाते श्रीकृष्णकी ओर कर देती है वैसे हमारी इन्द्रियाँ यह संसारके विषयोंकी घास चरना छोड़कर अपना मुँह श्रीकृष्णकी ओर कर लेते हैं। आपने प्राणायाम किया होगा तो थोड़ी देरके लिए आपका मन एकाग्र हो गया होगा। मैं कहूँ

अभी आपका एक मिनटमें मन एकाग्र कर देता हूँ। एक मिनटके भीतर आप जादू देख ले। 'खोल दे पलक देख ले झलक, पलक में खलक' एक मिनटके लिए आप अपनी आँखोंकी पुतली स्थिर कर दीजिये, आपका मन स्थिर हो जायेगा। आधा मिनट करके देख लीजिये। जितनी देरतक आपकी आँखकी पुतली नहीं हिलेगी उतनी देरतक आपका मन एकाग्र रहेगा।

आप थोड़ा-सा प्राणायाम करके देख लीजिये। जितनी देर कुम्भक होगा उतनी देर आपका मन एकाग्र रहेगा। 'केवले कुम्भके सिद्धे किं न सिद्ध्यति भूतले'-केवल कुम्भककी सिद्धि हो जाय तो क्या सिद्धि नहीं मिल जाती? परन्तु, भाई, जहाँ आप कुम्भक छोड़ दोगे, वहाँ आपका मन फिर वासनावासित हो जायेगा। जहाँ आप आँखकी पुतली हिलाओगे वहाँ आपका मन फिरसे संसारमें फैल जायेगा। लेकिन यदि इस साँवरे-सलोने, गोपीजनवल्लभ, नन्दकिशोरसे आपकी प्रीति हो जाय तो गायोंका मुँह ही घूम जायेगा। उनको घास प्यारी नहीं लगेगी। अपने अन्तर्देशमें, अन्तर्देशके सूक्ष्मतम प्रदेशमें प्रवेश करते हुए, ठुमुक-ठुमुक कर पादविन्यास करते हुए, पीताम्बर फहराते हुए, बाँसुरी बजाते हुए, लटक-लटककर झूमते हुए श्याम सुन्दरको ले आओ।

लटकि लटकि मनमोहन आवनि,
झूमि झूमि पग धरत भूमि पर गति मातंग-लजावनि।

इस रूपमाधुरीमें आपका मन लग जायेगा!

रूप-माधुरीके बाद होती है लीला-माधुरी। पहले धाममाधुरी, रूपमाधुरी दूसरी, वेणुमाधुरी तीसरी, प्रियामाधुरी चौथी और लीलामाधुरी पाँचवीं। अब आप देखो, यह भक्तोंकी युक्तियाँ हैं, जो आपके मनको संसारसे खींच लेती हैं। प्रपञ्च विस्मरण करा देती हैं। प्रपञ्चका विस्मरण तो प्राणायामसे भी हो जाता है और त्राटकसे

भी हो जाता है। विस्मरण माने दुनियाकी याद न रहना। तो, प्रपञ्चका विस्मरण तो होता है परन्तु यह जो संसारमें आसक्ति है, वह न प्राणायामसे छूटती है और न योगाभ्याससे छूटती है। संसारकी आसक्ति, आसक्तिसे कटती है। जैसे कहते हैं कि हीरा हीरेसे कटता है वैसे आसक्ति, आसक्तिसे कटती है।

तो, जब भगवान्‌के प्रति आसक्तिका उदय होता है तब संसारकी आसक्ति कटती है। नहीं तो थोड़ी देरके लिए ब्रह्म बनकर बैठ जाओ। उठोगे तब फिर वहीं-के-वहीं अपनेको पाओगे। थोड़ी देर समाधि लगाकर बैठ जाओ, उठोगे तो फिर वहीं-के-वहीं। थोड़ी देर प्राणायाम कर लो, थोड़ी देर यज्ञ-यागादि कर लो, लेकिन आसक्ति ज्यों-की-त्यों बनी है। यह थोड़ी देरके लिए ब्रह्मज्ञानी बननेवाले लोग हैं बातचीत करते समय धरती पर पाँव ही नहीं पड़ता है, लेकिन आसक्ति ज्यो-की-त्यों बनी रहती है, बल्कि और बढ़ जाती है। ऐसे सोचने लगते हैं कि आसक्तिमें हानि क्या है? जब आसक्तिका विषय भी झूठ ही है और आसक्ति भी झूठी ही है, यह आसक्ति करनेवाला जीवात्मा भी झूठा है तो, यह झूठा जीवात्मा, झूठे संसारसे, झूठी आसक्ति करे तो इसमें हमारा क्या बिगड़ता है ? इस वाचो युक्तिसे ये ब्रह्मचर्चा करनेवाले और ज्यादा संसारमें आसक्त हो जाते हैं और अन्याय करने लगते हैं। आसक्तिको काटनेके लिये, दुनियाकी प्रीतिको काटनेके लिए प्रीति चाहिए। एक पुरुषसे प्रीति होगी तब अन्य पुरुषोंसे आकर्षण घटेगा और उसी पुरुषके रूपमें भगवान् प्रकट होते हैं और ऐसी-ऐसी लीला करते हैं। अब इसमें भगवान्‌की धाममाधुरी, रूपमाधुरी, वेणुमाधुरी, प्रियामाधुरी और उसके बाद लीलामाधुरी।

लीला करनेमें भी बड़े मधुर हैं। मधुर माने होता है मधुका क्षरण। ऐसे तो मधुसे स्वार्थमें प्रत्यय होकर 'मधुर' शब्द बनता है।

'मधु एव मधुरम्'-जो मधु है वही मधुर है। मधु-मधु-मधु ऐसा श्रुतिमें आता है। ॐ मधु...मधु...मधु..., 'मधु वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः' ऐसा माधुर्य है, ऐसी मिठास है कि उसमें डूबो-उतराओ। मिठासका एक समुद्र है। तो लीलामाधुरीमें क्या होता है कि यह दुनियादारीके सब संस्कार छोड़ने पड़ते हैं। वहाँ एक कालमें सब काल होता है। यह दुनियादारीका एक संस्कार छूटा। क्योंकि आप मुम्बईमें प्रातःकाल देखते हैं और इंग्लैण्डमें रात्रिकाल देखते हैं, अमेरिकामें सन्ध्याकाल देखते हैं, परन्तु भगवान्के धाममें कौन-सा काल है ? एक साथ सब काल हैं। एक जगह सुबह हो रहा है, एक जगह शाम हो रही है, एक जगह दोपहर हो रहा है, एक जगह आधी रात हो रही है। जहाँ शाम हो रही है, वहाँ श्रीकृष्ण गोचारण करके आरहे हैं। जहाँ प्रातःकाल हो रहा है वहाँ गोचारण करने जा रहे हैं। जहाँ मध्याह्नकाल हो रहा है वहाँ सरोवरमें, यमुनामें स्नान कर रहे हैं। जहाँ निशीथ (अर्धरात्रि) हो रही है वहाँ शयन कर रहे हैं।

एक ही साथ सब समय है और एक ही स्थानमें सब स्थान है। आप अपने हृदयमें ही देखिये तो वहाँ गोकुल भी मिलेगा, वृन्दावन भी मिलेगा, यशोदा मैयाका महल भी मिलेगा, गोपियोंका रास चबूतरा भी मिलेगा, ग्वालबालोंके साथ खेलनेके लिए यमुनापुलिन भी मिलेगा। एक ही स्थानमें सब स्थान, एक ही कालमें सब काल और एक ही रूपमें सब रूप। कहीं श्रीकृष्ण शिशु बनकर यशोदा मैयाकी गोदमें है दूध पी रहे हैं, आप भी उनके साथ देखिये। इसमें कुछ बिगड़ता नहीं है। क्योंकि भौतिक जगत्में जैसा देश, जैसा काल, जैसी वस्तुएँ होती हैं, ऐसी जड़भावापन्न वस्तुएँ भगवान्की लीलामें नहीं होती हैं। आपके मनमें भी नहीं होती हैं। मानसिक पदार्थमें भी जड़ता इतनी उच्छृङ्खल होकर नहीं है कि हमारे काबूमें न आवे। भौतिक जगत्में जड़ता हमारे काबूमें बाहर हो गयी है। हम पत्थरको कमल

नहीं बना सकते और कमलको पत्थर नहीं बना सकते। भौतिक जगत्में जड़ता दृढ़ हो गयी है, परन्तु ध्यानके जगत्में मोमकी तरह बन जाती है कि उसमें शाम कर लें, सुबह कर लें, दोपहर कर लें, रात्रि कर लें, उसमें निकुञ्ज कर लें, महल कर लें सब एक साथ चलता है। उसमें श्रीकृष्ण शिशु हों, उसमें श्रीकृष्ण युवा हों, एक साथ ही सब हो सकता है। यह शायद आपमें-से किसीने ध्यानकी विद्या न सीखी हो तो उसकी जानकारीके लिए मैं सुना रहा हूँ।

एकबार एक आर्यसमाजी सज्जन बोले-क्योंजी 'उरमें सुन्दर श्याम गड़े'-इसका क्या मतलब होता है ? मैंने कहा-कि भाई, हृदयमें आकर श्यामसुन्दर स्थिर हो गये। वे बोले कि यह नन्हा-सा हृदय इसमें यदि साढ़े तीन हाथके श्यामसुन्दर घुसेंगे और वह भी बाँसुरी लिए हों, मुकुट लगाये हुए हों तो यह छोटा-सा हृदय फट नहीं जायेगा ? इतने छोटेसे हृदयमें श्यामसुन्दर कैसे फँसेंगे ? तो, यह जो ध्यानका जगत् है वह कभी बड़ा हो जाता है कभी छोटा हो जाता है। इसमें सब समय एक साथ होते हैं, सब स्थान एकसाथ होते हैं, सब रूप एकसाथ होते हैं। यह बड़ा होता है, वह छोटा होता है। तो ध्यानकी दुनियामें जब भगवान् लीला करते हैं तो उसमें भी तीन दशा होती हैं।

1. लीलाका दर्शन
2. लीलामें प्रवेश, और
3. लीलाका अवसर, लीलाकी सेवा

अब, लीलाका केवल दर्शन कर रहे हैं। सम्बन्धरहित लीलाका दर्शन कर रहे हैं। सम्बन्ध कोई नहीं। यह परमेश्वर है, श्रीकृष्णके रूपमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा प्रकट हुए हैं और वे लीला कर रहे हैं। ऐसी कल्पना करो, मानो मध्याह्नकाल है और श्रीराधा-श्रीकृष्ण ब्रह्मसरोवरमें स्नान कर रहे हैं। यह ब्रह्मकुण्ड है

वृन्दावनमें, श्रीरंगजीके पीछे ब्रह्मकुण्ड है। श्रीराधा-कृष्ण ब्रह्मसरोवरमें स्नान कर रहे हैं, कभी डुबकी लगाते हैं कभी ऊपर आते हैं। कमल खिले हुए हैं। ब्रह्मसरोवरमें राधारानी छिप जाती हैं तो जलकी स्वच्छताके कारण दिखायी नहीं देती हैं और यमुनाजीमें जब श्यामसुन्दर छिप जाते हैं तो जलकी श्यामताके कारण श्यामसुन्दर दिखायी नहीं पड़ते। जब श्यामसुन्दर दिखायी नहीं पड़ते तो राधारानी व्याकुल हो जाती हैं और जब राधारानी दिखायी नहीं पड़ती हैं तब श्यामसुन्दर व्याकुल हो जाते हैं। यह जो संयोग और वियोगके रसका जो बारम्बार आना-जाना है यह लीलारसका आस्वादन है। तो, आप तटस्थ होकर किनारेपर बैठकर इस लीलाको देख रहे हैं, यह दर्शनका आनन्द हुआ।

और, आप भी सरोवरमें उतर गये उनके साथ। तब ठाकुरजी कहते हैं कि वह कमल बड़ा सुन्दर है। देखें कौन पहले वहाँ पहुँचता है? श्रीराधारानी तैरकर वहाँ पहुँचना चाहती हैं, श्रीश्याम-सुन्दर तैरकर वहाँ पहुँचना चाहते हैं। आपसमें एक-दूसरेका हाथ पकड़ लेते हैं कभी और कभी मिल जाते हैं और उस कमलके पास पहुँचनेका प्रयास करते हैं। तो, इस लीलाको देखना और इस लीलामें सम्मिलित हो जाना। और सेवा करना तो, अभी स्नान करके निकलेंगे तो उनके लिए वस्त्र आदि सजा करके रखना। यह लीलामें सेवाका भाव है।

सम्बन्ध मानना कि ये हमारे मित्र हैं, ये हमारे प्रियतम हैं, ये हमारे प्रेयान् हैं ये जितने सम्बन्ध भगवान्‌के साथ कायम किये जायेंगे वे संसारके सम्बन्धको कम करेंगे। संसारकी आसक्तिको घटावेंगे और इन्द्रियोंका जो नित्य-निरन्तर विषयोंका दर्शन है उसे कम करेंगे। भाई, कहीं चलना हो तो रास्तेसे चलो। बेरास्तेसे चलनेमें बड़ा खतरा है भला!

एकबार मैं चित्रकूट गया तो कामदगिरिकी परिक्रमा करनेके बाद सायंकाल हो गया था। तो, देखा—वहाँसे चित्रकूटका बाजार, धर्मशाला सब दिखायी पड़ता था। तो, मैंने सोचा रास्तेसे कौन जाय? बेरास्तेसे चले! ऐसे सीधे ही उतर चलो, अब सीधे चले तो महाराज एक ऐसे खड्डमें गये कि जहाँसे न वह बाजार दिखे, न कामदगिरि दिखे। कि अब किधर जाय दाँयें जाय कि बाँयें जाय? दिग्भ्रम हो गया। दिशाभ्रम हो गया। रास्ता छोड़ देने पर दिशा भ्रम हो जाता है। तो, जो लोग संसारकी आसक्ति छोड़े बिना ही निर्विषय होनेका प्रयास करते हैं उनकी दशा क्या होती है ? इसके लिये आपको एक छोटी-सी बात सुना देते हैं।

एकदिन मथुराके चौबे लोग जमुनाजीमें छोटी-सी नाव पर बैठ गये। भंग भवानीका सेवन हुआ। चाँदनी रात थी, उन लोगोंने सोचा कि चलो नावको खेकर आगरातक ले चलें आज। आगरा नहीं तो ब्रह्माण्ड घाट तक तो ले ही चलें। अब उन लोगोंने भाँगके नशेमें नाव खेना शुरु किया। रातभर नावका डाँड चलाते रहे। प्रातःकाल हुआ तब लोग तो घाटपर स्नान करनेके लिए आने लगे। तो उन्होंने पूछा कि भाई, यह कौन शहर है ? हमलोग आगरा पहुँच गये क्या? तब लोगोंने बताया कि यह तो मथुराका विश्रामघाट है। अरे! रातभर हमने नाव चलायी और अब भी मथुरामें है। तुमलोग हँसी-मजाक करते हो? लोगोंने बताया कि नहीं भाई, हम हँसी-मजाक नहीं करते हैं यह मथुरा ही है। आपकी नाव अभी मथुरासे आगे नहीं गयी। उन्होंने कहा कि क्या हुआ ? नशा ही उतर गया। देखते हैं तो, नावका लंगर वहीं पड़ा हुआ है, उठाया ही नहीं था।

जो लोग संसारसे आसक्ति रखते हैं उनका लंगर तो संसारमें गड़ा हुआ है और कोशिश करते हैं कि हमारी नाव आगरा पहुँच जाय। हमें ब्राह्मी स्थिति मिल जाय। तो, लंगर उठाये बिना जो लोग

प्राणायाम करते है, लंगर उठाये बिना जो लोग ब्राह्मीस्थितिमें पहुँचनेकी कोशिश करते हैं उनका डाँड चलाना तो होता है रातभर; परन्तु लंगर वहीं, नाव वहीं और वे भी वहीं-के-वहीं। संसारसे एक इंच भी ऊपरकी ओर वे लोग नहीं जा सकते-जिनकी आसक्ति संसारमें है। इसलिए, उनको भजनमें भी संसार ही दिखायी देता है। तो, यह जो आसक्ति है, लंगर गिरा हुआ है इसको उठानेका उपाय क्या है ? कि इसको उठानेका उपाय है-

कश्ती खुदा पे छोड़ दूं, लंगर को तोड़ दूँ
एहसान नाखुदा (नाविक) का उठाये मेरी बला।

मैं तो गिरिधर हाथ बिकानी
होनी होय सो होय रे!

इस तरहसे यह लंगड़का उठाना यही हुआ कि 'मैं तो गिरिधर हाथ बिकानी होनी हो सो होय रे'-संसारकी आसक्ति छोड़कर भगवान्के साथ प्रेम करो। प्रेममें भी ऐश्वर्य बुद्धिसे जहाँ प्रेम होता है कि यह साक्षात् परमेश्वर हैं, यह साक्षात् जगत्कारण हैं। वहाँ एक गुण आता है भक्तके जीवनमें। वह गुण क्या आता है ? कि विनय आता है।

ईश्वरबुद्धिसे भगवान्की उपासना करो तो तुम्हारा अभिमान घटेगा, विनय बढ़ेगा और आत्मबुद्धिसे परमेश्वरमें प्रेम करो तो तुम्हारी बहिर्मुखता मिटेगी, अन्तर्मुखता आजायेगी। और, मित्र बुद्धिसे भगवान्में प्रेम करो। तो कभी तुम्हारे जीवनमें नैराश्य नहीं आवेगा। निराश नहीं होओगे। हर समय, 'युवा आशिष्ठो द्रढिष्ठः'-तुम्हारी जवानी बनी रहेगी। आशापूर्तिका विश्वास बना रहेगा। 'आशाबन्धः'-आशा बँध जायेगी। नैराश्य टूट जायेगा। प्रभुसे मिलनेकी उत्कण्ठा बढ़ जायेगी। और यदि वात्सल्यभाव मनमें

आजाय कि प्रभु हमारे पुत्र हैं ऐसा सम्बन्ध मनमें आ जाय तो प्रभुके प्रति हितभावनाका उदय हो जायेगा। हर समय उनका ख्याल रखनेका मनमें आवेगा। उनको यह खिलाना है, यह पिलाना है, अब सुलाना है। सेवाका भाव मनमें आजायेगा। और यदि प्रियतमका भाव आजाय, प्रभुके प्रति ध्यानमें इनेकी आवश्यकता होती है। आप लोगोंमें-से बहुतोंने ध्यानकी विद्या सीखी होगी, यह मानसी सेवा ध्यानका प्रथम सोपान है।

अपने भावके अनुसार सद्गुरु लोग भाव देते हैं। मन्त्र सुनाना दूसरी बात है। मन्त्र सुनाते-सुनाते तो हमको कितने वर्ष हो गये। हम सात वर्षके थे, हमारे पिताकी मृत्यु हो गयी थी। तो हमारे बाबाके पास लोग आते कि हमारी नयी बहू आयी है इसको मन्त्र सुना दो, इसका ब्याह होना है इसको मन्त्र सुना दो। तो, हमारे बाबा बड़े बुद्धिमान थे, उनको लगा कि हम चेला बनावेंगे तो हमारे मर जानेके बाद ये कहेंगे कि हमारे गुरुजी तो मर गये। तो, हमसे मन्त्र सुनवाते थे कि यह अभी बच्चा है सात वर्षका और जब यह बड़ा होगा तब इसके चेले बहुत रहेंगे। तो, हमसे मन्त्र सुनवाते थे। तो, पहले पूछना होता था कि आपलोग शिवमन्त्र लेंगे कि विष्णुमन्त्र लेंगे? क्योंकि हमलोग तो पंचदेव उपासक, स्मार्त हैं। हम तो शिवजीका भी ध्यान करें और विष्णु भगवान्‌का भी ध्यान करें।

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।।

(श्रीपशुपत्यष्टकम् ध्यानम्)

हमारे तो शिवजीका भी ध्यान चलता है। खाने-पीनेमें जो ढीले होते वे प्रायः शिवजीका मन्त्र लेते थे। गाँवकी बात आपको

सुनाता हूँ। खाने-पीनेमें जो सावधान होते थे वे लोग विष्णुका मन्त्र लेते थे। मन्त्र सुनानेवाली बात दूसरी है, उनको तो कुछ सिखाना नहीं पड़ता, मन्त्र सुना दिया तो उनका काम बन गया। और, जो लोग ध्यानकी विद्याको सीखना चाहते हैं उनको ऐसे सम्बन्धकी विद्या बतानी पड़ती है। उनको सम्बन्धसे प्रेम करना और गौरवसे प्रेम करना भगवान्‌को, यह बताना पड़ता है।

प्रेममें पहले-पहल एक सम्बन्धकी आवश्यकता होती है। तो, वृन्दावनमें तो ऐसे ही सिखा देते हैं।

दुकूलं बिभ्राणामथकुचयुगे कञ्चुकपटं
प्रसादं स्वामिन्याः स्वकरतलदत्तं प्रणयतः।
क्षितां नित्यं पार्श्वे विविधपरिचर्यैकचतुरां
किशोरीमात्मानं किमपि सुकुमारीं नु कलये।।

श्रीराधा-कृष्ण नित्य-निकुञ्जमें विराजमान होते हैं, हम भी एक किशोरी हैं, सखी हैं उनकी।

सन् 1935में हमको किसी महात्माने यह बताया था। मैं साड़ी पहने हुए हूँ। लड़कीके रूपमें हूँ। और स्वामिनी श्रीराधारानी स्वयं प्रसन्न होकर मुझे प्रसाद दे रही हैं। और मैं उनकी सेवामें संलग्न हूँ। कभी उनके फूलको ठीक कर देती हूँ। कभी उनके आँचलको ठीक कर देती हूँ। कभी उनके बालको ठीक कर देती हूँ। 'किशोरीमात्मानम् किमपि सुकुमारीम् नु कलये'-तो मेरा नाम 'प्रेमकली' है, 'प्रेमलता' है, सेवालता है, स्नेहलता है। ऐसे नाम रख देते है, उम्र बना देते है, रंग बना देते हैं।

गुरु लोग वस्त्र पहना देते हैं और भगवान्‌की सेवामें सखा बनाकर, सखी बनाकर उनकी सेवामें लगा देते है। यह जो सेवामें रुचि होती है, उनके सिरमें चन्दन ठीक-ठीक लगाना, गोरोचन ठीक-ठीक लगाना। उनके बाल सँवारना, उनके मुकुटको ठीक

करना। उनके कपोल पर चित्रकारी, बेल-बूटा बनाना। वे हमारी गोदमें सिर रखकर सो गये और हम उनके कपोलों पर बेल-बूटा बना रहे हैं। कहीं गोरोचनसे, कहीं केसरसे, कहीं कस्तूरीसे नाना रङ्ग-बिरङ्गी बेल-बूटे बना रहे हैं। कभी-कभी उनको रोमांच हो जाता है। कभी-कभी हमारे प्रेमको देखकर भगवान्‌को कँपकपी हो जाती है! प्रेम देखकर काँप जाते हैं तो बेल-बूटा बिगड़ा जाता है। कभी आँख खोलकर देखने लगते है तो कहना पड़ता है कि अभी आँख बन्द रखो नहीं तो हमसे यह नहीं बनेगा। कभी उनको लिटाये-लिटाये ही कुछ खिला देते हैं, पिला देते है, प्यार कर देते हैं। इस तरह ध्यान करनेके लिए भी युक्ति करनी पड़ती है। तो, केवल् दर्शन करनेका ध्यान, तटस्थभावसे और कभी स्वयं सखी होकर उनके साथ नृत्य-गान करना, कभी ग्वाल-बाल होकर उनके साथ लड़ना-भिड़ना, कुश्ती करना, उछलना-कूदना। इस तरह भगवान्‌का दर्शन, भगवान्‌की लीलामें सम्मिलित होना-'सम्मिलनी'। भगवान्‌के साथ मिलन होना। कोई कुटादिमें मानते हैं 'मिल्' धातुका, कोई नहीं मानते हैं। तब मिलनी शब्द बनता है-सम्मिलनी। नहीं तो सम्मेलन शब्द होता है। यह देखो, जहाँ ईश्वरकी सेवा प्राप्त होती है, उसमें इतना स्वाद आता है। जबतक स्वाद नहीं आता है, तबतक तन्मयता नहीं होती है।

योगी लोग केवल सत्ताको उभारते हैं और विवेकी लोग केवल चेतनताको उभारते हैं। और भक्तलोग सच्चिदानन्दमें छिपे हुए आनन्दको प्रकट करते हैं, आनन्दका आविर्भाव करते हैं। इस प्रकार ध्यानकी युक्ति अपनी-अपनी, सबके लिए एक ध्यान नहीं होता है। यह नहीं कि पंगतमें बैठाकर सबको भोजन कराना हो तो करा सकते हैं, लेकिन उसमें भी किसको दलिया चाहिए और किसको लड्डू चाहिए, पूड़ी चाहिए, खीर चाहिए, इसका ध्यान रखना पड़ता है। एक

पंगतमें बैठाकर ध्यान कराना नहीं होता है। व्यक्तिगत बैठकर, जो अपने मन्त्रके अनुरूप, गुरुदीक्षाके अनुरूप, सम्प्रदायके अनुरूप ध्यानकी पद्धति सीखते हैं उनके दुश्चरित्रका निवारण करता है ध्यान, उनकी दुर्वासनाका निवारण करता है ध्यान, उनकी संसारासक्तिका निवारण करता है ध्यान, उनके संसारिक सुख-दुःखका निवारण करता है ध्यान और उनको परमात्मामें ले जाकर स्थित करता है ध्यान।

ध्यान निर्गुणका भी होता है। सिर्फ 'निर्गुण कौन देश को वासी' कहनेसे छुट्टी नहीं मिलती है। ध्यान सगुण निराकारका भी होता है, सगुण साकारका भी होता है। यदि कोई कहे कि निर्गुणका ध्यान कल्पित है या साकारका ध्यान कल्पित है, सगुणका ध्यान कल्पित है तब हम उसको कहेंगे कि तुम जरा अकल्पित ध्यान करके बताओ तो! अकल्पितमें ध्यान कहाँ? जब ध्यान होगा, तो, सगुणका भी, निर्गुणका भी, साकारका भी एक ही पंगतमें होगा। निर्विषयताका ध्यान भी उसी पंगतमें, निर्गुण-निराकारका ध्यान भी उसी पंक्तिमें होगा। वह भी मनका एक आकार बनाकर ही देखना पड़ेगा। तो, यह विश्रामका ध्यान, आरामका ध्यान भी मनका आकार ही है। द्रष्टाभावका ध्यान, और असङ्गताका ध्यान भी मनका आकार ही है।

ऐसी स्थितिमें जैसा रोग है उसके अनुसार दवा करनी चाहिए। यदि आपके जीवनमें कोई दुश्चरित्रता है तो उसको दूर करनेके लिए वैदिक कर्मका अनुष्ठान और वैदिक धर्मके अनुसार ध्यान करना चाहिए। और यदि आपके जीवनमें दुश्चरित्रता नहीं है केवल दुर्वासना है तो इसके लिए पाञ्चरात्रके अनुसार, भागवतके अनुसार, वासनाको भगवान्‌में जोड़नेके लिये भगवान्‌का ध्यान करना चाहिए और, यदि आपके मनमें दुर्वासना भी नहीं है केवल चंचलता है तो योगकी रीतिसे ध्यान करना चाहिए। और यदि चंचलता भी नहीं है केवल जिज्ञासा है तो वेदान्तकी रीतिसे आपको श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना

चाहिए। और यदि आपके मनमें जिज्ञासा भी नहीं है, वह भी पूर्ण हो चुकी है तो अपने सहज मनको इधर-उधर क्यों जाने देते हैं ? आइये, शुकदेवजीके पीछे आपको ले चलें।

आत्मारामाश्चमुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिम् इत्थंभूतगुणो हरिः।

बोले-भाई अद्वैतका बोध हो गया। अब हमको यह द्वैतके ध्यानकी क्या जरूरत है ? तो, भले मानुष द्वैतका भान तो होता है, हाँ! होता है। क्योंकि अद्वैतज्ञान द्वैतके भानका विरोधी नहीं है। इसमें राग और दुःख भी मालूम पड़ते हैं ? हाँ! पड़ते हैं। इसमें द्वेष और सुख भी मालूम पड़ते है कि हाँ! पड़ते हैं। मालूम पड़ते हैं! तो तुम चुपचाप ब्रह्म होकर, पत्थर होकर क्या करोगे ? शान्त होकर क्या करोगे ? आओ न जरा खेलो उनके साथ। द्वेष और दुःखको मिटा दो, राग और संसारी सुखको मिटा दो। इसके लिये क्या करें ? तो आओ हम बताते है कि क्या करें ?

द्वैतं बन्धाय बन्धात् प्राक्प्राप्तेबोधेमनीषया
भक्त्यर्थं कल्पितम् द्वैतम् अद्वैतादपि सुन्दरम्।

यह द्वैत जो है वह ज्ञानसे पहले बन्धनका हेतु है और ज्ञान हो जाने पर 'मनीषया'-जान-बूझकर जहाँ हम द्वैत बना रहे हैं वहाँ जान-बूझकर बनाया हुआ द्वैत जो है वह तो महाराज, इतना मजेदार होता है कि जो मजा अद्वैतमें न आवे वह मजा द्वैतमें आवे। क्योंकि अपना बनाया हुआ है। अपनी बनायी हुई रसोई, यदि दालमें नमक ज्यादा हो जाय तब भी अच्छी लगती है, रोटी जल जाय तब भी अच्छी लगती है, अपना बच्चा काना-कूबड़ा हो तब भी अच्छा लगता है। जब अद्वैतमें स्थित होकर द्वैतका निर्माण करते है तब अपनी कारीगरी इतनी अच्छी लगती है-इतनी अच्छी लगती है कि उसमें मजा ही आजाता है।

सर्वेश्वरस्तुसुधिया गलितेपिभेदे
भावेन भक्तिसहितेन समर्चनीयः।
प्राणेश्वरश्चतुरयामिलितेऽपि चित्ते
चैलाञ्चल-व्यवहितेन निरीक्षणीयः।।

चतुर नायिका, जैसे एक स्त्री है बड़ी चतुर है, बड़ी निपुण है, बड़ी विदग्ध है, उसका अपने प्राणेश्वर पतिसे मन मिल गया है। ऐसा मन मिला है कि तन-से-तन मिला, साँस-से-साँस मिली, आँख-से-आँख मिली, त्वचा-से-त्वचा मिली, दिल-से-दिल मिला कोई परदा उस प्रेयसी और प्रेमीके बीचमें नहीं है। पत्नी और पतिके बीचमें कोई परदा नहीं है; लेकिन फिर भी जब लोगोंके बीचमें मिलना होता है तब दोनों वस्त्र पहनके ही मिलते हैं। यह नहीं कि हम एकान्त कमरेमें नंगे मिल चुके हैं तो लोगोंके बीचमें भी नंगे मिलें, ऐसी बेवकूफी वह कभी नहीं करते हैं। 'चतुरया मिलितेऽपि चित्ते चैलाञ्चलव्यवहितेन निरीक्षणीयः।' इसी प्रकार स्वरूपमें अद्वैत होनेपर भी 'चतुरया मिलितेऽपि चित्ते'।

हम मोकलपुरके बाबाके साथ कभी-कभी चलते थे। महाराज! पूर्णता तो उनके पीछे-पीछे डोलती थी। ऐसे मस्त महात्मा थे, परन्तु कहीं मन्दिर पड़ जाय रास्तेमें तो दोनों हाथ उठाकर बोलते थे-'पाय लागी महाराज'। देवताको ऐसा बोलते थे। तो, चाहे जितना भी अद्वैतका अनुभव हो जाय, ज्ञानी लोग भी व्यवहारमें सूर्यको नमस्कार करते हैं, विष्णु-शिवको नमस्कार करते है। उनके हृदयमें प्रीति-भक्ति होती है उसको देखकर दूसरे लोग प्रेम भक्ति करते हैं। लोक संग्रहार्थ करते हैं।

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा।।

इसीलिए मुष्यको अपना मन भगवान्‌की ओर लगाना

चाहिए। सम्पूर्ण जगत्के उपादानकारण हैं भगवान्, निमित्तकारण हैं भगवान्। उन्होंने ही बनाया, वही बने हुए हैं, सबसे बड़े हैं वे, सबसे सुन्दर हैं वे, सबसे मधुर हैं वे, सबसे प्यारे हैं वे हमारे प्रियसे भी प्रिय, प्राणसे भी प्राण, जीवन-सर्वस्व, हृदयेश्वर हैं वे भगवान्। यह सोचकर उन्हींके साथ सम्बन्ध बने, उन्हींका ध्यान हो, उन्हींसे प्यार हो और दुनियाका यह चिन्तन, दुनियाका यह स्फुरण, दुनियाकी आसक्ति सब-की-सब छूट जाय। ध्यानमें यह सामर्थ्य है। ज्ञानमें केवल अज्ञान छुड़ानेका सामर्थ्य है दूसरा सामर्थ्य नहीं है और ध्यानमें प्रपञ्च छुड़ानेका सामर्थ्य है। लेकिन यदि महत्त्वबुद्धिसे, उपनिषद्की रीतिसे, सद्‌गुरुसे प्राप्त और सम्प्रदायके क्रमसे माने मनमाने ढंगसे न हो। मनमाने ढंगसे किया हुआ ध्यान जो है वह मनको संसारसे उठा नहीं सकता है। क्योंकि वह मनका माना हुआ है, मन जब चाहे तब उसको छोड़ देगा। और, सद्‌गुरु, सम्प्रदाय और शास्त्रसे प्राप्त होगा तो मन उसको तत्काल नहीं छोड़ सकता। इसलिए ध्यानमें सामर्थ्य आता है शास्त्रसे और सम्प्रदायसे।

सम्प्रदाय माने और कुछ नहीं एक क्रम स्वीकार करना कि इसके बाद यह, इसके बाद यह। क्रम होता है सम्प्रदायमें कि, कहीं मूलाधारसे आज्ञाचक्र सहस्रारपर्यन्त-अमनापर्यन्त होता है और कहीं वैखरी वाक्, मध्याभावाक् पश्यन्ति वाक् और परावाक्के क्रमसे होता है। कहीं किसी चक्रसे होता है कहीं किसी चक्रसे होता है। क्रम जो है वह सम्प्रदायके अनुसार स्वीकार करके आप अपने सुरतको अपने सद्‌गुरुके शब्दमें लगाकर, वैदिक शब्दमें लगाकर अपनी सुरतको परमात्माके साथ एकमें जोड़ सकते हैं, लगा सकते है। अब और कल सुनावेंगे।

●

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

जबतक मनुष्यको मृत्युका भय लगता है, अपनी मृत्युका या दूसरोंकी मृत्युका। मृत्युका भय लगना अभिनिवेशका लक्षण है। अभिनिवेशका अर्थ यह है कि अपनी पूर्णताको छोड़कर, विभुताको छोड़कर, असंगताको छोड़कर चारों ओरसे अपनेको समेटकर देहभावमें सीमित हो जाना इसका नाम 'अभिनिवेश' होता है। 'अभि' माने चारों ओरसे निवृत्त होकर शरीरमें निविष्ट हो जाना। या 'अभि' माने पूर्णरूपसे शरीरमें निविष्ट हो जाना इसका नाम अभिनिवेश होता है। यह मृत्युका डर अभिनिवेशका लक्षण है। यह समाधि या ध्यान्का लक्षण नहीं है। यह सबसे बड़े दोषका लक्षण है मौतका डर। मौत होना बुरा नहीं है, मौतसे भी बुरा है मौतका डर। यह हमारे योगशास्त्रका निर्णय है। इसमें कुछ शरीरसे धर्म करो तब तुम्हारा कल्याण है और कोई उपाय नहीं है।

अब यदि दूसरोंके प्रति राग-द्वेष बहुत है, आसक्ति बहुत है। भगवान्का भजन करते-करते भी यही चाहते हैं कि हमको यह मिले, हमारा यह बना रहे, यह रिश्तेदार-नातेदार बना रहे और वह दुश्मन मर जाय। जब इतना राग-द्वेष अभी बना हुआ है तो अन्तःकरण बहुत ही अशुद्ध है। यदि किसीको देखकर अपने दिलमें जलन होती है और वह खटकने लगता है तो समझना चाहिए कि हमारे अन्तःकरणमें द्वेषका बीज जरूर है। तो, विवेकसे राग-द्वेष दोनों ढीले पड़ते हैं और ध्यानसे दोनों धीरे-धीरे निवृत्त होने लगते हैं।

भक्तिका कहना यह है कि यदि भगवान्से राग किया जाय आसक्ति संसारसे न रहे, भगवान्से हो जाय-रामसे, कृष्णसे,

शिवसे, तीर्थंकरसे, बुद्धसे, अपने सद्गुरुसे यदि रागकी वृद्धि हो, आसक्तिकी वृद्धि होय तो संसारकी आसक्ति कटती है। और जब राग पूर्ण होता है तब द्वेष उसमें विलीन हो जाता है। अपने अन्तःकरणको राग-द्वेषसे रहित होनेके लिये आप तबतक प्रयत्न करें जबतक मृत्युका भय दूर न हो जाय। और, दूसरी वस्तुओं और व्यक्तियोंसे जो लगाव है कि उनके बिना हम नहीं रह सकते, वह जबतक टूट न जाय और जबतक दूसरोंको देखकर मनमें चिढ़ होती है तबतक अन्तःकरणको राग-द्वेषसे रहित करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

असलमें हजार बुराई अपने अन्दर रहती है; परन्तु वह दिखती नहीं है। 'नरः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति' अपनी बेटीकी भूल नहीं दिखती है, माँकी भूल नहीं दिखती है, अपने भाईकी भूल नहीं दिखती है, शरीरकी भूल नहीं दिखती है दूसरोंकी भूल दिखती है। तो, वह दूसरोंकी भूल नहीं है असलमें उसके प्रति जो अपनी सहानुभूति नहीं है, उपेक्षाका भाव है उसके कारण दूसरेमें भूल दिखती है। हजार-से-हजार और उससे ज्यादा भूल तो अपने अन्दर है। आदमीका सरसों बराबर छेद हो तो दिख जायेगा और अपनी आँखमें बेलके बराबर कोई चीज निकल आवे तब भी मालूम नहीं पड़ता है।

तो, ध्यान करनेके लिये भय छोड़कर और द्वेष छोड़कर बैठना चाहिए। दुश्मन तो छूटा ही हुआ है और मौत तो शरीरकी होती ही है। जब तुम पञ्चभूतसे एक बनोगे तब तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी, जब तन्मात्रासे एक हो जाओगे तो राग-द्वेष नहीं होगा और समष्टि अहंकारसे एक हो जाओगे तो अस्मिता नहीं होगी, और अपने असंग स्वरूपमें बैठ जाओगे तो अविवेक नहीं रहेगा। यह जो अपनी वर्तमान स्थिति है उसका भी कुछ निरीक्षण, कुछ परीक्षण, कुछ समीक्षण करना चाहिए। अन्धे आदमी ध्यान भी करेंगे तो ध्यानसे

उठनेके बाद फिर गाली बकना शुरू करेंगे, वही चोरी–चमारी करना शुरू करेंगे, वही दूसरोंको सतावेंगे। इसीसे जो भूमिका प्राप्त नहीं हुई है मनुष्यको, उस भूमिकाका अपमान करके जब वह बैठता है तो 'अलब्ध–भूमिकत्व' नामक योगविघ्नकी उसको प्राप्ति होती है। जिस भूमिकामें वह पहुँचा नहीं है, अपनेको मान बैठा है कि हम इस भूमिकामें पहुँच गये।

ध्यानकी गति जरा सूक्ष्म है। अभी उसको सुनाता हूँ आपको। दो तरहके मनुष्य प्रायः संसारमें होते हैं। एक तो वह जो बाहरकी सुन्दरता और मधुरता देखकर जिनका मन पिघल जाता है। उनको द्रुतचित्त कहते हैं। पूरी तरहसे नहीं पिघलता है। एक चीजको देखकर मन पिघला। अरे! भाई, इस संगीतको सुना बहुत सुन्दर स्वर है। और उधर सुन्दरता देखकर गया कि आओ, सुन्दरताको निहारें! टी.वी.में कभी बोलनेवालेकी आवाज सुनते हैं, तो कभी बोलनेवालेका रूप निहारते हैं। तुम्हारा दिल रूपको देखकर पिघला है कि आवाज सुनकर पिघला है इसपर तुम स्वयं विचार कर लो। यह बात हमको मालूम है!

हमारे एक मित्रके लड़केको पूछा गया कि तुम किसके साथ ब्याह करोगे ? अट्ठाईस वर्षका लड़का था, पढ़ा–लिखा व्यापारी था साधारण नहीं था। उसने कहा यह टी.वी. पर जो सब बात समझानेके लिए जो लड़की आती है मैं इसके साथ ब्याह करूँगा। तो, आवाजमें तुम्हारा प्रेम है कि सुन्दरतामें तुम्हारा प्रेम है कि उसी समय कोई चटपटा, मसालेदार, नमकीन पदार्थ आगया तो उसकी ओर मन खिंच गया और उसके लिए मुँहमें पानी आगया। तो तुम्हारा दिल बात–बातमें पानी–पानी हो जाता है, संसारकी वस्तुओंके लिये। तो, वहाँसे उसकी रक्षा करनेकी, उसको बचानेकी आवश्यकता है। बात–बातमें चिढ़ जाता है, जगह–जगहमें फँस जाता है, जगह–

जगहमें दुश्मनी कर बैठता है। तो, इसके लिये मनको एक खूँटेमें बाँधनेकी आवश्यकता है। वह खूँटा, वह आश्रय, वह आलम्बन जो महान् हो, जो पवित्र हो, जो स्थायी हो, जो जगत्कारण हो, जो शक्तिशाली हो ऐसे एक आलम्बनकी आवश्यकता पड़ती है और उसीको हम लोग ईश्वर कहते हैं, उसीका नाम परमेश्वर होता है। इसमें अपने ध्यानको लगाना चाहिए।

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि दुनियाकी कोई चीज देखकर उनका मन नहीं पिघलता है। ऐसे लोग भी होते हैं। तो, उनको सौन्दर्य-माधुर्यका आलम्बन लेकर या प्रेम करके अपने चित्तको स्थिर करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। वे त्यागके द्वारा ही अपने चित्तको स्थिर कर सकते हैं। असंगताका बीज वैराग्यमें रहता है। यह व्यवहारिक है कि संसारमें किसीसे राग-द्वेष न होना। और, उसका फल क्या है ? अपने असंग स्वरूपमें स्थिर होना।

यदि आपका मन ढिल-मिल है, दुनियामें यहाँ गिरता है, वहाँ गिरता है। कहीं ठीक ढंगसे बैठता नहीं तो इसको ठीक ढंगसे बैठानेके लिए यत्न करना चाहिए। और, दुनियामें कहीं फँसता नहीं है तो आओ! आपको पाँच मिनटका ध्यान सुनाता हूँ।

संसारके सभी पदार्थ इन्द्रियोंके द्वारा मालूम पड़ते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध काहेसे मालूम पड़ते हैं ? कि इसी शरीरमें जो पाँच छेद हैं इन्द्रियोंके उनके द्वारा मालूम पड़ते हैं। तो, यदि विषयोंमें आपकी प्रीति नहीं है, उनके लिए आपका मन पिघलता नहीं है तो आप विषयोंकी ओर मत देखिये इन इन्द्रियोंकी ओर देखिये। आँख, कान, नाक, जीभ यहाँ अपने मनको ले आइये। विषय दृश्य हैं, इन्द्रियाँ द्रष्टा हैं। और इन्द्रियाँ दृश्य हैं और मनोवृत्तियाँ दृष्टा हैं। यह शब्दाकारवृत्ति, यह स्पर्शाकारवृत्ति, यह रूपाकारवृत्ति, यह रसाकारवृत्ति यह गन्धाकारवृत्ति और ये वृत्तियाँ बदलती रहती हैं तो

ये दृश्य हैं और आप एकरस दृष्टा है। आप स्वयं कभी दृश्य नहीं होते। जब आप असंग द्रष्टाके रूपमें बैठकरके मनोवृत्तियोंको, इन्द्रियवृत्तियोंको, विषयवृत्तियोंको देखते रहेंगे, विषयवृत्तियोंको इन्द्रिय-वृत्तियोंमें, इन्द्रियवृत्तियोंको मनोवृत्तियोंमें और मनो-वृत्तियोंकी चंचलतामें भी आप अलग रहकर उनको देखते रहेंगे। तो, त्वम् पदार्थके शोधनमें बड़ी भारी मदद मिलेगी। और वेदान्त झट कह देगा 'तत् त्वम् असि'। '**उपाध्यसंसृष्टत्वं ईश्वरत्वम्**' आप ईश्वर हो जायेंगे। कैसे ईश्वर होंगे ? कि जब उपाधिसे संसृष्ट नहीं होंगे।

वह राजा क्या जिसके ऊपर रानी हावी हो गयी ? बेटेने कहा यह काम ऐसे करना पड़ेगा, सेनापतिने कहा ऐसा करना पड़ेगा, मन्त्रीने कहा ऐसा करना पड़ेगा। तो, वह राजा नहीं रहा वह तो नौकर हो गया। तो, राजा किसको बोलते हैं ? कि जो रानी, बेटे, सेनापति, मन्त्री और धर्माध्यक्षके दबावमें आकर गलत काम न करे उसको राजा कहते हैं। आप अपने शरीरके भीतर महाराजा बनकर बैठ गये तब ? जब आप विषयोंके चक्करमें, इन्द्रियोंके चक्करमें, वृत्तियोंके चक्करमें फँसते नहीं हैं। उपाधिसे असंसृष्ट होना ही ईश्वरताकी अभिव्यक्ति है। 'उपाध्यसंसृष्टम् ईश्वरत्वम्'। ईश्वर किसको कहते हैं ? जो उपाधिसे संसृष्ट न होय।

कल जो मैंने सुनाया था व्यतिरेकभाव आत्मामें स्थिति है और अन्वयभाव ईश्वरमें स्थिति है। आप ईश्वर होकर पञ्चभूतोंमें परिव्याप्त हो रहे हैं। उनके रूपमें हो रहे हैं। और ब्रह्मभावमें न अन्वय है और न व्यतिरेक है। उसमें न ईश्वरत्व है न जीवत्व है दोनोंसे विलक्षण है।

आपके मनमें यदि संसारमें कहीं राग-द्वेष नहीं है तो आप ध्यानकी यह पद्धति स्वीकार करें। विषयोंसे अलग इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंसे अलग मनोवृत्तियाँ, मनोवृत्तियोंसे अलग आप और आप

बिलकुल असंग ज्ञानमात्र और आपकी असंग ज्ञानमात्रता साक्षात् ब्रह्मस्वरूप। आप इसका अभ्यास करें। तो अभ्यास कैसा ? तो, अभ्यास माने दोहराना। पहले शब्दको ही दोहराइये। कोई हर्ज नहीं है उसमें। 'असङ्गो अहम्' 'अरङ्गो अहम्' 'अभङ्गो अहम्' 'अनङ्गो अहम्'। आप, दोहराइये इसको, 'शब्दानुविद्धध्यान' होगा। आप अपने स्वरूपका ध्यान करेंगे, उसमें शब्द जुड़ा रहेगा। शब्दके साथ दृष्टि भी जोड़ दीजिये। तो, शब्द और दृष्टि दोनों। फिर दृष्टि रहे शब्द न रहे ऐसा। पहले शब्द रहता है दृष्टि नहीं रहती, फिर शब्द और दृष्टि दोनों हो जाते हैं। फिर शब्द नहीं रहता, दृष्टि रहती है और फिर शब्द और दृष्टि दोनों नहीं रहते हैं। आप अपने स्वरूपमें बैठ जाते हैं।

आपको ध्यानकी पद्धति बतायी जिनके चित्तमें विषयोंके प्रति प्रवाह नहीं है और संसारमें कहीं राग-द्वेष नहीं है, वह सबकुछ छोड़कर अपने स्वरूपमें बैठ सकते हैं और उठने पर भी उनका तादात्म्य नहीं होगा। तो आप 'शब्दानुविद्ध' होकर माने वृत्तिको शब्दानुविद्ध करके या दृष्टिसे अनुविद्ध करके और दोनोंसे अनुविद्ध करके और दोनोंसे अननुविद्ध करके चारों प्रकारसे आप अपने असंग द्रष्टा स्वरूपमें बैठकर केवल देखते रहिये। न कहीं दृश्यमें 'मैं' है और न मेरा है। वेदान्त कहेगा कि भाई जब तुम किसीसे एक नहीं हो रहे हो तब तुम तो देश, काल, वस्तुसे परे साक्षात् परब्रह्मपरमात्मा हो। तुम्हारे सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

परन्तु, यदि आपका चित्त अद्रुत न हो। द्रवित होता हो विषयोंके लिए तो आपको चाहिए कि आप अपने मनको संसारके विषयोंके लिए नहीं, विषयको बदल दें। यह ध्यान कोई शौक नहीं है, ध्यान साधना है। कहीं जाकर कौतूहलवश होकर और गा लिया, बजा लिया, नाच लिया इसका नाम ध्यान नहीं होता है। आप बेहोश हो गये, गिर पड़े, नंगे हो गये इसका नाम ध्यान नहीं होता है।

ध्यान उसको कहते हैं कि जो ध्यानस्थलसे बाहर निकलने पर भी आपके चित्तको ऐसा काबूमें कर ले कि कहीं राग-द्वेष न होने दें। ध्यान चित्तका शोधक है। तो, इसके लिए कितना बढ़िया चित्त, कितना उत्तम चित्त चाहिए। पहले उसको बनाना पड़ता है, उसका रसायनीकरण करना पड़ता है। जैसे जोड़नेके लिए लोहेको गलाना पड़ता है, शीशेको गलाना पड़ता है, मोमको नरम करना पड़ता है, लाखको गलाना पड़ता है ऐसे अपने मनको भगवान्‌से जोड़नेके लिए पहले गलाना पड़ता है। आप देखो किसी स्त्रीसे या पुरुषसे आपका प्रेम होता है तो आपका मन थोड़ी देरके लिए गल जाता है। आपका अभिमान ढीला पड़ जाता है और आपका मन बह-बहकर बारम्बार उसकी ओर जाता है और अन्तमें वही शकल आपके मनमें दिखने लगती है। रागमें भी ऐसा होता है और द्वेषमें भी ऐसा होता है। सुरेश्वराचार्यने वार्तिकमें कहा-

मूषासिक्तं यथा ताम्रं तन्निभं जायते तथा।

ताँबेको गलाकर साँचेमें ढाल देते हैं तो साँचेमें जो शक्ल होती है वही ताँबेकी शक्ल हो जाती है। इसी प्रकार आपका गला हुआ मन जिस विषयको पकड़ता है, तदाकार हो जाता है और वही विषय आपको दिखने लगता है। लेकिन यह संसारके विषय ऐसे हैं कि कभी स्त्री दिखे तो कभी दुश्मन दिखे। कभी पुत्र दिखे तो कभी माँ-बाप दिखें। यह मनका आकार संसारमें अनेक विषय होनेसे गलता रहता है मन, और तदाकार होता रहता है और बदलता रहता है।

'कबहूँ मन विश्राम न मान्यो'-मनमें कभी विश्राम नहीं आता है। एक शक्लसे दूसरी शक्ल, दूसरी शक्लसे तीसरी शक्ल, तीसरी शक्लसे चौथी शक्ल ऐसे बदलता रहता है। आपको यदि यह बुरा नहीं लगता तो आप विक्षेपके प्रेमी हैं आप शान्तिके प्रेमी नहीं हैं।

अब इसी मनको गलाना पड़ता है भगवान्‌के लिए। यह भक्तिका सिद्धान्त है कि भगवान्‌का नाम सुनकर, गुणानुवाद सुनकर, उनकी रूपमाधुरी सुनकर, लीलामाधुरी सुनकर जब आपका मन पिघलता है और पिघल करके भगवान् कृष्णके, रामके, शिवके साँचेमें जाकर पड़ जाता है और तदाकार हो जाता है। तो, यह गलाया हुआ मन कृष्ण, रामके साँचेमें पड़ता है, तदाकार दिखता है उसको आप देखना शुरू कीजिये। क्योंकि यह मनको गलानेकी रासायनिक प्रक्रिया है।

अब आपको आपका मन भगवदाकार करनेमें कितनी सावधानी चाहिए, दूसरी वस्तु उसमें जरा-सी भी, रत्तीभर भी नहीं आनी चाहिए, इसके लिए आपको श्रीचैतन्यमहाप्रभुके सम्प्रदायमें प्रचलित बात सुनाता हूँ। यह बात सुनते-सुनते आपका ध्यान लग जाय, यहाँ तो बात सुनते-सुनते ध्यान लग जाय, ऐसा होता है।

श्रीरूपगोस्वामीजी महाराज बरसानेके ऊँचे टीले पर बैठे। अब लीलाका अनुसन्धान करते हैं। आप लोग 'कल्पना शब्दसे बिलकुल चिढ़े नहीं भला क्योंकि 'उपासकानां सिद्ध्यर्थम् ब्रह्मणो रूपकल्पना।' उपनिषद् ही कल्पना शब्दका प्रयोग करती है।

असलमें ब्याहके पहले यह मेरा पति है यह कल्पना नहीं रहती। ब्याहसे यह कल्पना उत्पन्न कर दी जाती है और गाढ़ हो जाती है। चेला बननेके पहले यह मेरा गुरु है यह कल्पना नहीं रहती है परन्तु, शिष्य होनेके बाद यह मेरा गुरु है, यह कल्पना बिलकुल दृढ़ हो जाती है। फिर तो, कोई उसकी निन्दा करें तो उसपर नाराज होते हैं, उसे गाली दे तो मार बैठते हैं। इतना अभिनिवेश हो जाता है लेकिन यह बात बनायी ही जाती है। किसीका ब्याह जन्मसिद्ध नहीं होता। कोई गुरु-शिष्य जन्मसिद्ध नहीं होते। कोई साला और बहनोई जन्मसिद्ध नहीं होता। लेकिन यह सम्बन्ध बनाकर गाढ़े किये जाते

हैं। पञ्चभूत ही चू जाता है, पञ्चभूतका रस चू गया इससे बेटा पैदा हो गया, बेटी पैदा हो गयी। इसमें तुम्हारा कुछ नहीं है, कोई चीज नहीं है। परन्तु उसके प्रति मैं-मेराका अभिनिवेश हो जाता है। आदमी उसीमें डूब जाता है।

नोट तुमको अपना कभी नहीं मानता, रुपया तुमको अपना कभी नहीं मानता। वह दुकानसे दुकानमें चाहे जिसके हाथ जाता है तुम ही अपने मनको गलाकर यह रुपया मेरा है ऐसा मानकर बैठते हो और जब छूटता है तो सिर पीटते हो, रोते हो, हाय....हाय...। रुपयेने तो कभी कहा नहीं था, दस्तावेज लिखकर नहीं दिया था कि मैं तुम्हारा हूँ। तुमने अपने हाथसे दस्तावेज बनाया कि रुपया मेरा है। जाली दस्तावेज, बिलकुल नकली दस्तावेज बनाया कि यह दुनियाकी चीज मेरी है। तुमने खुद गढ़ा और खुद उसके लिए रोकर सिर पीट लिया। उसने तो कभी कहा नहीं था। तो, यह मन जो गलत रास्ते पर बह गया है और गलत शक्लमें बन गया है इसको हटानेके लिए, इन शक्लोंको तोड़नेके लिए इनको गलाना पड़ता है।

जब भगवान्‌का नाम लेते हैं कृष्ण....कृष्ण....कृष्ण...., राम... राम... राम..., शिव... शिव... शिव... तो यह नाम थोड़ी चोट पहुँचाता है हमारे मनकी कठोरता पर। जब भगवान्‌के गुणानुवादको सुनने लगते हैं तो थोड़ी बुद्धि उधरको घूमती है। जब भगवान्‌की लीलाका, रूपका, बाँसुरीका, उनके प्रेमका श्रवण करते हैं तब मन पानी-पानी होकर गल-गलकर उनकी शक्लमें उनके साँचेमें पिघल जाता है। दुनियाकी शक्ल तोड़नेके लिए यह जरूरी है।

आजकल ये बड़े-बड़े सेठ लोग ब्रह्मज्ञानी बन जाते हैं। और बड़े-बड़े संसारी लोग बहुत जल्दी अपनेको असंग द्रष्टा अनुभव करने लगते हैं। पाँच रुपयेसे तो असंग हैं नहीं, पाँचगज कपड़ेसे तो असंग हैं नहीं, साढ़े तीन हाथके शरीरसे कहाँ तक वे असंग होंगे? तो

जब वे बात करते हैं उस समय असंगता रहती है उनके अन्दर, जब काम पड़ता है, तब रात-रातको नींद नहीं आती, रोते-रोते रात गुजरती है उनकी। तो, झूठा अभिमान करके नहीं बैठना चाहिए। कितनी आसक्ति है अपने चित्तमें, दूसरेका कितना दोषदर्शन है, दूसरेको कितना बुरा समझते हैं, दूसरेको कितना अच्छा समझकर उसमें फँस गये हैं! कि इन सब बातोंका निरीक्षण करना पड़ता है ध्यान लगानेके लिए। ऐसे-वैसे यह बात चलती नहीं है।

बरसानेका टीला ऊँचा है व्रजभूमिमें, श्रीरूपगोस्वामीजी महाराज उसके ऊपर बैठे और भगवान्‌की लीलाका अनुसन्धान करने लगे। उन्होंने देखा कि बरसानेसे कीर्तिकुमारी, श्रीवृषभानुनन्दिनी, श्रीराधारानी सखियोंके साथ, पीली-पीली, बिलकुल स्वर्णिम, उनका अंग वासन्ती, उनका वस्त्र वासन्ती, उनके आभूषण वासन्ती और वैसे ही वस्त्राभूषण धारणकी हुई सखियोंके साथ निकलीं कि चलो-सखी श्यामसुन्दरका दर्शन करनेके लिए चलें। अब यह उनके ध्यानमें दिखने लगा। आपको भी दिख जायेगा थोड़ी देरमें लेकिन आपने जो गहरायीमें चीजें डाल रखी हैं पहलेसे, यहाँसे मन हटेगा उठने पर और फिर वहाँ चला जायेगा। उन्होंने देखा, यह है व्रजभूमि और ये हैं यहाँके सुन्दर-सुन्दर वृक्ष, यह है लता, यह वृषभानुबाबाका महल है और यहाँसे सखियोंके साथ श्रीप्रियाजी, स्वामिनीजी निकलीं। कहाँ जा रही हैं ? कि श्यामसुन्दरका दर्शन करनेके लिए। कितनी लालसा है, कितनी अभिलाषा है, कितनी प्यास है, आँखोंमें कितना प्रेम छलक रहा है- आहा....। वह प्रेमभरी चालसे चल रही हैं, नन्दगाँवकी ओर। नन्दगाँव भी एक ऊँचा टीला है और उसपर नन्दबाबाका महल है। श्याम-सुन्दरको ख्याल हुआ कि इसी समय प्रियाजी वहाँसे चल रही हैं। पीताम्बरधारी, मोर-मुकुटवाले, श्याम-सुन्दर नन्दगाँवमें वहाँ

खड़े हुए, उन्होंने देखा कि प्रियाजी तो घरसे निकल पड़ीं झट वे भी वहाँसे निकले कि चलकर रास्तेमें ही मिलेंगे। एक ओरसे चलीं श्रीराधारानी यह लीलाका ध्यान है।

श्रीरूपगोस्वामी लीलाका अनुसन्धान कर रहे थे। ऐसे भी कह सकते हैं कि श्रीराधारानीके साथ एक सखीके रूपमें श्रीरूपगोस्वामीजी चलने लगे, अपने शरीरको भूल गये। वहाँ श्रीकृष्णके साथ भी चलने लगे। अपने रूपको भूल गये। सम्पूर्ण व्रज उनके हृदयमें आ गया। नन्दगाँव-बरसाना उनके हृदयमें आगया। वृक्ष आगये। राधा-कृष्ण आ गये, सखियाँ आ गयीं और बड़े प्रेमसे, उनके हृदयमें कितनी लालसा है, कितनी व्याकुलता है, श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए। रोयें-रोयें प्यासे हैं, आँखोंमें प्रेमके आँसू हैं और जल्दी-से-जल्दी प्रियतमसे मिलनेकी अभिलाषा है। कब मिलोगे....कब मिलोगे....आगे बढ़ती जा रही हैं।

इतनेमें श्रीरूपगोस्वामीजीने अपने ध्यानमें देखा एक बड़ा-सा चम्पाका वृक्ष मिला। और बड़ा वृक्ष है उसमें बड़े सुन्दर-सुन्दर पुष्प लगे हुए हैं। श्रीराधारानीने कहा-सखी! इस वृक्षके पीत पुष्प, स्वर्णिम पुष्प हमारे प्यारेको बहुत सुन्दर लगेंगे, उनके आभूषण बनेंगे। तो, आओ थोड़ेसे फूल चुन लें। श्रीरूपगोस्वामी श्रीराधारानीके प्रेमके रूपमें, उनकी सखीके रूपमें उनके साथ चल रहे हैं। उनका शरीर बैठा हुआ है एक जगह पर, शरीर तो छूट गया। वह सखी भावापन्न होकर श्रीराधारानीके साथ चलने लगे। अब श्यामसुन्दर पहलेसे वहाँ पहुँच गये थे। उन्होंने देखा कि जब प्रियाजी आवेंगी तो इस वृक्षके पुष्प उनको बहुत अच्छे लगेंगे। और, वह मेरे श्रृंगारके लिए जरूर उनको चुनेंगी। तो, उसी वृक्षपर पहलेसे चढ़कर बैठे हुए हैं। श्रीराधारानीको पीताम्बर नहीं दिखा, मोर-मुकुट नहीं दिखा, श्याम सुन्दर नहीं दिखे। उनको तो श्रृंगारके लिए पुष्प-ही-

पुष्प दिखने लगे। सो, बाँये हाथसे एक डाली पकड़ी और दायें हाथसे फूल चुनना शुरू किया। अरी, सखी! यह तो श्याम सुन्दरके श्रृंगारके लिए बड़े सुन्दर होंगे। देखो, इसमें सेवाका ध्यान आगया। अब हुआ क्या कि उसी डाली पर श्यामसुन्दर थे, जिसको उन्होंने बाँयें हाथसे पकड़कर खींचा था। श्याम-सुन्दरको विनोद सूझा, वह जरा पीछे हट गये, अब पीछे हट गये तो डाली ऊपरको उठी। प्रियाजीने कहा-यह डाली ऊपर क्यों उठ रही है ? तो, एक हाथसे पहले पकड़कर दबाया, फूल चुना जब एक हाथसे डाली नहीं दबी तो दोनों हाथसे डालीको दबाना शुरू किया। और जब दोनों हाथसे पकड़कर दबाना शुरू किया तो श्यामसुन्दर जरा और हट गये और प्रियाजी आसमानमें टँग गयीं। दोनों पाँव धरतीसे उठ गये। अब दोनों पाँव धरतीसे उठ गये, दोनों हाथसे पेड़की डाली पकड़ ली। अब बड़े जोरसे चिल्लायीं कि ललिता, विशाखा, चित्रा तुम कहाँ गयीं? बचाओ....बचाओ....तो ललिता, विशाखा, चित्रा तो कब पहुँचे, ऊपर जो डाली पर बैठे थे श्यामसुन्दर, पीताम्बरधारी, मोर-मुकुटवाले, मुरली मनोहर वह झट डाली परसे कूद पड़े और आकर नीचेसे प्यारीजीके चरणोंको पकड़कर अपने हृदयसे लगा लिया, सम्हाल लिया उनको।

यह लीलाका चिन्तन है। इसमें देखो धामका चिन्तन है क्योंकि वृक्ष-लता है। इसमें रूपका चिन्तन है क्योंकि उसमें श्रीराधारानी और श्यामसुन्दर है और इसमें लीलाका चिन्तन है क्योंकि फूल चुनना और विनोद हो रहा है। और इसमें सेवाका चिन्तन है; क्योंकि स्वयं प्राण प्यारे श्यामसुन्दर प्रियाजीके चरणारविन्दको पकड़कर अपने हृदयसे लगा रहे हैं। यह लीला देख रहे थे श्रीरूपगोस्वामी। उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। और जैसे श्यामसुन्दरने नीचे उतरकर पकड़ा प्रियाजीको यह सुनकर आप

लोगोंको हँसी आगयी। हँस पड़े थे न आप लोग! ऐसे ही श्रीरूपगोस्वामीजीको भी हँसी आगयी। हँसी आगयी तो उनका शरीर जहाँ बैठा था बरसानेमें वहाँ उनके मुखसे हँसी निकल गयी।

आप यह मत सोचो कि यह प्रियाजी कैसी हैं जो घर छोड़कर श्यामसुन्दरसे मिलनेके लिए जाती हैं। वे श्यामसुन्दर कैसे हैं जो नन्दभवन छोड़कर प्रियाजीसे मिलनेके लिए जाते हैं। इस ओर अपने मनको मत ले जाओ। यह ध्यानकी लीला है ध्यानमें श्रीरूपगोस्वामी ऐसा देख रहे थे। यदि आपको अपने मनका निर्माण नहीं करना है, उसकी रासायनिक प्रक्रिया नहीं करनी है। जो शक्ल सूरत उसमें दुनियाकी बैठ गयी है उसको तोड़-फोड़कर निकालना नहीं है। यदि अपने हृदयको पिघलाना नहीं है और यदि इसमें भगवान्का आकार और भगवान्का प्रेम नहीं भरना है तो आप इसका चिन्तन मत कीजिये। मैंने तो पहलेसे ही आपको असंग बनाकर द्रष्टा बनाकर छोड़ दिया था। आप उसी चिन्तनमें मगन रहिये। लेकिन यदि आपको अपना मन बदलना है।

आइये! श्रीरूपगोस्वामीजीको देखिये। शरीरमें रोमाञ्च हो रहा है, आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। भगवान्की लीलाका अनुसन्धान हो रहा है। मनसे दूसरी शक्ल-सूरत बिलकुल टूट चुकी है। मन गल चुका है और मन प्रिया-प्रियतमकी लीलाके साँचेमें ढल चुका है। मन प्रियतमाकार, प्रियाकार उनका बन रहा है। उनको अपने हृदयमें यही शक्ल, यही लीला दिखायी दे रही है। कितने सौभाग्यका, कितने आनन्दका क्षण होगा उनके जीवनमें। परन्तु हँसी फूट पड़ी उनके मुँहसे। जब हँसी फूट पड़ी तो वहाँ एक ब्राह्मण देवता थे, बड़े वैदिक, सन्ध्या-वन्दन कर रहे थे। उनको ऐसा ख्याल हुआ कि यह बाबाजी हमारी कोई गलती देखकर हँस रहे हैं। आखिर वहम भी तो होता है न! जो उनके मनमें यह दुर्भाव आया कि ये मेरी हँसी उड़ा

रहे हैं, श्रीरूपगोस्वामीजीका ध्यान टूट गया। कि अरे! वह कहाँ गया वृक्ष, कहाँ गयी लता, कहाँ गये श्यामसुन्दर, कहाँ गयी श्रीराधारानी, कहाँ गया वह बरसाने और नन्दगाँवके बीचवाला वृक्ष। व्याकुल होकर बिलकुल तड़फड़ाने लगे। जैसे मणि खो जानेपर साँप अपना सिर पीटने लगे ऐसे श्रीरूपगोस्वामीजी तड़फड़ाने लगे। और वे वहाँसे उठकर गये श्रीसनातन गोस्वामीजीके पास, अपने गुरुके पास समझो। क्योंकि यह रूप और सनातन दोनों आन्ध्रदेशमें पैदा हुए थे। किसी मुसलमानके वहाँ दिवान थे। वहाँ जेलमें बन्द थे। और आचार भी कुछ अच्छा नहीं था। वहाँ अपनी पुरानी इकट्ठी की हुई सम्पदा जेलरको देकर भाग आये थे। उनका पहलेका जो जीवन था वह मुस्लिमप्राय जीवन था। जब यहाँ व्रजमें भागकर आये तो साधुवेशमें श्रीचैतन्य-महाप्रभुके सम्पर्कसे बड़े भारी महात्मा हो गये। भगवान्‌के ध्यानमें मग्न। दोनों भाई थे। सनातनजी बड़े थे।

श्रीरूपगोस्वामीजी महाराज श्रीसनातनदेवजीके पास गये और बताया कि महाराज ऐसा ध्यान लग रहा था, कि यह बीचमें हुआ क्या कि टूट गया! हमसे क्या अपराध हुआ? श्रीसनातनदेवजीने कहा कि किसी-न-किसीका तिरस्कार तुम्हारे द्वारा सम्पन्न हुआ है। यदि किसीका अपमान तुमने नहीं किया होता तो यह ध्यान तुम्हारा टूटता नहीं। वहाँ तो कोई था ही नहीं, पता लगानेपर मालूम हुआ कि एक ब्राह्मण देवता थे। फिर पता लगानेपर मालूम हुआ कि हाँ, उनको बुरा लग गया था।

श्रीरूपगोस्वामीजीकी हँसी उनको बुरी लग गयी थी। उनके मनमें दुःख हुआ तो श्रीरूपगोस्वामीजीका ध्यान टूट गया।

जरा इन संसारियोंको देखो-जो दूसरोंको गाली देकर, दूसरोंकी चोरी करके, दूसरोंको दुःख पहुँचाकर, दूसरोंके साथ सम्बन्ध जोड़कर, दूसरोंका अपमान करके और फिर बैठते हैं कि

हम देहाभिनिवेशसे रहित होकर, राग-द्वेषसे रहित होकर अपने चित्तको असंग साक्षीमें लगाते हैं कि परमेश्वरके ध्यानमें लगाते हैं। अरे! भाई, ध्यान चित्तकी बड़ी सूक्ष्म अवस्था है। ऐसी अवस्था है जिसमें एक मनुष्यका मन नहीं, समष्टिके मनके साथ तादात्म्य हो जाता है। यदि तुम किसीको दुःख पहुँचाकर किसीसे द्वेष करके, किसीके रागमें डूबकरके फिर ध्यान करनेके लिए बैठते हो तो तुम्हारा ध्यान कैसे लगेगा ? बड़ी सूक्ष्म वस्तु है यह ध्यान। कामवासनाके वशीभूत होकर, कौतूहलवश ध्यान करने गये कि देखें जरा यहाँ क्या होता है ? कौतुहलसे ध्यान नहीं होता है। उसके लिए प्यास चाहिए। उसके लिए तड़पन चाहिए। उसके लिए व्याकुलता चाहिए। सचमुच ईश्वरके प्रति प्रीति चाहिए। जबतक संसारकी ओरसे विमुख होकर हमारा मन भगवान्‌से प्रीति नहीं करता है तबतक सच्ची भगवदासक्ति नहीं हो सकती। और जब सच्ची भगवदासक्ति, कृष्णासक्ति, आसक्ति अपने हृदयमें भगवान्‌के प्रति नहीं आती तबतक संसारकी आसक्ति कैसे टूट सकती है ?

ध्यानसे आसक्ति होती है और आसक्तिसे ध्यान होता है। जरा इस बातपर आप गौर करें। आपको कभी किसी स्त्रीका ध्यान आता है ? स्त्रीको क्या कभी पुरुषका ध्यान आता है ? क्यों आता है? अच्छा, कभी माँकी याद आती है ? कभी भाईकी याद आती है। कभी बेटेकी याद आती है ? कभी मिनटों तक उसीके ध्यानमें आप डूबे रहते हैं। क्यों आती है याद? आपका वह सम्बन्धी है? दुश्मन है या दोस्त है ? आपने उसके साथ कोई-न-कोई सम्बन्ध बनाया है। आपके मनमें उसके लिए राग-द्वेष है। इसलिए वह आपके मनमें आता है। रातको नींद टूटती है तो बड़े प्रेमसे किसीकी याद आती है। क्यों आती है ? कि उनके साथ प्रेम है, उनसे आसक्ति है। दुश्मनकी याद आती है। तो, क्यों ? क्योंकि उसके साथ द्वेष है।

संसारमें जिसके साथ राग होता है, द्वेष होता है नींद टूटनेपर उसका ध्यान आजाता है। जब आपको संसारमें जिसके साथ सम्बन्ध होता है कि यह हमारा भाई है, यह मित्र है उसका ध्यान आजाता है। तब तो, आपको ध्यानकी कुञ्जी हाथमें लग गयी! आप ऐसे ही भगवान्के साथ भी एक सम्बन्ध जोड़ लीजिये। उसमें भी अपना प्यार जोड़ लीजिये। आप, देखिये आपके मनका रूपान्तरण हो जायेगा। आपका मन बदल जायेगा।

आपका मन संसारमें बिछुड़नेवाली वस्तुओंसे प्रेम करता है। जिससे आप प्रेम करते हैं संसारमें वह एकदिन बिछुड़ जायेगा, बिलकुल पक्की बात है। मर जायेगा जिससे आप प्रेम करते हैं। 'प्रियं त्वां रोत्स्यसि'-वह एकदिन आपको रुलावेगा। दुनियामें किसीसे प्रेम करोगे तो तुम मरोगे तब भी रोते-रोते मरोगे कि हाय! हमारा यह प्यारा छूट रहा है। और वह मरेगा तब भी रोते रह जाओगे कि हमारा प्यारा मर गया। दुनियामें प्रेम करोगे वह तुमको रुलावेगा। वह तुम्हारे साथ बेवफा हो जायेगा, विश्वासघात करेगा तुम्हारे साथ, तुमको धोखा देगा जिससे संसारमें तुम प्रेम करते हो। इसलिए यदि तुम्हारे हृदयमें प्रेमकी वृत्ति है, अगर तुम सूखे काठ हो तो हम नहीं कहते है। अगर तुम सूखे काठ हो और तुम्हारे हृदयमें प्रीति नहीं है तो हम कुछ भी नहीं कहते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है।

तुम्हारे हृदयमें प्रीति है। अभी तुम्हारी प्रीतिको खींचनेवाला तुमको मिला नहीं है। जिसदिन मिल जायेगा उसदिन वह तुम्हारे मनकी प्रीतिको खींच लेगा। तुम्हारे हृदयमें प्रेमका लबालब समुद्र भरा पड़ा है और वह अभी शान्त बैठा है। कभी उसमें ज्वार आवेगा। इस प्रीतिको यदि जान-बूझकर भगवान्के साथ जोड़ दिया जाय तो पहले थोड़ी गर्मी होती है, जब व्याकुलता होती है। प्रभुसे मिलनेके लिए जब व्याकुलता होती है तब हृदयमें थोड़ी गर्मी आती है, पसीना

आता है, थोड़ा-थोड़ा गलता है। और गलनेके बाद संसारकी जितनी शक्लें भरी हुई हैं और ममता, मोह और अहंकार भरा हुआ है, वह सब रंग उसका धूल जाता है। और जब सारा-का-सारा रंग आगमें जल जाता है और भगवान्‌के साँचेमें आपका मन पड़ता है तो भगवदाकार हो जाता है। फिर तो, आप भगवान्‌के साथ हँसिये, खेलिये, बोलिये, मिलिये, खाइये, खिलाइये भगवान्‌को, उनके साथ पीजिये और पिलाइये। उनके साथ सारे व्यवहार, सारे सम्बन्ध भगवान्‌के साथ होने लगते हैं। और राग-द्वेषको हृदयसे मिटानेके लिए, आप राग-द्वेषसे कितने पीड़ित हैं यह मैं नहीं बता रहा हूँ आपके लिए राग-द्वेष स्वसंवेद्यं हैं, साक्षीभास्य हैं राग-द्वेष। आप जानते हैं कि किसके लिए आपका हृदय व्याकुल होता है और किससे आपका हृदय चिढ़ता है-इसको आप जानते हैं। आप अपने हृदयको, अपने दिलको खुद समझते हैं। और इतनी तकलीफ और इतनी तकलीफ आप पा रहे हैं, हम आपके साथ क्या सहानुभूति बतावें ? ऊपरसे आप भले असंग बनो, ब्रह्म बनो, द्रष्टा बनो, साक्षी बनो, जुबानसे बोलो, लेकिन आपका अन्तरंग जीवन अत्यन्त रुग्ण है। आप अपने रोगको छिपाकर लोगोंके सामने बढ़िया-बढ़िया चिकना कपड़ा पहनकर और शरीरको सुन्दर बनाकर दुनियामें भटकते हो। आपके शरीरमें रोग है। आपके मनमें रोग है। आपका मन दोस्त और दुश्मनके चिन्तनसे व्याकुल है। इसमें भगवान्‌के ध्यानके सिवाय, भगवान्‌से प्रेम जोड़नेके सिवाय और कोई कल्याणकारक, मंगलकारक वस्तु नहीं है। ब्रह्मज्ञानी भी बनो और पागल भी हो जाओ, पागलपन भी करो वह बात दूसरी है। और अपने हृदयको परम सुन्दर, परम मधुर, परम स्वादमय, आह्लादमय, मधुमय, लास्यमय, रसमय बनाकर भगवान्‌में जोड़ो यह दूसरी बात है।

भगवान्‌के धामका चिन्तन होता है, रूपका चिन्तन होता है, लीलाका चिन्तन होता है, लीलामें प्रवेश होता है, लीलाका दर्शन होता है, लीलामें अपनी ओरसे अपनी सेवा होती है। श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज कहते हैं इस ध्यानको कब पक्का समझना चाहिए ? बोले-दर्शन-समानाकारवृत्ति जब हो जाए माने, जैसे हम जाग्रत् अवस्थामें किसी वस्तुको देखतेहैं, हम देखते हैं कि हमारे सामने लोग बैठे हुए हैं। लोग देखते हैं कि हम उनके सामने बैठे हुए हैं। यह कोई सपना नहीं मालूम पड़ता, यह कोई चित्तकी कल्पना नहीं मालूम पड़ती। यह अवस्था बिलकुल सच्ची मालूम पड़ती है। इसी प्रकार जब भगवान्‌का रूप, लीला, धाम आपको हृदयमें बिलकुल सच्चा मालूम पड़े और यह बाहरका बिलकुल भूल जाय, उसीमें आप डूब जायँ। इसका नाम ध्यान होता है। जैसा आप जाग्रत् अवस्थामें देख रहे हैं, ऐसे ही भीतर आप देखें इसको दर्शन-समानाकारवृत्ति कहते हैं।

एक और बात आपको सुनाते हैं। कि वह कौन-सी जगह है? यह पूछना बिलकुल बेकार है। वह मूलाधार है, कि मणिपूरक है, कि हृदय है, कि सिर है ? सिरमें ध्यान करें कि हृदयमें ? कि यह पूछना बिलकुल बेकार है। आप अपने मनमें ध्यान कीजिये। बाहर ध्यान करेंगे कि भगवान् सामने खड़े हैं तब भी मनमें है। और हृदयमें ध्यान करें तब भी मनमें हैं। सिरमें ध्यान करें तब भी मनमें हैं। इसके लिए लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहिए। हृदयमें करो सिरमें नहीं, सिरमें करो हृदयमें नहीं। कई ऐसे पन्थ हैं जो ऐसा बताते हैं।

देखो, आज्ञाचक्रसे ऊपर ही दोनों भौंहोंके बीचमें जो जगह बनी है, जिसमें कमलके दो दल हैं और 'ह' 'ल' दोनों अक्षर जिसपर लिखे हुए हैं। और एक तीसरा दल भी छिपा हुआ है जो ऊपरकी ओर है, ऐसा राधास्वामीवाले लोग बोलते हैं। जब भगवान्‌का ध्यान

करना हो तो ऊपर ही करना नीचे नहीं करना। कि भगवान् ऊपर रहते हैं तो नीचे कौन रहता है ? भक्त लोग कहते हैं कि जब ध्यान करना तब हृदयमें ही करना! ऊपर नहीं करना! सिरमें ध्यान करोगे तो ज्ञान हो जायेगा, प्रेम नहीं होगा। इसलिए, हृदयमें ही ध्यान करना ऐसा भक्त लोग कहते हैं। बाबा, हृदयमें भगवान् हैं तो सिरमें कौन है?

भगवान्‌का ध्यान अपने मनमें करो। मन बाहर देखे तो बाहर देखने दो, भीतर देखे तो भीतर देखने दो, नीचे देखे तो नीचे देखने दो, ऊपर दिखे तो ऊपर देखने दो। यह ऊपर, नीचे, बाहर, भीतर भी मनमें ही होता है। यह बाहर नहीं होता है, यह दूसरी चीज नहीं है। यह मनमें ही होता है। यह भगवान् सो रहे हैं ऐसा ध्यान करें कि बैठे हुए हैं ऐसा ध्यान करें, कि चल रहे हैं ऐसा ध्यान करें, कि कुछ खेल रहे हैं ऐसा ध्यान करें। बोले–बाबा, जैसे हो वैसे भगवान्‌का ध्यान करो। दुनियाका ध्यान छूटना चाहिए। परन्तु प्रेम सहित भगवान्‌का ध्यान आना चाहिए। 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा'– भक्तिका उत्तम स्वरूप क्या है ? 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलम्'–वह यदि चलते हों तो आप उनके पीछे–पीछे चलिये। अनुकूल हो जाइये। आप, उनके बगलमें खड़े होकर रास्ता दे दीजिये। आप आगेकी ओरसे आकर उनके मुखारविन्दको देखिये। चाहे, जैसे 'आनुकूल्येन' दुश्मनी न हो, प्रेमका भाव भगवान्‌के प्रति हो। 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्'–सामनेसे देखिये, बगलसे देखिये, पीछे–पीछे चलिये, जिस किनारेपर कृष्ण हैं, उसी किनारेपर आप भी हो जाइये।

अब एक व्यवहारकी बात आपको सुना देते हैं, क्योंकि वह भी चाहिए। हमारे एक महात्मा थे, वृन्दावनमें ही रहते थे। उनके आगे कोई भक्त आकर रोने लगे कि महाराज, हम जो चाहते थे सो नहीं हुआ, हमारे मनका नहीं हुआ। तो, महात्माजी बोले कि देखो

भाई, जब तुम्हारे मनका होता है तब तो यह शंका रहती है कि हमारे मनका तो हुआ परन्तु हमारे प्यारे खुश हुए कि नहीं ? उनके मनका हुआ कि नहीं हुआ ? यह तो मालूम नहीं है। इसमें तो शंका है। हमारे मनका तो हो गया, हमारे मनकी वासनाके अनुरूप तो हो गया, परन्तु इससे हमारे प्यारे खुश हुए कि नहीं ? उनके मनका हुआ कि नहीं हुआ ? यह तो मालूम नहीं है। परन्तु जब हमारे मनका नहीं हुआ तब तो उसीने किया है। हमने नहीं किया। हम तो रोक रहे थे, परन्तु हमसे जबरदस्त तो वही है, उसीने किया है, उसीके मनका हुआ है और वही खुश हुआ है। तो मनुष्यको उस हालतमें ज्यादा खुश होना चाहिए। कब ? कि जब अपने मनका न हो, उसके मनका हो। हम चाहते थे कि आज घरमें अरहरकी दाल बनें। परन्तु जिससे हम प्रेम करते हैं उसने कहा कि हम तो कढ़ी खायेंगे। तो क्या हो गया ? उसने तो हमको इतना अपना समझा कि हमारे मनकी परवाह न करके भी उसने अपने मनका किया। तो, उसमें तो इसका बड़ा भारी प्रेम है। तो, अपने मनका होनेपर खुश होना; लेकिन उसमें अपने प्यारेके मनका हुआ कि नहीं हुआ, उसको खुशी मिली कि नहीं मिली?– उसपर विचार करना। लेकिन, जिस दिन तुम्हारे मनका न हो, उसदिन तो सोचना कि आज तो उसीके मनका हुआ है, और यह हमारे लिए कितने आनन्दकी बात है कि आज हमारा प्यारा हमसे खुश है। उसीमें हमारा मंगल भी है।

स देवो यदेव कुरुते तदेव मङ्गलाय

वे भगवान् जो कुछ करते हैं वह सब हमारे मंगलकी वस्तु है।

●

प्रवचन : 20

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

ध्यानके लिए योगशास्त्रमें तीन प्रकारकी दृष्टिका वर्णन है। यदि खुली आँख रखनेमें वह इधर-उधर जाती हो, विक्षेप होता हो तो आँख बन्दकर लेनी चाहिए। और यदि आँख बन्दकर लेनेसे नींद आती हो तो आँख खुली कर लेना चाहिए और, यदि दोनों ही बन्द करनेपर नींद आती हो, खुली रखनेपर विक्षेप होता हो तो, आँखको अधखुली रखना चाहिए। इसको शास्त्रकी दृष्टिसे अमादृष्टि-अमावास्याकी तरह आँख बन्द, पूर्णादृष्टि-पूर्णिमाकी तरह आँख खुली और प्रतिपद्दृष्टि-प्रतिपदाके समान आँख अधखुली। इसमें कोई जिद्द करनेकी, आग्रह करनेकी कोई जरूरत नहीं है कि हम आँख बन्द रखेंगे कि खुली रखेंगे कि अधखुली रखेंगे। जब जैसी सुविधा हो तब वैसी आँख कर लेनी चाहिए। ध्यान करना मुख्य है, आँखका कैसा होना मुख्य नहीं है।

बच्चेको कभी प्यारकी आँखसे भी देखते हैं, कभी डाँटनेकी आँखसे भी देखते हैं। बच्चेको प्यार दुलार करना ही अभीष्ट है। मन भी एक बालककी तरह रहता है भीतर और यह कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी जिद्द करता है। आप माँ-बापकी तरह इसको मना करके रखिये। 'लालयेत् चित्तबालकम्'-यह चित्त आपका बालक है। इसको कैसे भी प्यारसे, दुलारसे, मारसे, डाँटकर ठीक रास्ते पर चलाइये। ध्यान आदेशशास्त्र है, शासनशास्त्र है, 'संशनशास्त्र' नहीं है। आदेशशास्त्रका मतलब यह होता है कि आपके मनको आदेश

दिया जाता है कि तुम इस अवस्थामें रहो। यह शासन है। जो लोग यह कहते हैं कि ध्यान मत करो यही सबसे बड़ा ध्यान है। तो, असलमें ध्यान मत करो, यह भी एक आदेश ही है। यह भी अनुशासन है कि कुछ पकड़ो मत, जो बहता है उसको बहने दो। तुम अपने स्थानपर चट्टानकी तरह स्थिर रहो, सजग रहो। माने, रजोगुणके साथ बह मत जाओ और तमोगुणके साथ जड़ मत हो जाओ। सजग रहो माने सत्त्वगुणमें स्थित रहो। देखते रहो।

कुछ मत करो माने कुछ मत करोकी स्थितिमें रहो। तो, ध्यानकी तीन प्रणाली होती हैं। 1. विषमध्यान, 2. समध्यान और 3. अध्यान।

विषमध्यान क्या है कि जैसी दुनिया आपको दिख रही है, इसमें न दिखनेवाली वस्तुका ध्यान करो। विषमसत्ताक ध्यान करो। दिख रही है स्त्री, दिख रहा है पुरुष, दिख रहा है पेड़, पौधा, मकान, बाजार और तुम न दिखनेवाले रामका, कृष्णका, शिवका, नारायणका, निराकारका जो सत्ता तुमको देखनेमें आ रही है उससे विषमका ध्यान करो। प्रत्यक्ष देखो और परोक्षका चिन्तन करो। तो, इससे प्रत्यक्षकी जो गाढ़ता है, स्थूलता है वह मिट जायेगी। ध्यानका रूप ही यह है कि देखो, शालग्राम और ख्याल करो चतुर्भुज-नारायणका। देखो, माताको स्त्रीके रूपमें और उसमें ध्यान करो जगत्‌जननी जगदम्बाका। पतिको देखो पुरुषरूपमें और ध्यान करो कि यह परमेश्वर है। वह परमेश्वर ध्यानस्थ है और उसकी मनुष्यता लौकिक है। तो, लौकिक दर्शनमें अलौकिकका जो भाव है, चिन्तन है वह ध्यान हो जाता है। है तो वह भी परमेश्वरका स्वरूप ही। देखो, सद्‌गुरुको दूसरे लोग बदमाश भी समझते हैं, ठग भी समझते हैं, धोखेबाज भी समझते हैं। तुम आँखसे देखो सद्‌गुरुको मनुष्यके रूपमें और हृदयमें ध्यान करो परमेश्वरके रूपमें। तो, दिखता है अन्य

और ध्यान किया जाता है अन्य। इसको विषमसत्ताक ध्यान कहते हैं। यह तुम्हारी दृष्टिको, तुम्हारी भावनाको, तुम्हारे अन्तःकरणको अदृष्टाकार बना देगा।

आओ, एक क्रम सुनाते हैं। पहले बोलो 'श्रीगणेशाय नमः'। गण माने इन्द्रियाँ, इनका स्वामी माने मनमें बैठा हुआ परमात्मा। गणेश्वर जो हैं वह मनमें बैठे हुए इन्द्रियरूपी गणोंको काबूमें रखनेवाले गणेश्वर हैं। गणेश कहाँ हैं कि वह शक्तिकी गोदमें, उमाकी गोदमें हैं। गणेशके भी अन्दर शक्ति है। अब गणेशकी, जो हाथीकी सूँड़ है, और उनका सिर है, बड़ा पेट है और छोटे पाँव हैं। गणेशके पाँव छोटे है पेट बड़ा है और मुँह हाथीका है। अद्भुत है! देखो, यही मनका स्वरूप है। उसमें दिमाग, बुद्धि बहुत है। हाथीमें बुद्धि बहुत होती है और सूँढ़ है लम्बा, पेट है बड़ा, पाँव है छोटे। गणेश हैं शक्ति, उमा अपनी माँकी गोदमें। और उमा हैं शिवकी गोदमें। मंगलमय, कल्याणमय शिव। और शिव हैं प्रकाशस्वरूप सूर्यकी गोदमें। ज्योतिर्मय हैं। और उस ज्योतिर्मय सूर्यमें अन्तर्यामी विष्णु हैं। धीरे-धीरे चलो, गणेशसे शक्ति, शक्तिसे शिव, शिवसे प्रकाशस्वरूप सूर्य, सूर्यसे विष्णु और विष्णुको भी तुम देख रहे हो। नियममें नियामकभाव विष्णुमें है और द्रष्टामें नियममें नियामकभाव नहीं है। अब सृष्टिको देखना छूटा। इन्द्रियोंको देखना छूटा। विषयोंको देखना मूढ़भूमि है और इन्द्रियोंमें बैठना क्षिप्तभूमि है, मनमें बैठना विक्षिप्तभूमि है। एकाग्रभूमिकामें शक्तिमें विषयका भेद नहीं है। शक्ति-ही-शक्ति है और वह सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्-शिवकी, शान्तकी गोदमें है और वह प्रकाशकी ज्ञानकी गोदमें है और उसका रूप व्यापक है। व्यापकता निराकार द्रष्टा आत्मासे पृथक् नहीं है। ध्यानके लिए यह अन्तर्मुख होनेकी युक्ति है। 'श्रीगणेशाय नमः'से प्रारम्भ करो और अन्तर्यामी परमेश्वरका दर्शन करो। और अपने

स्वरूपमें स्थित हो जाओ। यह अन्तर्यामी परमेश्वर अपने स्वरूपसे पृथक् नहीं होता है। निरन्तराय है। आत्माके साथ अन्तर्यामीका निरन्तर सम्बन्ध है। अद्वैत वेदान्तियोंकी भाषामें तादात्म्य सम्बन्ध है। तादात्म्य सम्बन्ध अपने आपके साथ ही होता है।

अच्छा, अब देखो ध्यानकी एक दूसरी प्रणाली लें। आप आसनसे बैठ जायँ। आपने शायद सुना होगा कि शान्ति जब भरी सभामें दिखायी जाती है तब वह शान्ति नहीं रहती शान्त्याभास हो जाती है। इसीसे, नाट्यकारोंने शान्तरसका अभिनय नहीं माना है। नाट्यशास्त्रके आचार्य भरतमुनिने अपने शास्त्रमें केवल आठ ही रस माने हैं। नौवें शान्तरसको रस ही नहीं माना है। क्यों नहीं माना है ? कि वह अभिनेय नहीं है। भरी सभामें उसको नहीं दिखाना चाहिए, भरी सभामें दिखाने पर वह नाटक हो जाता है और नाटक हो जानेपर वह रस नहीं रहता रसाभास हो जाता है। इसलिए, आप एकान्तमें आसनसे बैठें और जैसे शरीर अधिक देरतक आरामसे रह सके ऐसे बैठें।

एक टोटका ही बताता हूँ आपको। टोना-टोटका जिसको बोलते हैं। बैठकर दोनों हाथ ऊपर उठाकर एकमें मिला दो। और, तीन बार बोलें कि-ॐ विष्णुः, ॐ विष्णुः, ॐ विष्णुः। और फिर हाथको गोदमें रख लें और पीठकी रीढ़ सीधी कर ले और अपने हृदयमें अपने सद्गुरुका स्मरण करें। आपको ध्यानकी स्थिति प्राप्त करनेमें यदि कोई कठिनाई मालूम पड़ती है तो सब विघ्नोंका निवारण सद्गुरुके स्मरणसे हो जायेगा। 'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः।' ध्यानकी शुरुआत होती है गुरुकी मूर्तिसे। क्योंकि गुरुकी मूर्ति देखी हुई है और उसका महात्म्य श्रद्धासे माना हुआ है। तो, देखी हुई मूर्तिका, श्रद्धासे माने हुए महात्म्यका जब समन्वय होता है तब मन उसमें लग जाता है।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।76।।
(गुरुगीता)

आप नाराज नहीं होना। यदि आपको संसारसे निकलनेका मार्ग बतानेवाला सद्गुरु आपको प्राप्त नहीं हुआ तो आप संसारमें भटक जायेंगे। ध्यानकी ओरसे तो आपका मन हट जायेगा।

एक देखी हुई बात सुना रहा हूँ। लखनऊमें 'भूलभूलैया' बनी हुई है। जो गाईड साथमें था उसने कहा कि इसमें-से कोई अपने आप निकल नहीं सकता। रास्ता जरूर भूल जायेगा। तो, हमने कहा भाई-कहीं-न-कहीं इसमें रास्ता होगा ही, हम ढूँढ लेंगे। तुम एक तरफ हो जाओ हम ढूँढ़ते हैं। जब घूमकर पन्द्रह-बीस मिनट हम भटकते रहे और कहीं रास्ता नहीं मिला तब उसने आकर हमें वहाँसे निकाल लिया। यह सृष्टि भूलभूलैया है। आप अभिमान करते हैं कि हम अपनी बुद्धिसे, अपने वैभवसे इससे पार हो जायेंगे। वह आपका अभिमान आपको मुबारक हो....। आप बड़े बने रहें लेकिन आपको इस संसार सागरसे पार जानेके लिए एक मददगार चाहिए। जिसके सामने आप सिर झुका सकें, ऐसा एक सद्गुरु चाहिए। जहाँ बुद्धि नहीं पहुँचती है वहाँ पहुँचनेके लिए एक परमेश्वरका रूप चाहिए। तो, आप यदि स्वयं हिचकते हैं कि हम परमेश्वरका ध्यान किस रूपमें करें ? हमने तो परमेश्वरको देखा ही नहीं है ? अनदेखेका ध्यान कैसे करें ? इसीसे स्मृति-अनुस्मृतिकी भी आवश्यकता होती है ध्यानमें।

स्मृति-अनुस्मृति क्या होती है ? कि हम भगवान्‌की याद कर रहे हैं और भगवान् हमारी याद कर रहे हैं। हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए हमसे प्रेम करनेके लिए भगवान् 'भृत्यानुग्रहकातरम्'। भगवान्‌ने मेरा स्मरण किया और लक्ष्मीजीकी ओर देखा।

लक्ष्मीजीको इशारा किया कि इस जीवका उद्धार होना चाहिए। लक्ष्मीजीने सद्‌गुरुकी ओर देखा और सद्‌गुरुने झट हमारे सिरपर हाथ रख दिया और हमको अपनी गोदमें उठा लिया।

अब आप यह ध्यान मत करो कि मैं ध्यान कर रहा हूँ। 'हरि स्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् '–भगवान्‌के स्मरणसे सारी विपत्ति दूर हो जायेगी और जिस संसारमें आप भटक रहे हैं, वह संसार कट जायेगा। आप अन्तर्देशमें प्रवेश कर जायेंगे और फिर राधाके हृदयमें कृष्णसे कितना प्रेम है, कृष्णके हृदयमें राधासे कितना प्रेम है! प्रेम ही राधाको कृष्ण बना देता है और कृष्णको राधा बना देता है। प्रेम स्वयं निराकार होते हुए भी राधा–कृष्णको साकार बना रहा है। राधा–कृष्ण दोनों प्रेमके विलास हैं। सम्पूर्ण विश्वसृष्टिका मालिक जो परमेश्वर है उसको प्रेम नचाता है। सब ब्रह्मा, विष्णु, महेश परमेश्वरके अधीन हैं; परन्तु परमेश्वर प्रेमके अधीन हैं। परमेश्वरसे बड़ा इस सृष्टिमें कौन है ? कि प्रेम है। यह प्रेम निराकार है। कहीं इसमें प्रकाश–ही–प्रकाश है। क्या–क्या शक्ल–सूरत झलकती है! कहीं इसमें आनन्द–ही–आनन्द है, क्या तो इसमें रस है! क्या कभी इसमें स्थिरता है! यह भक्तोंका ध्यान है।

अब भक्तोंके ध्यानमें योगियोंके ध्यानसे क्या विलक्षणता है?–इसपर आप ध्यान दो। इसको 'सममध्यान' बोलते हैं शास्त्रमें। योगियोंका ध्यान 'निर्ममध्यान' होता है। और, भक्तोंका ध्यान 'सममध्यान' होता है। ईश्वरसे ममता होना यह भक्तोंका ध्यान है। ये हमारे स्वामी हैं। ये हमारे सखा हैं। ये हमारे पुत्र है। ये हमारे पुत्र हैं। ये हमारे माता–पिता हैं। ये हमारे पति हैं। ये हमारा प्रियतम है, हमारे आत्मा ही है। भक्तोंका ध्यान ममता सहित होता है। क्योंकि ममता छोड़ना संसारमें बहुत कठिन है। इसलिए ममताका पेट भरना यह साधकके लिए एक अवस्थामें आवश्यक होता है। आपके मनमें

मेरापन है कि नहीं है ? मेरा-मेरा कुछ लगता है कि नहीं ? झूठे ही ढोंग नहीं करना कि घर मेरा नहीं है, स्त्री मेरी नहीं है, पुत्र मेरा नहीं है, धन मेरा नहीं है, शरीर मेरा नहीं है। यह झूठे लोगोंको भगवान् खूब पहचानते हैं। तो, यदि आपके मनमें, आपके भीतर मेरापन है तो उसका पेट खाली नहीं रहेगा, उसका पेट भरना पड़ेगा। और उस पेटको भरनेके लिए आपको कुछ आलम्बन चाहिए। इसलिए, वृन्दावनके रसिक लोग भी कहते हैं- *'बिना ममत्व समत्व न होई'* जबतक परमेश्वरसे ममता नहीं करोगे तबतक सृष्टिमें तुम्हारी समताबुद्धि नहीं बनेगी, अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा। *'बिना ममत्व समत्व न होई'* ये बड़े-बड़े रसिकाचार्य हैं वे बोलते हैं कि संसार हमारी ममताके पेटमें भरा हुआ है। यहाँ तक कि एक मरता है तो दूसरेसे ममता होती है, दूसरा मरता है तो तीसरेसे ममता हो जाती है। यह हमारा मन कहीं-न-कहीं ममता करता ही रहता है। ममता छोड़कर यह रहता नहीं है। ईश्वर कृपासे यह ममता यदि परमेश्वरके साथ कर ली जाय तो संसारकी ममता छूट जाती है। और, संसारके प्रति समता आजाती है। और समता आजाने पर फिर राग-द्वेष नहीं होता है। तो, विषमध्यान क्या है कि जैसा आपका संसार दिख रहा है आपको उसका ख्याल छोड़कर एक महात्म्य-ज्ञानपूर्वक, ऐश्वर्यज्ञानपूर्वक, श्रद्धा-भक्तिके साथ परमेश्वरके साथ आप ममता जोड़िये इसको 'सममध्यान' कहते हैं।

अब आओ थोड़ी-सी निर्ममध्यानकी भी चर्चा कर लें। निर्ममध्यान भी होता है। हम एकबार बद्रीनाथ जा रहे थे। इतना सुगम मार्ग पहले नहीं था, रुद्रप्रयागके बाद पैदल ही जानेका मार्ग था। तो, श्रीनगरसे ग्यार-बारह मील दूर रुद्रप्रयाग है। उसके बाद पैदल जानेका था। तो जब आगे बढ़े तो कहीं गंगाजी घूम गयीं। सामने पहाड़ आगया तो दो-चार फलाँग पीछेका भी न दिखे और दो-चार

फलांग आगेका भी न दिखे। और गंगाजी हर....हर.... हर.... बह रही हैं। पहाड़ खड़े हैं, बड़ी हरियाली है। कहीं फूल खिले हुए हैं। एकाएक ख्याल आया कि यह किसका है ? यह गंगाजी किसकी है? यह पर्वत किसका है ? यह हरियाली किसकी है ? एकाएक ऐसा ख्याल आया तो किसी सेठका नाम नहीं आया। न टाटाका आया, न बिरलाका आया। शहरोंमें जब घूमते हैं तो कहते हैं कि अमुक सेठकी यह कोठी है। सेठोंकी कोठी शहरोंमें देखनेको मिले, तो बात दूसरी है। तीर्थोंमें घूमें तब भी यही नाम आता है कि यह अमुक सेठका मन्दिर है। अब सेठकी याद आगयी तो ममता आगयी। जहाँ सेठकी याद आयी, राजाकी याद आयी कि यह अमुक राजाकी चीज है, सेठकी चीज है। और, जब हम हिमालयमें यात्रा करते हैं तो वहाँ यह किस सेठका पेड़ है या किस सेठका पहाड़ है या किस सेठकी गंगा है यह याद नहीं आती। उनको देखकर शान्त आनन्दका उदय होता है, निर्मम आनन्दका उदय होता है चित्तमें। तो, आनन्द तो वहाँ भी होता है। एक ममताका आनन्द होता है और एक निर्ममताका आनन्द होता है। तो, निर्ममताका आनन्द लेनेका जिनको अभ्यास होता है वे कहते हैं कुछ मत करो, शान्त हो जाओ।

आपको ध्यानकी तीन श्रेणी सुनाने जा रहा था। विषम ध्यान, समध्यान और अध्यान। तो, विषमध्यानका अर्थ है कि जैसा दिखता है उससे विलक्षण देखो। एक पत्थरकी मूर्ति आपको दिखती है तो उसे चलती-फिरती, हँसती-खेलती, खाती-पीती देखो। अरे! यह तो पत्थरकी मूर्ति है, ऐसा करते नहीं दिखती है। नहीं दिखती तो क्या है ? उसका आप जीवन्त ध्यान करो। आपको एक मनुष्य दिखता है, मनुष्यमें दिव्यताका ध्यान करो। तो, यह क्या होता है कि यह 'विषमध्यान' होता है। संसारके विषयोंके चिन्तनमें जो हमारा फँसा हुआ है वहाँसे इसको निकालता है।

समध्यान क्या होता है ? सम्पूर्ण इन्द्रियोंके पीछे, मनोवृत्तियोंके पीछे केवल चेतन प्रकाशके रूपमें बैठे हुए हैं, विराजमान है स्वयंप्रकाश, प्रकाशस्वरूप हैं। सारी सृष्टि शत्रु भी जाता है और आता है। मित्र भी आता है जाता है। मरना भी होता है, जन्मना भी होता है, बढ़ना भी होता है, घटना भी होता है और आप केवल सबको समभावसे देख रहे हैं। सजग हैं। समताका भाव भी नहीं है। केवल सावधान हैं कि किसी भी दिखनेवाली वस्तुके साथ मैं अपनेको मिला न दूँ। सारी सृष्टि सम हो जाती है। उसमें देवताके ध्यानकी भी जरूरत नहीं रहती। मनुष्यके ध्यानकी भी जरूरत नहीं रहती। परन्तु यह भी करना ही पड़ता है। क्यों ? कि इसमें भी आदेश है। इतनी देरतक मैंने कुछ नहीं किया! तो यह देर कहाँसे आगयी ? इतनी देरतक क्यों कुछ नहीं हुआ ? इतने स्थानमें मैं बैठा और मैंने कुछ नहीं किया। इतनी देरतक मैंने किसी रूपका चिन्तन नहीं किया। जो आया सो आया, जो गया सो गया और हम सजग बनकर देखते हैं। तो, यह थोड़ी देरके लिए होता है और अभ्यास हो तो घण्टे-दो-घण्टे तक होता है। नहीं तो, फिर वही स्त्री, वही पुत्र, वही धन, वही मेरा, वही तेरा। परन्तु यदि यह ध्यान पक्का हो जाय, ध्यान तो शास्त्रीय है और यह भी आदेशसे प्राप्त है। तुम कुछ मत करो। तुम चुपचाप देखते रहो, यह भी आदेश ही है। यह भी आज्ञा ही है। यह भी शासन ही है। अच्छा, देखते रहो। तो, इसका फल क्या होता है। इसका फल यह होता है कि दिखनेवाली चीजें समताकी कोटिमें आजाती है तो उनसे राग-द्वेष नहीं होता है। यही सांख्यदर्शनका ध्यान है। 'रागोपहतिर्ध्यानम्'- कहीं भी राग-द्वेष न होना, सबको सम देखते रहना, कुछ करना नहीं। कुछ करना नहीं तो ध्यान निष्प्रयोजन हो जाता है। निष्प्रयोजन हो जाता है माने, दोषको पाना नहीं है, दुश्मनको मारना नहीं है,

सम्पदा पानी नहीं है और गरीबी हटानी नहीं है। जब एकरस अपने स्थानपर बैठ जाते हैं तो विशेषका ध्यान निष्प्रयोजन हो जाता है। उस ध्यानका कोई प्रयोजन नहीं है। विशेष ही निष्प्रयोजन हो जाता है। सृष्टि रहे कि न रहे इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं। तो, जब सृष्टिसे कोई मतलब प्रयोजन नहीं रहता है तो यह समध्यानका नाम होता है 'अध्यान'। 'अध्यान' माने ध्यान करनेकी कोई जरूरत नहीं है। ध्यान-अध्यान दोनों सम हो जाते हैं।

जैनदर्शन आत्मवादी दर्शन है और बौद्धदर्शन निरात्मवादी दर्शन है। बौद्धलोग आत्माका अस्तित्व नहीं मानते हैं। वे तो ऐसा मानते हैं कि साकार या निराकार विज्ञान बदलता रहता है और उसके साथ आत्मा भी बदलता रहता है। कोई स्थाई आत्मा नहीं है। कालमें आत्माका खण्ड-खण्ड मानते हैं बौद्ध लोग। परन्तु जैन लोग आत्माका कालमें खण्ड-खण्ड नहीं मानते हैं। आत्मा नामकी एक चेतन इकाई स्वीकार करते हैं। परन्तु देशमें वह फैलता और सिमटता है। तो, यह जो संसारके साथ सम्बन्ध है वह आत्माका फैलाव है। जब इस फैलावको छोड़कर वह अपनी प्रकाशरूप इकाईमें सिमट जाता है बीचमें ही कहीं शतावधानी हो जाता है, कभी सहस्रावधानी हो जाता है और सबको छोड़कर अपने स्वरूपमें बैठ जाता है, बिलकुल शान्त। तो, पहले तो संसारमें उसका कहीं राग-द्वेष नहीं, और बादमें तो वह दीपज्योति, निश्चल दीपज्योतिके समान रहता है और अन्तमें वह तीर्थंकर पदवीको प्राप्त होता है। वहाँ न करनासे प्रारम्भ हुआ था। वहाँ लोकधर्म है करना और ध्यान है न करना। और उसके बाद जैसे केंचुल छूट जाती है वैसे बढ़ना-घटना छूट गया और आत्मा अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है।

वेदान्तियोंका ध्यान इससे भी विलक्षण है। अध्यानमें ध्यान विशेषाभाव है इसलिए दोषापनयन पहले कर दिया जाता है।

अध्यानमें दोषापयनयन सामर्थ्य नहीं है। अभाव किसीका निवर्तक नहीं होता। और, अभाव किसीका प्रवर्तक भी नहीं होता। इसलिए यदि आप यह चाहते हैं कि हमारे जीवनमें जो दोष हैं वे मिट जायँ और जो सद्गुण है वे आवें। तब तो आपको ध्यान करना पड़ेगा। और यदि दोष मिट चुके हैं और सद्गुण आ चुके हैं तब आप 'सम' पर एक पाँव रखकर अध्यानमें स्थित हो जाइये। कुछ ध्यान करनेकी जरूरत नहीं है। जो है, जहाँ है, जैसा है उसको रहने दीजिये। मूढ़ और विक्षिप्त भूमिकामें तो ध्यान होता ही नहीं। विक्षिप्त भूमिकामें ध्यान करना पड़ता है और एकाग्र भूमिकामें ध्यान लग जाता है। और निरुद्ध भूमिकामें ध्यान समा जाता है, अध्यान हो जाता है। यह उसकी भूमिका होती है।

अब अध्यानकी भूमिकामें जो आत्मा है इसकी क्या उम्र है? कितने दिनतक यह जिन्दा रहता है, और इसकी जगह कितनी है। बिन्दुके बराबर है यह कि आकाशके बराबर है यह ? लम्बाई–चौड़ाई आत्माकी कितनी है ? और यह कबसे शुरू हुआ और कबतक रहेगा, इसकी उम्र कितनी है ? और जड़ता और चेतन आत्मा इन दोनोंके बीचमें सन्धिस्थल क्या है ? ये तीन प्रश्न उठते हैं। यहाँ वेदान्तका चिन्तन प्रारम्भ होता है।

वेदान्तका चिन्तन वहाँ प्रारम्भ होता है, जहाँ दूसरेके बारेमें आप नहीं सोचते है, अपने बारेमें सोचते हैं।

साधो का पूछो उमर हमारी हो।
कोटि कलप ब्रह्मा भये
दस कोटि कन्हाई हो।।
छप्पन कोटि जादव भए मोरि एक पलाई हो।
का पूछो साधो हो उमर हमारी हो।

हमारी लम्बाई–चौड़ाई क्या पूछते हो, कि हम साढ़े तीन

हाथके लम्बे हैं और इतने फुटका हमारा घेरा है और इतना हमारा वजन है ऐसा पूछते हो ? अरे बाबा–'मैं'के बारेमें कुछ ख्याल करो। यह जो आदि और अन्तकालमें मालूम पड़ता है कि यहाँसे इसकी शुरुआत हुई और यहाँ इसका आखिर है। यह तो एक मनोवृत्तिका विलास है। काल जो है वह मनोवृत्तिका विलास है। लम्बाई–चौड़ाईका, कहीं उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम, ऊपर–नीचे कहीं भी अन्त नहीं है। इसलिए लम्बाई–चौड़ाईका आदि–अन्त मनका एक विकल्प है और, वजनका कहीं अन्त नहीं है। इसलिए सत् स्वरूपमें एक मन, दो मन, दसमनका जो वजन है वह सापेक्ष कल्पना है। मनोविलास है। तब खट्से यह बात आती है कि आखिर मैं हूँ कौन? इसीको रमणमहर्षि लोगोंसे कहते थे कि 'को अहम्?' 'मैं कौन ? मैं कौन हूँ ?' इसका चिन्तन करो कि 'मैं कौन हूँ'। यह भी ध्यान ही है। क्योंकि जहाँ चिन्तनकी धारा है, जहाँ घण्टे–दो–घण्टे चिन्तन होता है। जहाँ एक शरीरमें आबद्ध होकर चिन्तन करता है, जहाँ दूसरेसे अपने मनको हटाना पड़ता है वहाँ कर्तृत्वके बिना स्थिति नहीं हो सकती और, शास्त्रीय भाषामें ध्यान कर्तृत्वपूर्वक ही प्रारम्भ होता है। ध्यान किया जाता है। तब अकर्त्तापन कैसे मालूम पड़ता है कि यह तो हो रहा है। ध्यान हो रहा है, ध्यान है और ध्यान किया जा रहा है। तो, ध्यान किया जा रहा है यहाँसे ध्यान प्रारम्भ होता है। जैसे कोई मशीन चलानी हो तो आप प्रयत्न करके उसको चला देते हैं। वहाँ कर्त्तृत्व है। परन्तु वह ऑटोमेटिक चलती रहती है। ऐसे ध्यान होता रहता है, परन्तु ऑटोमेटिक चलनेवाली मशीन भी कहीं जाकर खत्म हो जाती है। वह शाश्वत नहीं चल सकती, उसको कहीं–न–कहीं समाप्त होना पड़ता है। इसलिए, ध्यानके प्रारम्भमें कर्त्तृत्व रहता है और ध्यानके मध्यमें भोर्क्तृत्व रहता है और, ध्यानके अन्तमें कर्त्तृत्व और भोर्क्तृत्वकी समाप्ति रहती है। परन्तु, आपने कहीं अपने आपके

बारेमें जाना है ? यह प्रश्न आपके मनमें, यह जिज्ञासा आपके मनमें उठी कि नहीं उठी? कि आखिर मेरी लम्बाई–चौड़ाई कितनी, और मेरी उम्र कितनी और मेरा वजन कितना ? तो, आप वजन, उम्र और लम्बाई–चौड़ाई इन तीनोंको छोड़कर जब अपने स्वरूपका चिन्तन करने लगते हैं तब वहाँ आदेशकी जरूरत नहीं रहती है। वहाँ शासनकी आवश्यकता नहीं रहती है, वहाँ 'संसन'की आवश्यकता होती है। क्योंकि आप अपने आपको विषय नहीं कर सकते। इसको 'कर्तृकर्मविरोध' बोलते हैं। आप अपने आपको विषय नहीं कर सकते, माने देखनेवाला और देखा जानेवाला एक नहीं हो सकता। या तो आप शीशेमें अपने प्रतिविम्बको देखते हो, या तो दूसरेको देखते हो। इसलिए, स्वयंप्रकाश आत्मा जब अपनी लम्बाई–चौड़ाईकी, वजनकी और उम्रकी कल्पना करते–करते हार मान बैठता है, तब उस समय श्रुति कहती है–'भटको मत बेटा, असलमें, देश, काल, वस्तु सब कुछ तुम्हारी मानसिक कल्पना है और तुम अकल्पित सत्य, अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा हो। श्रुति आदेश नहीं देती। श्रुति अनुशासन करती है।

●

प्रवचन : 21

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजयुवतिजनाह्वानतः प्रोल्लसन्तं।
मन्दं मन्दं हसन्तं मृदुमधुरवचो नेति नेति ब्रुवन्तम्।।
गोपालीपाणिताली तरलितवलयध्वानमुग्धान्तरालं।
वन्दे तं देवमिन्दीवरदलिततनुं सुन्दरं नन्दबालम्।।

पवित्र होकर भगवन्नामका उच्चारण करके पहले सद्‌गुरुका स्मरण करना चाहिए। ध्यानकी मूलविद्या यही है। तो, इष्टदेवताका ध्यान किया जाता है हृदयमें और सद्‌गुरुका ध्यान किया जाता है सिरमें। आपलोग कभी न्यास करते होंगे। तो, 'ऋषये नमः शिरसि'- ऋषिको। सिरमें नमस्कार किया जाता है। और, छन्दको मुखमें, और देवताको हृदयमें नमस्कार किया जाता है। हृदयमें इष्टदेवता, मुखमें मन्त्र और सिरमें सद्‌गुरु। आपकी निष्ठा हो तो, जिसने आपको बाल्यावस्थामें नाम सुना दिया है उसको भी सद्‌गुरु मानकर उस नामका जप चला सकते हैं। परन्तु, ईश्वर प्राप्तिके लिए जो सद्‌गुरु होता है, उसका स्थान दूसरा होता है। और जातीय संस्कारके लिए, साम्प्रदायिक संस्कारके लिए जो गुरु होता है उसका स्थान दूसरा होता है।

अब जिज्ञासुके लिए तो बिलकुल सामनेका गुरु चाहिए जो उनके प्रश्नोंका, जिज्ञासाओंका ठीक-ठीक समाधान कर सके। ज्ञानका स्रोत शिरोभागमें है और शब्दका स्रोत मुखछिद्रमें है। और इष्टदेवता परमप्रेमास्पद हृदयमें है। आपको चिन्ता होती है तब सिरदर्द होता है। और, जब भय होता है तब धड़कन बढ़ती है। इससे मालूम पड़ता है कि मनोवृत्तियोंका प्रभाव शरीरके अलग-अलग अङ्ग पर अलग-अलग ढङ्गसे पड़ता है।

सद्‌गुरुके द्वारा दिये हुए मन्त्रका जो जप नहीं करता, उसने तो रास्तेमें-से कोई चीज उठा ली है। वह हककी चीज नहीं है। तो, महात्माओंका दिया हुआ मन्त्र और उनका दिया हुआ इष्ट और उनकी दी हुई सेवा। तो, सेवामें भी भावकी प्रधानता होती है। सखाभावसे, स्वामीभावसे, वात्सल्यभावसे, शृङ्गारभावसे, अलग-अलग भाव होते हैं और अलग-अलग अपने सम्बन्ध होते हैं। और, ध्यान केवल भगवान्‌का ही नहीं किया जाता है, अपना भी किया जाता है। अपने भावके अनुसार हम भगवान्‌की यह सेवा कर रहे हैं। ये तीर्थयात्रा आदि जो हैं वे प्रारम्भिक हैं। आस्था उत्पन्न करनेके लिए हैं कि ईश्वर है। घरके कर्मकाण्डोंमें श्राद्ध आदि जो हैं वे आस्था उत्पन्न करनेके लिए हैं कि देहके न रहनेपर भी आत्मा रहता है-यह आस्था उत्पन्न करनेके लिए है। ईश्वरकी भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ आस्था उत्पन्न करनेके लिए हैं कि ईश्वर है। पूजाकी कक्षा दूसरी है और सेवाकी कक्षा दूसरी है। पूजा तो सामान्य है सबके लिए और सेवा तो जिसको भावविशेषकी प्राप्ति है, उसमें तो माता क्या सेवा करे यह अलग व्यवस्था है, पत्नी क्या सेवा करे यह अलग व्यवस्था है और, मित्र क्या सेवा करे यह अलग व्यवस्था है। अपने-अपने भावके अनुसार सेवा की जाती है। पूजा तो विधिशास्त्रके अनुसार होती है और सेवा सम्बन्धके अनुसार होती है। तो,

उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यान धारणा

सहजावस्था उत्तम है। ध्यान-धारणा मध्यम है।

अधमा शास्त्रचिन्ता च, तीर्थयात्राधमाधम।

इधर-उधर भटकनेकी अपेक्षा अपने हृदयके मन्दिरमें अपने प्राण-प्यारे श्याम-सुन्दरको देखना यह सबसे बड़ी वस्तु है। तो, आज सबेरे ही सुननेमें आया-

पूजाकोटि समं स्तोत्रम्

स्तोत्रकोटिसमं जपः।

जपकोटि समं ध्यानम्

ध्यानकोटिसमं लयः।।

लयकोटिसमं ज्ञानम्

ज्ञानम् ब्रह्मैव निर्मलम्।।

करोड़-करोड़ पूजाके समान स्तोत्र है, क्योंकि वह भगवद् स्वरूपका साक्षात् ज्ञान कराता है। और करोड़ स्तोत्रके समान जप है 'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः'। जपसे सिद्धि होती है, जपसे सिद्धि होती है, जपसे सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं करना। और करोड़ जपके समान ध्यान है। और करोड़ ध्यानके समान लीन हो जाना है और करोड़ लयकी अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है। अब ज्ञान तो देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छिन्न, देश, काल, वस्तुका प्रकाशक, स्वयं प्रकाश, देश-काल-वस्तुका अधिष्ठान, स्व स्वरूप ही है ज्ञान। 'ज्ञानं ब्रह्मैव निर्मलम्'-उसमें मायाका कहीं लेशमात्र भी नहीं है।

तो, किसीने कहा कि महाराज, समय कम है जरा। तो एक ही साथ दोनों हो जाय! हाँ, दोनों ही ड्यूटी एक ही साथ पूरी हो जायेगी। ड्यूटी पूरी करना दूसरी बात है, परन्तु इसको भी प्रेमसे करना चाहिए हो! भगवान्का एक नाम लो। आप अपने मन्त्रका उच्चारण करो। और, एक तुलसी भगवान्के चरणारविन्दमें रख दो। एक मन्त्र बोलो-और एक तुलसी रखो, एक मन्त्र बोलो और एक तुलसी रखो। तो, तुलसी हो गयी वस्तु और भगवान्के चरणोंमें रखना हो गया क्रिया और नामका बोलना हो गया मन्त्र। और इसमें जो भगवान् सामने है वह हो गया ध्यान। हल्का ध्यान है। एक चन्दन लेकर एक बिन्दी भगवान्के भौंहोंके मध्यमें लगाओ। कस्तूरीकी बिन्दी हो, गोरोचनाकी बिन्दी हो और एकबार भगवन्नामका उच्चारण करो और एकबार उनके

मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए चेहरेको देख लो। इसमें शब्द है, इसमें क्रिया है, इसमें वस्तु है और इसमें सामने झाँकी है। जप करते जाओ, भगवान्‌की मूर्तिको देखो। सामने मूर्ति हो तो सामनेकी मूर्ति देखो और आँख बन्द करके फिर हृदयमें देखो। हृदयमें न दिखे तो फिर आँख खोलकर सामने देखो। सामनेकी ठीक-ठीक दिख जाय तो आँख बन्द करके हृदयमें देखो। और मन्त्रका जप करते जाओ। और मूर्तिकी आवश्यकता न होय तो भीतर बारम्बार...बारम्बार...बारम्बार... भगवान्‌का दर्शन करो। जो आकार दिखे फिर दुबारा वही दिखे। बीचमें दूसरा कोई आकार नहीं दिखना चाहिए। 'शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ' जो आकार शान्त हो जाय माने दिखना बन्द हो जाय, फिर वही आकार दिखने लगे। वृत्ति अनेक हों परन्तु उसमें आकार एक होय। तो, जब बारम्बार-बारम्बार आकार आने लगता है तो हमारी ओरसे स्मृति होती है। समझ लेना कि भगवान्‌ने हमको याद किया। अपना आकार हमारे पास भेज रहे हैं, स्मृति हो रही है। और, हम अनुस्मृति कर रहे हैं। 'नारायणानुस्मृति' बोलते हैं। भगवान्‌का अनुग्रह भगवान्‌की दया हमारे ऊपर उतर रही है कि हमारे ध्यानमें अपना आकार देते हैं और, हम बारम्बार उसको पकड़नेकी कोशिश करते हैं। यह प्रेमसे अनुस्मृति होती है।

प्रेमपूर्वम् अनुध्यानं भक्तिरित्यभिधीयते

प्रेमसे चिन्तन करो भगवान्‌का। तुलसीसे करो, चन्दनसे करो, सामने मूर्ति लेकर करो, मन्त्रोच्चारण करके करो। 'येन केन प्रकारेण'-चाहे जैसे कैसे अपने हृदयमें जो ज्ञानकी वृत्ति उदय होती है उसका विषय एक ही होय। एक ही विषयको हमारी वृत्ति बारम्बार पकड़े। 'तत्रैकतानता ध्यानम्' 'प्रेमपूर्वम् अनुध्यानम्'-तो जपके साथ, जप माने एक मन्त्रको, एक नामको बारम्बार दोहराना। इसीसे इष्टदेवताका दर्शन होता है।

दर्शन पहले भीतर होने लगे, तो बाहर होना शक्य हो जाता है। क्योंकि जिस चीजको हम मनमें देख सकते हैं आँखके द्वारा भी उसको देख सकते हैं। क्योंकि आँखोंके द्वारा मन ही देखता है। मनमें जो प्यारा लगने लगता है वह आँखको भी प्यारा लगने लगता है। मनमें जो दिखने लगता है वह आँखके द्वारा भी मनको दिखने लगता है। इसलिए पहले मनमें भगवान्‌का रूप दिखे इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

स्तोत्रमें भगवान्‌के गुणोंका वर्णन होता है, स्तुति होती है। और जपमें भगवान्‌की मूर्तिका बारम्बार दुहराना होता है। तो, भगवद् विषयकज्ञानकी उत्पत्ति होती है स्तोत्रसे और भगवद् विषयकध्यानकी उत्पत्ति होती है जपसे। 'जपकोटि समं ध्यानम्'– जपसे बढ़कर ध्यान होता है। करोड़–करोड़ जपके समान भगवान्‌का ध्यान है और ध्यानसे भी बड़ा है लय। लय माने प्रपञ्चको भूलकर, अपनेको भूलकर भगवान्‌में डूब जाना। और 'लयकोटि समं ज्ञानम्' और स्वयंप्रकाशका जगमगाते रहना, छा जाय सबके ऊपर, हावी हो जाय सबके ऊपर–यह आत्मशक्तिका जो उद्भव है, आविर्भाव है, प्राकट्य है यह लयसे भी श्रेष्ठ है। लय बीज है और ज्ञान जो है वह सन्मात्र है। यह जो है, है, है यह बोलते हैं लोग कि 'है'। मालूम पड़ता है कि नहीं ? 'है' बस और कुछ नहीं। क्या है ? कि 'है'। तो असलमें 'है' भी एक बीजात्मक दृश्य है कि मैं देख रहा हूँ। 'मैं देख रहा हूँ' यह भी मालूम पड़ता है कि नहीं ? यह भी मालूम पड़ता है कि यह बीजात्मक ज्ञान है। ज्ञान बीज है। सत्ताबीज, ज्ञानबीज और यह प्रिय है, तो प्रियताबीज, आनन्दबीज। इन तीनोंको जब एकमें मिला देते हैं और देश, काल, वस्तुको छोड़ देते हैं तब उस वस्तुका नाम ईश्वर हो जाता है। और, जिसको यह बीज दिख रहा है, वह त्वम् पदार्थ, शुद्ध प्रत्यक् आत्मा उसीको श्रुति ब्रह्मरूपसे बोधन कराती है कि वह साक्षात् परब्रह्म परमात्मा है।

आओ! जरा लयकी बात करें। योगियोंवाले लयकी बात नहीं, भक्तोंवाली लयकी बात। यह 'ली' और 'ला'-लीला है न? यह लालीको छिपानेके लिए लीला है भला! 'ली' माने लीनता और 'ला माने दाता। 'लीला' माने जो हमको भगवान्में, परमात्मामें, परमपुरुषमें लीन कर दे उसका नाम 'लीला'। ज्ञान खींचता नहीं है और लीला खींचती है। लीला क्रियाशील होती है और ज्ञान निष्क्रिय होता है। ज्ञान उत्पाद नहीं करता है बल्कि बौद्धलोग ज्ञानकी भी उत्पत्ति मानते हैं। 'प्रतीत्यसमुत्पाद' जब कोई वस्तु सामने आती है तो उससे यह उत्पन्न हो जाता है। परन्तु, ज्ञान उत्पन्न होगा तो क्षणिक होगा, नाशवान् भी होगा। इसलिए, सच्चाज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, वह अपना स्वरूप है। परन्तु, लीलामें क्रिया है। इसमें भगवान् हँसते हैं, खेलते हैं।

अब आओ, आपको एकबार नन्दबाबाके आँगनमें ले चलते हैं। वहाँ खींचनेवाला कृष्ण मौजूद है। कृष्ण माने चुम्बक। यह काला चुम्बक हो, लोहा। 'कर्षति' जो आकृष्ट करता है उसका नाम है 'कृष्ण'। 'दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तम्'-यह देखो एक आंगन है, नन्दबाबाका आँगन-'गोकुल'। 'गोकुल' माने यह एक जगह रहनेवाली चीज नहीं। जगह-जगह घूमनेवाली, दिल-दिलमें घूमनेवाली। यह गायोंको लेकर व्रजवासी लोग जहाँ-जहाँ घास, चारा, पानी अच्छा होता है वहाँ जाकर बस जाते हैं। वह गोकुल है-चलता-फिरता गाँव। वह सबके शरीरमें रहता है और आदमीके साथ चलता-फिरता होता है। तो, देखो इसमें आनन्दनन्दका आँगन है। और, यशोगान करनेसे भगवान्का यशगान करनेसे यहाँ भगवान् प्रकट हुए हैं। यह यशोदामैयाके लाडले, नन्दबाबाके आनन्दरूप नन्दानन्द आँगनमें घुटनोंके बल चल रहे हैं।

आपने कभी बालक देखा है ? हाँ देखा है कि हमारे घरमें

कई बालक हैं। अच्छा, उन बालकोंमें एक साँवरा बालक है। अच्छा, साँवरा बालक है ?–हाँ, साँवरा बालक है। उसके कमरमें करधनी है। उसके पाँवमें नूपुर है। उसके कण्ठमें बघनखा है। उसके सिरपर गोरोचनाका तिलक लगा हुआ है। मैयाने रक्षातिलक, डिठौना और लगा रखा है। और, घुटनोंके बल, हाथके बल–'दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तम्'–हाथोंसे और घुटनोंसे चल रहा है। उधर कुछ ग्वालिनीने बुलाया कि लाला, हमारी ओर आओ। तो, थोड़ा चार डग उधर चलता है। दूसरी गोपी बुलाती है तो चार डग उधर चलता है। उधर यशोदा मैया बुलाती है तो सबकी ओरसे मुख फेरकर यशोदा मैयाकी ओर चलता है। आँखोंमें स्नेह है। होठोंमें लाली है। छोटी–छोटी दतुलियोंमें श्वेतिमा है। यह आपके मनको आकृष्ट कर रहा है। 'अपहरति मनो मे कोऽप्ययं कृष्णचौरः।' यह काला चोर हमारे मनको चुरा रहा है। 'पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानाम्।' गोपियोंका प्रेम ही पुञ्जीभूत होकर प्रकट हुआ है। 'श्यामीभूतं ब्रह्म मे सन्निधत्ताम्'–यह साँवरा–सलोना ब्रह्म है। उसमें दुनियाका कोई रंग नहीं है। यह रंगाभावसे उपलक्षित है। यह है साँवरा परन्तु बड़ा सलोना नमकीन, जैसे कोई नींबू–नमककी चीज देखकरके जीभपर पानी आता है ऐसे इस साँवरेको देखकर हृदय पानी–पानी हो जाता है।

व्रजयुवतीजनाह्वानतः प्रोल्लसन्तम्

छलकता है अपने भक्तोंके, प्रेमियोंके बुलाने पर। और, मन्द–मन्द मुस्कान है चेहरे पर। तो, आप एकबार अपने पूरे मनको इसमें लगा दें।

दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजयुवतीजनाह्वानतः प्रोल्लसन्तम्।
मन्दं मन्दं हसन्तं मृदुमधुरवचो नेति नेति ब्रुवन्तम्।

कितनी कोमल–मृदु वाणी है! जैसे मधुक्षरण कर रही हो। और माँ...माँ...माँ बोल रहा है।

गोपालीपाणिताली तरलितवलयध्वानमुग्धान्तरालम्

गोपियाँ बजाती हैं चारों ओरसे ताली, उनके कंगन भी खनखनाते हैं उसमें और इससे वह मुग्ध हो जाता है। ओहो...इतनी सुन्दर तालियाँ बजा रही हैं गोपियाँ। मैं भी बजाऊँ, नकल करनेकी कोशिश करता है। परन्तु नकल करनेके लिए जब हाथ उठाता है तो, धरतीमें लेट जाता है। शरीर सम्भलता नहीं और जब लेट जाता है तो ताली बजती नहीं है। मुग्ध हो रहा है कि हम भी कभी ताली बजावेंगे 'गोपियोंके समान'।

वन्दे तं देवमिन्दीवरदलिततनुं सुन्दरं नन्दबालम्

यह श्याम, साँवरा, नन्द बालक–यह कहनेका अभिप्राय क्या हुआ ? आपके संसारमें लगे हुए मनको हटाकर एक ईश्वरकी अभिव्यक्ति, जिस रूपमें साक्षात् परमेश्वर ही अभिव्यक्त हुआ है उसमें महत्त्वबुद्धिसे अपने मनको लगाना पड़ेगा। कभी आँखमें कीचड़ आ जाय, आता नहीं है ऐसा बोलते हैं परन्तु नहीं, आता है। तो, पोंछ दीजिये इसको। कहीं धूल पड़ जाय अपने शरीरपर तो इसको पोंछ दीजिये। आहा....इतने साँवरे....इन्दीवरके समान, नीलकमलके समान मृदुल कलेवर पर, यह धूल लग गयी? आप अपने वस्त्रसे उसको पोंछ दीजिये। अभी इसको भूख लगी है, तो मुँहमें कुछ खिला दीजिये। उसका चन्दन मिट रहा है, तो लगा दीजिये। उसका बघनखा टेढ़ा हो रहा है तो सीधा कर दीजिये। इसको सेवा कहते हैं हों! इसका नाम पूजा नहीं है। इसका नाम वात्सल्यभावकी सेवा है। यह विधि प्राप्त नहीं है। यह जो मीमांसकलोग विधि-विधि कहते हैं, 'चोदनालक्षणोत्थो धर्मः' उसके अन्तर्गत यह नहीं है। यह ड्युटी नहीं है। यह किसीका आदेश नहीं है। यह अपना प्रेम ही सेवाके रूपमें प्रकट होता है।

प्रेमकी सहचारिणी कौन है?–आपको मालूम है ? जिससे

प्रेम होता है उसकी सेवा होती है। बिना प्रेमके जो सेवा होती है वह नौकरकी होती है। और, प्रेमसे जो सेवा होती है, वह सम्बन्धकी होती है। और, जब सम्बन्धका आलम्बन भी छूट जाता है, कब छूट जाता है...जब, यह देखो श्याम, यह देखो श्याम....। जब सब जगह भगवान् हो जाते हैं तब सम्बन्धका आलम्बन छूट जाता है। तो, सबकी ही सेवा होती है। क्रियामात्र ही सेवा हो जाती है। आँखसे देखना सेवा है। मुँहसे हम उसीसे बातकर रहे हैं। हाथसे उसीको छू रहे हैं। पाँवसे उसीके पास चल रहे हैं। तो, भगवान्के साथ सम्बन्ध रखकरके संसारके सम्बन्धको छोड़ना, भगवान्की सेवा करके संसारकी सेवा छोड़ना, भगवान्का चिन्तन करके प्रपञ्चका चिन्तन छोड़ना यह एक सहारा चाहिए।

आप डींग मत हाँकिये, ढोंग मत कीजिये। आप दूसरोंको धोखा दे सकते हैं अपनेको धोखा नहीं दे सकते। ईश्वरको धोखा नहीं दे सकते। अपने दुश्चरित्रको छोड़नेके लिए सच्चरित्रका आश्रय लीजिये। अपने दुर्भावको छोड़नेके लिए सद्भावका सहारा लीजिये। अपनी दुर्वासनाको मिटानेके लिए सद्वासनाका सहारा लीजिये। दुर्गुणको मिटानेके लिए सद्गुणका आश्रय लीजिये। यदि समसत्ता–सद्गुण आप धारण नहीं करेंगे तो, यह दुर्गुण आपके जीवनसे मिटेंगे नहीं। इसलिए, सेवाका भाव स्वीकार कीजिये। भगवान्के गुणानुवादका श्रवण करके सेवाका भाव लाइये। यह श्रवणसे ही होगा। बिना श्रवणके किसीके मनमें सम्बन्धका भाव नहीं आवेगा। बिना श्रवण हृदयमें भगवान्की मूर्ति नहीं आवेगी बिना श्रवणके सेवा नहीं होगी। बिना श्रवणके प्रपञ्चकी विस्मृति नहीं होगी। क्योंकि अलौकिकको प्राप्त करनेके लिए श्रवणके सिवाय और कोई चारा नहीं है।

देखो, इस ढङ्गसे भगवान्का नाम लेते जाओ। राम....

राम... राम..., शिव...शिव...शिव..., कृष्ण...कृष्ण... कृष्ण... और खिलाते भी जाओ। एक-एक ग्रास मुँहमें दो। हमारे एक मित्र हैं, शायद यहाँ कथामें बैठे हुए हों। एकदिन वे बता रहे थे कि एकदिन मैं ठाकुरजीको मानसिक सेवामें खिलाने लगा, सो महाराज उसने हमारी अँगुली ही पकड़ ली दाँतसे, काट लिया, बड़ा चञ्चल है! देखो, ऐसा अनुभव आपको कभी होता है कि नहीं होता है ? इसका अर्थ यह है कि आपको दुनिया थोड़ी देरके लिए भूलती जरूर है।

अच्छा, यह जो लीला है, कोई कहे कि यह वेदान्तके विरुद्ध है तो, हम साफ कह देंगे कि उसको वेदान्तका ज्ञान नहीं है। यह मूर्ति तो बिलकुल मानस है। मूर्ति तो मनोवृत्तियोंको अपनी ओर प्रेमदान करके खींचती है। क्या इस मूर्तिके मानस होनेमें किसी वेदान्तीको कोई आपत्ति है ? और, इसमें प्रपञ्चका विस्मरण हो गया यह क्या अनुभव सिद्ध नहीं है ?

मानसिक बालकृष्ण छोटे हैं। देखो, हमारे मनकी गोदमें बैठे हुए हैं। हमारे मनकी गोदमें ये श्यामसुन्दर बैठकर मनके बिखरावको रोकते हैं, अपनी प्यार भरी चितवनसे, मन्द-मन्द मुस्कानसे। तो, यह छोटा होनेका अर्थ ही यह हुआ कि जो ब्रह्म मन-वाणीसे परे है, वह ब्रह्म हमारे मनमें आकर, वाणीमें आकर प्रकट हो रहा है। अवतारको स्वीकार न करना और वेदान्ती होना, ये अशास्त्रीय वेदान्ती हैं। मनमाने, वेदान्ती हैं। यही तो अवतार है जो ब्रह्म मनके पीछे स्वयं-प्रकाश अधिष्ठान है वही ब्रह्म जब हमारी मनोवृत्तिमें आकर एक-एक वृत्तिके साथ विहार करने लगा तो, वह अवतार नहीं है तो और क्या है ? जब आध्यात्मिक अवतार हो सकता है तो आधिदैविक और आधिभौतिक अवतार क्यों नहीं हो सकता ?

तो, जो लोग सम्प्रदायकी रीतिसे, वेद-वेदान्तकी रीतिसे, जो वेदान्तका स्वाध्याय नहीं करते हैं और दूसरोंका भी जो आलम्बन है

सहारा है उसको छुड़वा देते हैं, बुड्ढेके हाथमें लठिया है तो कहते हैं कि हाय...हाय...तुम लठिया लेकर चलते हो। यह तो तुम्हारी बड़ी बेइज्जती है, फेंक दो लकड़ी। अब वह लठिया फेंककर बुड्ढा वहीं गिर जायेगा बेचारा इसका उनको ख्याल नहीं है। कोई चश्मा लगाकर चल रहा है, वेदान्तीजी आये और बोले कि राम...राम... इससे तो जाहिर होता है कि तुम्हारी आँख ठीक नहीं है, इसका लोगोंमें क्यों विज्ञापन करते हो? उतारकर फेंक दो चश्मा। अब बेचारेने फेंक दिया चश्मा तो, अन्धा होकर वहीं बैठ गया। आगे बढ़ ही नहीं सकता। तो यह चश्मा उतरवानेवाले और लठिया फिंकवानेवाले जो लोग हैं, वे सच्चे शास्त्रीय वेदान्ती लोग नहीं हैं। वे मनमाने शायरीके, गजलके, कहानीके, किस्से-चुटकुलेके वेदान्ती हैं। शास्त्रीय रीतिसे इन्होंने वेदान्तका स्वाध्याय नहीं किया है।

आखिरमें ब्रह्माकारवृत्ति क्या है? लो, हम सीधे गोली मारते हैं। वृत्ति ब्रह्ममें घुस गयी क्या ? अच्छा, तो ब्रह्म तुम्हारी वृत्तिमें अँट गया ? जो अनादि, अनन्त, परिपूर्ण ब्रह्म है वह तुम्हारी वृत्तिमें आकर समा गया? क्या ब्रह्म ऐसा ही है कि तुम्हारी वृत्तिमें आ जाय? क्या तुम्हारी वृत्ति ब्रह्ममें घुस गयी ? अज्ञानको निवृत्त करनेवाली ब्रह्माकारवृत्ति जो है वह क्या सच्ची है ? उसी झूठी ब्रह्माकारवृत्तिसे तुम कल्पित झूठी अविद्याको निवृत्त करते हो। ब्रह्ममें आकार है कि वृत्तिका आकार है ? वृत्ति विकारी तो किञ्चित् भी नहीं है, उसमें आकार क्या आवेगा? और ब्रह्ममें आकार कहाँसे आया ? तो, यह जैसे सत्ताकी अनुभूतिके लिए चित्तवृत्तिका निरोध अपेक्षित है, जैसे चित्त द्रष्टाकी अनुभूतिके लिए ध्येय, ध्यान, ध्याताका भेद करके द्रष्टारूपसे अवस्थिति आवश्यक है वैसे ही सद्चिदानन्दमें-से आनन्दका अनुभव करनेके लिए यह प्रियाकारवृत्ति अपेक्षित है। आनन्दके ध्यानसे संसारमें वैराग्य होता है। अपने चेतनपनेके

ध्यानसे संसारमें असङ्गता आती है और अपने 'सत्' पने 'है' पनेके ध्यानसे विक्षेपकी निवृत्ति होती है।

विक्षेपकी निवृत्ति होती है 'सत्'के ध्यानसे, सङ्गकी निवृत्ति होती है चेतनपनेके ध्यानसे, राग-द्वेषकी निवृत्ति होती है 'आनन्द'के ध्यानसे। तो, यह तुम्हारा इष्टदेव सत् है, चित् है, आनन्द है और सच्चिदानन्दकी मूर्ति है। इसके ध्यानसे संसारसे वैराग्य भी होगा और वैराग्य दृढ़ होगा तो असङ्गता होगी, असङ्गता होगी तो विक्षेपकी निवृत्ति हो जायेगी और आप संसारसे छूट जायेंगे। तत्त्वज्ञानकी योग्यता प्राप्त हो जायेगी।

अब आओ, अभी यह भक्तलोग कैसा भाव करते हैं, कैसी युक्ति है उनकी, संसारसे मनको हटानेके लिए कैसा तन्त्र है इनका इसके बारेमें बताते हैं।

'रासमण्डल' एक यन्त्र है! और, उसमें राधा-कृष्णका नाम मन्त्र है। उसको जल्दी-जल्दी गिनती पूरी करनेके लिए मत कीजिये। टाईम पूरा करनेके लिए मन्त्र मत कीजिये। उसको प्रेमसे आने दीजिये। एक वेदान्ती है निदिध्यासन कर रहा है। निदिध्यासनसे कमकी बात तो हम वेदान्तियोंसे करते ही नहीं हैं। क्योंकि वे कहेंगे कि हमको बच्चा समझते हैं! ज्ञानी नहीं समझते है! निदिध्यासन नाम लेने पर वे समझते हैं कि हाँ, कुछ श्रवण-मननके बादकी बड़ी चीज आ गयी। तो, एक वेदान्ती निदिध्यासन कर रहा है। निदिध्यासन माने ध्यान ही होता है, परन्तु वेदान्तियोंका ध्यान। दूसरोंका ध्यान निदिध्यासन नहीं होता। धर्मात्माओंका, या उपासकोंका, या भक्तोंका ध्यान दिध्यासन नहीं है। वह दिध्यासन नहीं है ध्यान है और वेदान्तियोंमें ध्यान नहीं है निदिध्यासन है क्योंकि जिज्ञासा इनकी मरती नहीं है। ध्यान करते समय भी वेदान्तीकी जिज्ञासा मरती नहीं है। तो, जो ध्यानमें जिज्ञासा मिली है

इसलिए वह 'दिध्यासा' आ गयी। यह 'सन्' प्रत्यय जो आया वह जिज्ञासावाला आया और ध्यान जो आया वह योगियोंवाला आया। और, योगियोंका ध्यान 'तत्रैकतानता'–यह योगियोंका ध्यान और जिज्ञासाका 'सन्' ये दोनों मिलकरके इनका 'दिध्यासा हो जाता है। उसको निदिध्यासन बोलते हैं। प्यास भी बनी है और ध्यान भी हो रहा है। ज्ञानकी प्यास! भक्तिमें होती है प्रेमकी प्यास! इष्टदेवकी प्यास! और वेदान्तमें होती है ज्ञानकी प्यास। तो निदिध्यासनमें जो यह 'सन' है, 'आसन' है। यह जिज्ञासाका, पिपासाका 'सन' माने 'आसन' है।

अब आगे बढ़ते हैं। तो विजातीय प्रत्ययका तिरस्कार करके सजातीय प्रत्ययका जो आवर्तन है उसको निदिध्यासन बोलते हैं। अनात्माकारवृत्तिका परित्याग और आत्माकारवृत्तिकी आवृत्ति। 'आवृत्ति रसकृदुपदेशात्'–वेदान्तको आवृत्ति मान्य है। क्यों मान्य है? कि 'तत्त्वमसि' महावाक्यका उपदेश नौ बार किया गया। तो, अगर आवृत्ति इष्ट न होती तो नौ बार एक ही बात क्यों कही जाती ? 'तत्वमसि श्वेतकेतो'–ब्रह्मसूत्रने इसका निर्णय किया कि चूँकि नौ बार उपदेश किया गया है, इसलिए आवृत्ति करनी चाहिए। अब आपकी वृत्तिमें क्या आ रहा है ? कि अनात्माकारका तिरस्कार हो रहा है और आत्माकारका प्रवाह हो रहा है। बारम्बार–बारम्बार आत्माकार आ रहा है। अब यह जो बारम्बार–बारम्बार आत्माकार आ रहा है इसको आप ले चलिये प्रेम भक्तिके क्षेत्रमें।

यह उसी सत्ताका, जिस सत्तामें तुम्हारा आत्माकार है यह मत भूल जाना कि हमारा वास्तविक है और दूसरोंका कल्पित है।

उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना।

यह निदिध्यासनमें जो आत्माका आकार है, वह उसी सत्ताका है जिस सत्ताका अनात्माका आकार है। तभी वह

अनात्माकारके निवारणमें समर्थ है। यह मत भूल जाना कि हम तो निदिध्यासन करते हैं और बाकीके लोग कल्पना करते हैं। संस्कृत भाषामें गुरुशास्त्रसे प्राप्त जो भावना है, उस भावनाको साधक मानते हैं। अब आओ आपको प्रेमके राज्यमें ले चलते हैं। निदिध्यासनने वहाँ क्या रूप धारण किया है, वह बताते हैं।

वृत्ति अङ्गना है। आपके मनमें जो नयी-नयी वृत्तियाँ उठती हैं, वे गोपी हैं। और, जो बीच-बीचमें आत्माका आकार आता है यह श्रीकृष्ण हैं। परमप्रेमास्पद सद्घन, चिद्घन जो आत्माका आकार आता है वह कृष्ण है। वृत्ति और आत्माकारता, आत्मा नहीं है आत्मा तो वृत्ति और आकार दोनोंसे विलक्षण है। तब ? वृत्ति और आत्माकार, वृत्ति और आत्माकार, वृत्ति और आत्माकार एक खेल आपके अन्तःकरणमें चल रहा है। अब, आप प्रेमके राज्यमें देखें कि यह शरीर व्रजभूमि है जिसमें हृदय वृन्दावन है और हृदयका वह निवृत्त प्रदेश जहाँ अनात्माकारताका प्रवेश नहीं है 'नित्यनिकुञ्ज' है और वहाँ राधा-कृष्ण....राधा-कृष्ण....राधा-कृष्ण....

अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवो
माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना।
इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः
संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः।।

यशोदानन्दन श्यामसुन्दर, देवकीनन्दन भी बोलते हैं। वसुदेव शुद्ध अन्तःकरण हैं और देवकी शुद्ध बुद्धि हैं।

दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः। कठ.

सूक्ष्म बुद्धि है देवकी और शुद्ध, पवित्र, सात्त्विक अन्तःकरणका नाम है वसुदेव। परन्तु, वसुदेव कृष्णको पैदा नहीं कर सकते। वह तो शुद्ध अन्तःकरण बहिरङ्ग साधन हैं। भगवान्‌के प्राकट्यमें अन्तरङ्ग साधन है देवकी। अब देखो, आपका शरीर व्रज

है, आपका हृदय वृन्दावन है, और उसमें अनात्माकारका जहाँ प्रवेश नहीं है वह नित्यनिकुञ्ज है और वहाँ वृत्ति राधिका है और आत्माकार श्रीकृष्ण है और बारम्बार कभी तरङ्ग उठती है, कभी शान्त होती है। कभी तरङ्ग उठती है कभी शान्त होती है। अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवः-भक्तिका तिरस्कार करनेवाले वेदान्तका ही तिरस्कार करते हैं और, वेदान्तका तिरस्कार करनेवाले भक्त अपनी भक्तिका ही तिरस्कार करते हैं। क्योंकि असलमें अन्तरङ्ग स्थितिमें दोनों एक है।

ज्ञानस्य या पराकाष्ठा सैवभक्तिः प्रकीर्तिता।
भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैवज्ञानं प्रकीर्तितम्।।

ज्ञान और भक्तिमें भक्ति आसक्तिका निवर्तक है, वैराग्य है, असङ्गता है और ज्ञान अविद्याका निवर्तक है। निवर्तिके भेदसे दोनोंमें भेदकी कल्पना है। स्वरूपके भेदसे भेदकी कल्पना नहीं है। असलमें रूप देखनेवाले मनका नाम आँख है। शब्द सुननेवाले मनका नाम कान है। तो, यहाँ विषयके भेदसे मनका ही भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंके रूपमें नाम है। इसी प्रकार, आसक्ति-निवर्तक-वृत्तिका नाम भक्ति है और अविद्या निवर्तकवृत्तिका नाम ज्ञान है। वृत्तित्वेन दोनों वृत्ति हैं और दोनोंमें परमात्माका प्रतिबिम्बन है। इसलिए ज्ञान-भक्तिका भेद न करके आओ अपने हृदयमें देखो।

अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवः।

प्रत्येक वृत्तिके अन्तरालमें माधव है, कृष्ण है, आत्माकार है, ब्रह्माकार है, सच्चिदानन्दघन है। और फिर वृत्ति-गोपी है। उसके बाद फिर ब्रह्माकार है, फिर वृत्ति है, फिर ब्रह्माकार है। 'शान्तोदितौ तुल्य- प्रत्ययौ'-यह निदिध्यासन हो रहा है। जो आकार शान्त होता है, वही उदित होता है। जो आकार उदित होता है वही शान्त होता है। जो यह शान्त और उदित होनेवाला जो आकार है यह अनात्मकारका निवर्तक है। यह आत्माकारका निवर्तक है और जो एकरस तत्त्व है

वह न किसीका निवर्तक है, न प्रवर्तक है, वही आत्मा है, वही ब्रह्म है, वही परमात्मा है। तो, निवर्त्य-निवर्तक भाव उसमें नहीं है। यह जो भेद हम करते हैं, वह निवर्त्य भेदसे भेद करते हैं।

झूठको निवृत्त करे सो सत्य, हिंसाको निवृत्त करे सो अहिंसा, चोरीको निवृत्त करे सो अस्तेय, कामको निवृत्त करे सो ब्रह्मचर्य, परिग्रहको निवृत्त करे सो अपरिग्रह। निवर्त्यके भेदसे यह पाँचोंके पाँच हैं। वास्तवमें क्या है ? वास्तवमें पाँचों शान्ति हैं। सत्य भी शान्ति, अहिंसा भी शान्ति, अस्तेय भी शान्ति, ब्रह्मचर्य भी शान्ति, अपरिग्रह भी शान्ति। तो, मूलतः परमात्मामें स्थित होनेके लिए, परमात्माका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए यह जो वृत्ति और भगवान्‌का हृदयमें खेल हो रहा है उसका ध्यान करो। अब देखो, आप लीलाका आस्वादन करो।

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः।।

(भागवत-10.33.8)

जैसे घनघोर घटा छाई हुई हो आसमानमें और उसमें बारम्बार बिजली चमक रही हो-यह ध्यान भागवतका नहीं, केनोपनिषत्‌का है-'विद्युतो व्यद्योतन्'-एक घनघोर छायी हुई रसवर्षी घटाके भीतर बिजलियाँ चमक रही हैं। आपके हृदयाकाशमें यह बिजली चमक रही है-'पादन्यासैः' ठुमुक-ठुमुक कर तालपर पादका विन्यास होता है और हस्तका सञ्चालन होता है तालके साथ, भावके साथ। कभी हटानेका भाव होता है, कभी बुलानेका भाव होता है, कभी सटानेका भाव होता है-'भुजविधुतिभिः' अपने हृदयकी ओर दोनों हाथ करना हृदयसे सटानेका भाव है दोनों हाथ ऐसे करना

यह हटानेका भाव है, इसमें भी प्रेम है। हाथका यूँ सञ्चालन करना– यह बुलानेका भाव है। आपके हृदयमें लीला हो रही है। ठुड्डी कैसे चल रही है, आँख कैसे चमक रही है भवें कैसे मटक रही हैं!! आप देखो 'राधाकृष्ण' 'राधाकृष्ण' 'राधाकृष्ण'–'भुजविधुतिभिः' मुस्कानकी छटा छिटक रही है होठोंसे–यह चमक है। 'भज्यन्मध्यैः' कमर लचक जाती है, कभी नीचे चले जाते हैं, कभी दायें चले जाते हैं, कभी बायें चले जाते हैं। छाती परसे आँचल हट जाता है। कुण्डल कपोलका स्पर्श करने लगते हैं। मुख पर पसीना आ जाता है और सारी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं–कपड़ेकी ग्रन्थियाँ और बालोंकी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। यह देखो कृष्णं मेघमें वृत्ति चमक रही है। कृष्ण नहीं चमक रहा, ब्रह्म नहीं चमक रहा है, ब्रह्माकार–वृत्तियाँ चमक रही हैं। 'अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवः'–देवकीनन्दन, यशोदानन्दन, नन्दनन्दन, श्यामसुन्दर, मुरलीमनोहर बाँसुरी बजा रहे हैं। रसकी वर्षा हो रही है और रासलीला हो रही है कि रासलीला नहीं हो रही है, निदिध्यासन हो रहा है।

आपको बड़े विनयके साथ मैं सुनाता हूँ। मैं कनखल गया एकबार। वहाँ बड़े विकट भिक्षु शङ्करानन्दजी रहते थे महाराज! वेदान्तके सिवाय दूसरी कोई बात सुनते ही नहीं। तो, मैं गया मुझसे वेदान्तकी चर्चा हुई। तो, वे जैसे वेदान्तकी चर्चा करते थे वैसे मैं भी किया करता था। मैं उनसे कम विकट नहीं था। जहाँ वेदान्तकी विकटताका प्रश्न आता है, मैं किसी विकट वेदान्तीसे कम नहीं। मैं भी विकट वेदान्तकी चर्चा करने लगा। तो, बोले कि तुम वेदान्त ऐसा जानते हो, समझते हो तो भागवत क्यों पढ़ते हो ? मैंने कहा– महाराज, भागवतमें तो वेदान्त ही वेदान्त है। बोले–अच्छा, तुम हमको सुनाओ। तो, तीन महीने उनके पास रहा और रोज घण्टे-घण्टे भर भागवत उनको सुनाता था। पहले ग्यारहवाँ स्कन्ध सुनाया

तो उनकी श्रद्धा बढ़ी भागवत पर। ओहो! ग्यारहवें स्कन्धमें ऐसा वेदान्त है ? फिर सातवाँ स्कन्ध सुनाया तो विवेककी पद्धति उसमें आयी। उन्होंने कहा भाई, अब तो हमारी भागवत पर श्रद्धा हो गयी, अब हमको रासपञ्चाध्यायी सुनाओ। आहा....तो, उनको रासपञ्चाध्यायी सुनाया। तीन महीने तक वह-भागवत सुनते रहे...। वैसे वे मूर्तिपूजा, अवतार, सगुण परमेश्वर, भक्ति सब मण्डलेश्वरोंका खण्डन इसलिए करते थे कि मण्डलेश्वर लोग भक्तिका प्रतिपादन करते हैं। कहते थे, यह लोग चेलोंको फँसानेके लिए करते हैं। ऐसे ही बिलकुल साफ-साफ बोलते थे। अब भला बताओ!

असलमें यह जो एक पन्थके प्रति तिरस्कारका भाव है, वह तिरस्कारका भाव आपके ही हृदयमें रहता है और आपके ही स्वरूपके एक अंशका तिरस्कार करता है। क्योंकि व्यतिरेक दृष्टिसे आप असङ्ग आत्मा हैं, अन्वयदृष्टिसे आप साक्षात् परमेश्वर हैं और व्यतिरेक-अन्वयकी दृष्टि छोड़ देनेपर आप साक्षात् ब्रह्म हैं। और ब्रह्मके सिवाय दूसरी कोई वस्तु है नहीं। तो, यदि कभी-कहीं-किसीका भी आप तिरस्कार करते हैं तो आप दूसरेका नहीं अपने आपका ही तिरस्कार करते हैं। क्योंकि आपके अतिरिक्त दूसरा तो कोई है नहीं।

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा,
उभय हरहिं भवसंभव खेदा।

उ.का. 115.7

●

प्रवचन : 22

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

अच्छा अब, श्रीगणेशाय नमः करते हैं। विघ्न डालनेका काम इन्द्रिय और मनका है। उनका जो स्वामी है उनको गणेश कहते हैं। असलमें मन ही विघ्न डालता है। विघ्न बाहरसे नहीं आता है, विघ्न तो अपना मन ही डालता है। मनके देवताको, इन्द्रिय गणके स्वामीको आध्यात्मिक दृष्टिसे उसको मन कहते हैं और आधिदैविक दृष्टिसे उसको गणेश कहते हैं। चीज एक ही है। तो, आओ गणेशका स्मरण करके ध्यानकी चर्चा प्रारम्भ करें।

जबतक आपका ध्येय माने जिसका ध्यान आप करते हैं, वह सर्वात्मक नहीं हो जायेगा तबतक विशेष रूपसे आपको ध्यान करना पड़ेगा या जबतक ध्याता सर्वात्मक नहीं हो जायेगा, तबतक भी आपको विशेष रूपसे ध्यान करना पड़ेगा। अब यह ध्यानका विज्ञान है, यह गूढ़ है, यह रहस्य है उसका। इसमें, या तो ध्याता सर्वात्मक हो तो जहाँ आप हो वहीं ध्यान है, या तो ध्येय सर्वात्मक हो, तो जहाँ आप हैं वहीं ध्यान है और या तो ध्याता-ध्येयका भेद मिट गया हो, तो ध्यानकी कोई जरूरत ही नहीं है। लेकिन; ध्याता और ध्येयका तो बाध नहीं हुआ, उनका मिथ्यात्वका निश्चय नहीं हुआ और ध्येय सर्वात्मक नहीं हुआ, सब ईश्वर ही है जन्म, मरण, रोग, शोक, मोह, अच्छा, बुरा, प्रिय, अप्रिय, हित, अहित जो कुछ मालूम पड़ता है वह सब परमेश्वर है, यदि यह बोध हो गया, यह भाव हो गया कि सब जगह परमेश्वर है तो जो देखोगे सो ध्यान!

यह सब ध्याताका ही विलास है, ध्याता ही सर्वरूपमें प्रकट हो रहा है, आत्मविलास है यदि यह अनुभव हो गया तो सब जगह ध्यान है।

तो, तीन परिस्थिति ऐसी हैं, जिसमें ध्यान करना नहीं पड़ता है। सब अपना ध्येय ही है, सब अपना स्वरूप ध्याता ही है और ध्याता-ध्येयका भेद नहीं है सब परमात्मा ही है, अपना आत्मा ही है और यदि इन तीनोंमें-से कोई भी स्थिति आपको प्राप्त नहीं है तो विशेष प्रकारसे ध्यान करना पड़ेगा। क्योंकि इन तीन परिस्थिति प्राप्त किये बगैर हर समय नहीं रहेगा। ध्येय यदि सब नहीं है तो यह स्त्री है उधर मन गया, यह पुरुष है उधर मन गया। यह दुश्मन है उधर मन गया, यह दोस्त है इधर मन गया। दुश्मनमें भी मन जाता ही है, दोस्तमें भी मन जाता ही है। तो, कुछ अच्छा लगेगा, तो कुछ बुरा लगेगा। इसलिए जहाँ मन अटक गया है वहाँसे हटाकर दूसरी जगह उसको लगाना पड़ेगा। अब उस बातको छोड़ देते हैं कि अद्वितीय, प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्मस्वरूपमें दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है। जो कुछ भास रहा है, वह प्रतीति मात्र है, भान मात्र है कुछ ध्यान करनेकी आवश्यकता नहीं है, उस बातको बिलकुल फक्कड़ोंके लिये छोड़ देते हैं।

जिसको सबमें भगवान् दिखता है उसके लिए तो वह जो देख रहा है उसी रूपमें भगवान् है। सब रूप भगवान्‌का है, रूप चाहे कोई भी हो। ओर जो अपने स्वरूपकी पूर्णताको जानता है उसके लिए आत्मविलास है, सब मैं-ही-मैं दिख रहा है। तो, बोले इन तीनोंमें भाई अभी तो हमें कोई स्थिति प्राप्त नहीं है। तो, कोई स्थिति प्राप्त नहीं है, तब मन जहाँ अटका हुआ है वहाँसे उसको हटाओ।

अब एक होता है मंगल और एक होता है कल्याण। मंगल होता है साधनामें और कल्याण होता है फलात्मक। मंगल माने

संस्कृत भाषामें होता है प्रगति। तो, आगे बढ़नेको प्रगति बोलते हैं और ऊपर उठनेको उन्नति बोलते हैं। पहले उन्नति शब्दका उपयोग होता था, कि हम नीचेसे ऊपर उठ रहे हैं और प्रगति शब्दका प्रयोग करते हैं भौतिकवादी लोग कि हम आगे बढ़ रहे हैं। तो, बँटवारा हो गया शब्दोंमें।

पुरानी भाषामें 'उन्नति' किसको कहते थे यह सुनाते हैं। अपनी ओर लौटनेका नाम उन्नति है और दूसरेके काबूमें होनेका नाम अवनति है। जैसे हम फूलमें चले गये तो अवनति हो गयी और फूलसे लौटकर अपनी आँखमें आ गये तो उन्नति हो गयी।

फूलसे आँख ऊपर है, आँखसे मन ऊपर है, मनसे बुद्धि ऊपर है, बुद्धिसे आत्मा ऊपर है। उन्नतिका अर्थ संस्कृत भाषामें अपने घरमें लौट आना होता है। विदेशमें रहना उन्नतिका अर्थ नहीं होता है। विदेशमें जो उन्नति प्राप्त होती है, वह कभी छिन भी जाती है। वहाँकी सरकार कब बदले और कब क्या रूप धारण करे, कब सृष्टि हो, कब प्रलय हो, इसका कोई पता नहीं चलता है। अभी अफ्रीकामें देखा न; कि वहाँसे जिन लोगोंने उन्नति की थी, उनको बोला-निकल जाओ हमारे यहाँसे। तो, जो लोग विषय देशमें जाकरके उन्नति करते हैं उनकी उन्नतिको कब प्रकृति छीन लेगी, कब प्रलय हो जायेगा इसका कुछ ठिकाना नहीं है। इसलिए अपनी उन्नति अपने आपमें रहनी चाहिए। तो, अपने आपमें उन्नति रखनेका यही तरीका है कि ध्यान किया जाय।

अब ध्यान आपको क्या हटानेका करना है यह बताते है। 'आबादो उद्बाद'-कुछ बोना, कुछ उखाड़ना। आबाद माने बोना और उद्बाद माने उखाड़ना। ध्यानमें कुछ बोना, कुछ उखाड़ना है यह ध्यानकी एक पद्धति है। और न बोना, न उखाड़ना अपने स्वरूपमें बैठ जाना यह दूसरी पद्धति है। अपने स्वरूपमें तो हैं ही,

हमको जो भ्रम है कि हम अपने स्वरूपसे च्युत हैं उस भ्रमको कैसे भी दूर कर देना। भ्रम ज्ञानसे ही दूर होता है और आसक्ति भक्तिसे ही दूर होती है। चञ्चलता स्थितिसे ही दूर होती है। चञ्चलता दूर करनेके लिए स्थिति चाहिए, आसक्ति दूर करनेके लिए भक्ति चाहिए, प्रेम चाहिए और, अज्ञान दूर करनेके लिए ज्ञान चाहिए।

अब ईश्वर कृपासे पहले आसक्तिवाली बात करते हैं। तो, आसक्तिवाली बात पहले क्यों करते है ? क्योंकि आजकल ज्यादातर अपनेको साधकोंकी लिस्टमें तो लोग भरती करवाना चाहते हैं। कि साधकोंकी लिस्टमें हमारा नाम लिख जाय। हम अमुक महात्माके हैं, हम वृन्दावनमें रहते हैं, हम अमुक बड़े भारी महात्माके शिष्य हैं। यह अभिमान होता है कि आप क्या समझते हो हमको, हमने हजारों पापड़ बेलकर फेंक दिये। आसक्ति छोड़े बिना चाहे जितने भी पापड़ बेलो, रहोगे जहाँ-के-तहाँ। मैंने एकदिन सुनाया था कि लोग नाव पर बैठे, भाँग-वाँग पी और नाव चलाना शुरू किया। अब सबेरे भी नाव जहाँकी तहाँ! क्यों ? कि लंगर ही नहीं उठाया था और नाव चला रहे थे। तो, संसारमें रोकनेवाला लङ्गर संसारकी आसक्ति है। वहाँ तो पहले हमने हमारी नावको बाँध दिया, और डाँड खेने लगे, कि हम अपने लक्ष्यतक पहुँच जायँ। तो, असलमें पहले यह जो आसक्तिकी गाढ़ता है यह तोड़नेकी आवश्यकता है।

अब हम आपको आसक्ति तोड़नेके लिए पहले मंगलाचरण सुनाते हैं। अगर आप ईश्वरका नाम आप न लेना चाहें तो हमारे हृदयमें आसक्ति प्रकृतिकी देन है। ऐसा कोई दिल नहीं बनता है, ऐसा कोई हृदय नहीं बनता है जिसमें कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसीसे प्रीति न हो। पुत्रसे प्रीति, पत्नीसे प्रीति, पतिसे प्रीति, धनसे प्रीति, मकानसे प्रीति, खुशीसे प्रीति, इज्जतसे प्रीति कहीं-न-कहीं प्रीति लगे बिना मानती नहीं है। अगर आप पूछते हैं

कि हमारी किसीसे प्रीति नहीं है तो मौका आनेपर आप देखेंगे कि ऐसा भंडाफोड़ होगा? कहीं-न-कहीं वह लगी हुई मिलेगी जरूर। अगर कहो कि बिलकुल प्रीति नहीं है तो आपके जीवनमें दुःख कभी नहीं आना चाहिए। दुःख जितने भी होते है वह प्रीतिके कारण ही होते है। ऐसा नहीं होना चाहिए था। ऐसा क्यों नहीं हुआ ? ऐसा क्यों हो गया? तो असलमें आपके मनमें कहीं-न-कहीं प्रीति जुड़ी हुई है तो उस प्रीतिको एक आलम्बन देना पड़ता है, एक सहारा देना पड़ता है। जो लोग हुकुम देते हैं कि ओ रे मेरे मन किसीसे प्रीति मत कर, यह मन ऐसा नहीं है कि आपका हुकुम देनेसे मान जाय। इको सहारा देना पड़ता है।

जैसे एक लड़केसे सगाई कर देनेपर हजार लड़कोंकी खोज मिट जाती है। जैसे एकबार भोजन कर लेने पर दुकान-दुकान भटकना बन्द हो जाता है, ऐसे अपने मनको एक स्थानपर बाँध देने पर वहाँ मनकी आदत डाल देनेपर कि यहाँ वह रोज जायेगा तो दूसरोंकी आसक्ति छूटती है। आसक्तिसे आसक्ति कटती है। हम इसका आध्यात्मिक विज्ञान बताते हैं।

क्योंकि आप आनन्द स्वरूप हैं तो हमको दूसरेसे प्रीति करनेकी क्या जरूरत है ? तो, ठीक है आप ऐसा सोचिये। परन्तु, प्रश्न यह है कि आप अपनेको छोटा आनन्द जानते हैं कि बड़ा आनन्द जानते हैं ? तो, यदि आप अपनेको छोटा आनन्द जानते हैं तो बड़े आनन्दसे आपको अपेक्षा होगी कि हमको बड़ा आनन्द मिले। मैं तो ज्ञान स्वरूप हूँ। तो, प्रश्न यह है कि आप छोटे ज्ञानस्वरूप हैं कि बड़े ज्ञानस्वरूप हैं ? छोटे ज्ञानस्वरूप होंगे तो तो बड़े ज्ञानस्वरूपसे और ज्ञान लेनेकी जरूरत होगी। तो, मैं तो जीवनस्वरूप हूँ। तो बोले कि ठीक है, आप छोटे जीवनस्वरूप हैं कि बड़े जीवनस्वरूप हैं ? छोटे जीवन होंगे तो बड़े जीवनसे आपको अपेक्षा होगी। तो,

देहाभिमान रखकरके देहमें 'मैं' करके कोई चाहे कि हमें धरतीसे मिट्टी न मिले, और आकाशसे पानी न मिले, सूरजसे रोशनी न मिले और साँस लेनेके लिए हवा न मिले तो, जैसे उसकी स्थिति मूर्खतापूर्ण है उसी प्रकार छोटी वस्तुमें अभिमान धारण करके अगर कोई बड़ी वस्तुसे मदद नहीं लेना चाहता है तो वह अनुग्राहकका अनुग्रह नहीं चाहता है। शरीरमें बैठो और अन्न खानेको नहीं चाहिए, पानी पीनेको नहीं चाहिए, रोशनी देखनेके लिए नहीं चाहिए, हवा नहीं चाहिए, साँस लेनेके लिए इसी प्रकार आप अन्तःकरणमें बैठो और अन्तःकरणको किसी महान्‌के संकल्पसे मिलाना नहीं है और ज्ञानको किसी महान् ज्ञानसे एक नहीं करनेका सोचो तो आप अलग सोचते हो।

ऐसी स्थितिमें जैसे आप अन्नके बिना दुःखी होते हो, पानीके बिना जैसे दुःखी रहते हो, रोशनीके बिना जैसे दुःखी रहते हो वैसे अपनेको धारण करनेवाले, अपनेको रसदान करनेवाले, अपनेको रोशनी देनेवाले, अपनेके प्राण देनेवाले, अपनी गोदमें रखनेवाले प्रभुसे अलग रहकर आप कभी सुखी नहीं हो सकते हो।

कबहूँ मन विश्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख,
जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो।

(विनय पत्रिका)

आपके मनको कभी विश्राम नहीं मिलेगा। आपके मनको कभी आराम नहीं मिलेगा आप अपने परिच्छिन्न स्वरूपको अनन्तके साथ सम्बद्ध करके, जोड़करके नहीं रखोगे तो ईश्वरसे सम्बन्ध रखे बिना यह जीव दुःखी होगा। तो, जब हम आसक्तिकी, प्रीतिकी बात करते हैं तो असलमें ईश्वरका चतुर्भुज होना भी एक अवतार है। यह चतुर्भुज जो है वह चारभुजा, चाररूपमें काम कर

रही है। यह अन्तःकरणके जो चार भेद हैं वही चारों भुजा है भगवान्‌की!

अब आओ, आपको जरा मीठी-मीठी जगहमें ले चलें। हमलोग जिस धरतीपर रहते हैं उसी धरतीपर सबसे मीठी जगह वह है जहाँ भगवान् अपना ऐश्वर्य छोड़ करके मधुरूप प्रगट करते हैं। यह मंगलाचरण है।

चलो, उस प्रेमके राज्यमें जहाँ प्रेम-ही-प्रेमकी सृष्टि मिले। चलो, नावको ले चलें खेकर, जहाँकी धूल प्रेम है, जहाँकी घास प्रेम है, जहाँकी लता प्रेम है, जहाँका वृक्ष प्रेम है, जहाँके पशु-पक्षी प्रेम हैं, जहाँके मनुष्य प्रेम हैं, जहाँका पुलीन प्रेम है, जहाँकी यमुना प्रेम है। जरा, भगवान्‌को अपनी प्रेममयी भूमिमें आने दो। अपनी धरतीपर उतरने दो।

योगी अरविन्दका प्रयास है कि हम स्वर्गके राज्यको धरतीपर उतारकर ले आवेंगे। एकदिन हम गये पाण्डीचेरीमें, योगी अरविन्द थे तबकी बात है। उत्सुकता थी कि ये लोग स्वर्गके राज्यको धरतीपर कैसे उतारकर लाते हैं! तो, सायंकाल सब साधक एक कतार बाँधकर बैठ गये और प्रकाश, दीया जलाया गया। श्रीअरविन्द तो कहीं गुप्तरूपसे रहते थे। वहाँकी माँ हैं, वह सुन्दर वस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर मन्द-मन्द प्रकाशमें सामने आकर खड़ी हो गयीं, ऊँचाई पर। और सब साधक ध्यान करने लगे। मैंने कहा-ठीक है! यह जो दिव्यताकी भावना स्वर्गके राज्यको धरतीपर उतारनेकी प्रक्रिया है। आप अपने मनको दिव्य नहीं बनावेंगे तो यह सृष्टि दिव्य नहीं बन सकती। दिव्यताकी भावना करनी पड़ती है।

ईश्वरको बहुत दूर रखकर आप सुखी नहीं हो सकते। हम जिस धरतीपर रहते हैं उसपर ईश्वरको आना चाहिए।

हमारी वृत्तियाँ नाच रही हैं और परमेश्वर वृत्तियोंके कारण

थोड़ा टेढ़ा हो जाता है; क्योंकि वृत्तियाँ शक्तिरूप हैं न तो शक्ति कभी सीधी नहीं चलती है।

श्रावणमासमें आप कभी वृन्दावन जायँ तो प्रत्यक्ष एक लीला देखकर आवें। आप बिहारीजीका दर्शन करने जायँ। साँवरे सलोने बिहारीजी खड़े हैं और मालूम पड़ता है कि बिहारीजी झूलेमें बैठकर झूल रहे हैं। कभी आगे जाते हैं, कभी पीछे जाते हैं। झूल रहे हैं बिहारीजी। और आप जब जानेंगे तो मालूम पड़ेगा कि बिहारीजीकी मूर्ति बिलकुल एक जगह रहती है। वह झूला जब आगे आता है तब मालूम पड़ता है कि बिहारीजी पीछे जा रहे हैं और जब झूला बिहारीजीकी ओर जाता है तब मालूम पड़ता है कि बिहारीजी आगे आ रहे हैं। यह झाँकी-दृश्य आपको अपनी आँखोंसे देखनेको मिलेगा।

वृन्दावनमें गोपियाँ नाचती हैं और वे श्रीकृष्णके सामने-पीछे, दाहिने-बाँये-होकर बड़ी तेजीसे चलती हैं। बीच-बीचमें श्रीकृष्णका दर्शन होता है। नाचती हैं हजारों गोपियाँ, श्रीकृष्ण रहते हैं एक, लेकिन मालूम पड़ते हैं हजार। अब आप इस दृश्यको देखो कि यमुनाजी अलग बह रही, पुलिन अलग फैल रहा, शीतल-मन्द-सुगन्ध-वायु अलग चल रही, चन्द्रमाकी चाँदनी अलग छिटक रही, लताएँ मुस्कुरा रहीं, वृक्ष अलग झुक रहे, हरिन अलग फलांग भर रहे और उस शीतल चाँदनीमें श्रीकृष्ण बीचमें खड़े हैं, मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए, पीताम्बर फहराते हुए, बाँसुरी बजाते हुए और गोपियाँ उनके चारों ओर नृत्यकी गतिसे, तालसे उनके चारों ओर नाच रही हैं, स्वरसे गान कर रही हैं। श्यामसुन्दर बाँसुरी बजा रहे हैं। यह हमारा मंगलाचारण है।

मंगलाचरणमें अब आप थोड़ा ध्यान दीजिये हम आपको एक बात सुनानेवाले हैं।

गोपियोंका ध्यान कृष्ण परसे हटा अपनी ओर आया कि हम इतनी सुन्दर हैं, इतनी मधुर हैं, इतनी प्रेमवती हैं। हम भी कुछ हैं। हमारे ऊपर लट्टू होकर, मोहित होकर श्रीकृष्ण हमारे बीचमें प्रकट हुए हैं। श्रीकृष्णने कहा–भाई हम प्रकट तो हुए तुम्हारे बीचमें कि तुम हमको देखो–इसके लिए प्रकट हुए। तुम अपनेको देखो इसके लिए प्रकट नहीं हुए हैं। तुम हजारों जब अपने–अपने मैंको ही देखनेमें मगन हो गयीं, अब 'मैं' जो निर्गुणसे सगुण हुआ, निराकारसे साकार हुआ, गोलोकसे धरती पर आया और बड़ेसे नन्हा–सा बना और सम्बन्धरहित होनेपर भी सम्बन्धी बना तो इसकी तो अब कोई जरूरत ही नहीं रही। तुम लोग अपना होंठ अपने आप चाट लो, अपनी जीभ पर पानी अपने आप पी लो, अपनी सुन्दरता निहार लो, अपनी मिठासका अनुभव कर लो, और फिर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये।

जब जीव अपने मैं–को देखने लगता है और अपना 'मैं' जब देखा जाता है तब वह छोटा हो जाता है–यही उसका स्वभाव है। जो चीज देखी जाती है वह छोटी हो जाती है। इसमें द्रष्टा बड़ा हो जाता है और दृश्य छोटा हो जाता है। दृश्यसे हमेशा द्रष्टा बड़ा होता है। तो, जब कोई अपने 'मैं'को देखने लगता है तब उसकी नजर छोटे 'मैं'को देखते ही बड़ा 'मैं तो देखा ही नहीं जाता है। वह तो अदृश्य द्रष्टा है। उसके लिए श्रुति बोलती है–

अदृष्टं द्रष्टृ अश्रुतं श्रोतृ अमतं मन्तृ अविज्ञातं विज्ञातृ।

वह अदृष्ट द्रष्टा है, वह अश्रुत श्रोता है, वह अमत मन्ता है, वह अविज्ञात विज्ञाता है। 'विज्ञातारम् अरे केन विजानीयात्'–उसको देखनेके लिए कोई साधन नहीं है।

गोपियाँ देख तो रही थीं कृष्णको; परन्तु उधरसे उनकी नजर हटकर अपने आपको देखने लगीं।

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः

जब नजर ही नहीं रही परमात्मा पर, तब परमात्मा भी क्यों अनुग्रह करके तुम्हारे बीचमें प्रकट हो ? श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये। अन्तर्हित हो गये। पहले बाहर प्रकट होकर हित कर रहे थे, अब भीतर गुप्त होकर हित करने लगे, अन्तर्हित हो गये।

अब हम आगे जो कहना चाहते थे वह बात आपको सुनाते हैं। गोपियोंने कहा आखिर छिपेगा कहाँ ? यमुना हमारी, पुलिन हमारा, वृन्दावन हमारा, गोष्ठ हमारा, कुञ्ज हमारा, निकुञ्ज हमारा, आखिर वह छिपेगा कहाँ ? हम ढूँढ़ निकालेंगी। गोपियाँ हजारों थीं, बल्कि ईश्वर कृपासे ध्यानके जो ग्रन्थ हैं उसमें सोलह हजार नहीं मानते हैं। सोलह हजार संख्या बहुत छोटी है। ध्यानके ग्रन्थोंमें कहते हैं–'वनिता- शतकोटिभिराकुलितः' सौ–सौ करोड़ गोपियाँ भगवान्‌को घेरे हुई हैं, अनगिनत हैं।

उन्होंने घेरा बनाया कि आओ, वृन्दावनको घेर लें। जैसे मोरचाबन्दी होती है वैसे वृन्दावनकी मोरचेबन्दी कर लें। गोपी–पर–गोपी, गोपी–पर–गोपी, गोपी–पर–गोपी चारों ओर। और अपना घेरा छोटा करती गयीं कि कहाँ छिपेंगे ?

वृन्दावनके भी चार रूप हैं। चौरासी कोसका वृन्दावन, पच्चीस कोसका वृन्दावन, पाँच कोसका वृन्दावन और विश्व वृन्दावन, तैजस् वृन्दावन, प्राज्ञ वृन्दावन ये तीनों बाहरी रूप हैं। नित्य–निकुञ्ज तुरीय वृन्दावन है। चतुर्थ वृन्दावन बोलते हैं। आप वृन्दावनके स्वरूपको समझें। वेदान्तका माण्डूक्य उपनिषद्‌का जो ब्रह्मविज्ञान है वह वृन्दावनकी संरचनासे मिला हुआ है। माने महात्माओंने इस ढंगसे वृन्दावनकी संरचना की है कि उसमें ब्रह्मज्ञान, छिपा हुआ है। चौरासी कोशका व्रज और पाँच योजनका

वृन्दावन और फिर उसमें और छोटा वृन्दावन। पच्चीस कोसका वृन्दावन, पाँच कोसका वृन्दावन और वृन्दावनमें नित्य निकुञ्ज।

गोपियाँ अपना घेरा छोटा करती गयीं। करते-करते केवल एक निकुञ्ज बाकी रह गया जो ढूँढ़नेसे बच गया था। गोपियाँ नित्य-निकुञ्जमें ढूँढ़ने लगीं, कि भैया होगा तो इसीमें होगा, और कहाँ छिपेगा ? कोई उड़कर आसमानमें थोड़ा जायेगा। होगा तो इसीमें होगा! अब वे हृदय निकुञ्जमें जो प्रविष्ट हुईं तो, श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा-अब तो गोपियोंने हमको पकड़ा, पकड़े गये तो चतुर्भुज होकर बैठ गये।

अन्तःकरणके निकुञ्जमें भगवान् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन चारोंकी उपाधियाँ धारण करके चतुर्भुज हो जाते हैं। शंख, चक्र, गदा, पद्म चतुर्भुज होकर भगवान् बैठ गये। अब गोपियोंका घेरा छोटा होता गया। कुछ थोड़ी-सी गोपियाँ गयीं नित्य-निकुञ्जके भीतर कि क्या हो रहा है? वहाँ देखा कि एक चतुर्भुज देवता बैठा है। अब, वह तो बिचारी आश्चर्यचकित हो गयी चतुर्भुजको देखकर! ऐश्वर्य जो है वह किसीके काबूमें नहीं आता, वह तो काबूमें करता है। एकको करेगा, दूसरेको करेगा, फिर तीसरेको करेगा। ऐश्वर्य किसीके काबूमें नहीं आता है। यह उसकी स्थिति है? वह दूसरेको काबूमें कर लेगा, लेकिन वह स्वयं काबूमें नहीं आवेगा। तो, गोपी तो डरी कि हमको तो ऐश्वर्य नहीं चाहिए। यह कौन ? जाकर राधारानीसे बोली कि स्वामीनीजी! किशोरीजी!! प्रियाजी!!! इस कुञ्जमें एक चार भुजाका देवता बैठा है, हमने तो व्रजमें उसको कभी देखा नहीं तो यह कौन है ? वर्णन करते हैं कि प्रियाजीने जब इस कुञ्जमें प्रवेश किया, तो प्रियाजीको देखते ही श्यामसुन्दर जो अपना ध्यान करके बैठे थे न कि मैं चतुर्भुज हूँ। वह चतुर्भुजता ध्यानीक थी, वास्तविक नहीं थी। आप वास्तविक और ध्यानीकके चक्करमें न पड़ें! जबतक यह

दुनिया वास्तविक रहेगी आपके लिये तबतक यह मूर्ति भी वास्तविक रहेगी। परन्तु यह ध्यानीक है। स्वयं ईश्वर संकल्प करके बैठा है कि मैं चतुर्भुज हूँ। जो राधारानी सौन्दर्य, माधुर्य और मृदिमाकी अधिष्ठात्री देवी राधारानी मूर्तिमती आराधना, ब्रह्मविद्याका रसमयरूप जब श्रीकृष्णके सन्मुख जाकर उपस्थित हुआ तो श्रीकृष्ण अपना ध्यान भूल गये। और, अपना ध्यान भूल गये राधारानीको देखकर तो चतुर्भुजता जो थी, संकल्पजनित जो चतुर्बाहुता थी वह छूट गयी। और, दो हाथकी जैसी राधा वैसे कृष्ण और जैसे कृष्ण वैसी राधा। वहाँ भौतिक व्यवधान नहीं है इन दोनोंमें, इसलिए दोनों एक हो गये।

अब इसके द्वारा जो सूचित ध्यानके तत्त्व हैं, उनकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करता हूँ। यह बहुत सुन्दर-बहुत मधुर बात है। आप ध्यानकी दैहिक स्थिति अपनाइये। देहमें तो आप बैठे हैं, इससे इन्कार मत कीजिये। जो सचसे इन्कार करता है, वह या तो ढोंगी हो जाता है या तो अपनी कल्पनासे हिप्नोटाईज हो जाता है, सम्मोहित हो जाता है। सत्यको कभी अस्वीकार नहीं करना चाहिए। आप यह शरीर जो देख रहे हैं और यह जड़ सृष्टि जो देख रहे हैं इसमें कोई-न-कोई क्रिया हो रही है। द्रव्यके पीछे क्रिया होती है। क्रिया माने कुछ-न-कुछ काम हो रहा है। सब चीजें बदल रही हैं, एक क्रिया शक्ति है, एक क्रिया है वह सबमें परिवर्तन कर रही है। जो, फल पहले सरसोंके दानेके बराबर दिखता है। वह दो-चार दिनके बाद देखो, तो मटरके दानेके बराबर दिखेगा। और, उसके बाद देखो-तो आँवलेके बराबर दिखेगा। वह कब बढ़ता है ? यह मालूम नहीं होता। परन्तु उसके अन्दर क्रिया हो रही है तभी तो वह बढ़ रहा है न! फिर आमके बराबर दिखेगा, फिर वह काशीफल हो जायेगा। तो, यह सरसोंके दानेके बराबर जो चीज है वह बदलकर

काशीफल हो रही है। और काशीफल सड़कर फिर कण-कणके रूपमें हो रहा है।

तो, ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसमें क्रिया हो न रही हो। आपका बच्चा कुमार होता है, किशोर होता है, युवा होता है, अधेड़ होता है। आपके शरीरकी भी यही दशा है। तो, दुनियामें जो परिवर्तन देखनेमें आ रहा है वह बिना क्रिया-प्रतिक्रियाके होना सम्भव नहीं है। और, क्रिया-प्रतिक्रिया बिना शक्तिके होना सम्भव नहीं है। शक्ति ही क्रिया-प्रतिक्रिया करके वस्तुको उलटती है। और, शक्तिके मूलमें इच्छा है। आपका हाथ क्यों उठता है ? आपका हाथ क्यों नीचे जाता है ? आपका हाथ क्यों सिमटता है और क्यों फैलता है? इसमें आपकी इच्छा काम करती है।

द्रव्यमें होती है क्रिया, क्रियाका सञ्चालन करती है शक्ति और शक्तिका सञ्चालन करती है इच्छा। और इच्छा जो होती है वह विमर्शपूर्वक होती है। विमर्शपूर्वक माने विचारपूर्वक, स्वाद ले-लेकर। और इस विमर्शके पीछे ज्ञान-स्वरूप आत्मा बैठा हुआ है, आपका स्वरूप। ससारमें संहार हो रहा है, स्थिति हो रही है, सृष्टि हो रही है।

आइंस्टिन इस युगके सबसे बड़े वैज्ञानिक, जिन्होंने अणु शक्यिोंका आविष्कार किया। उनसे किसीने पूछा कि आप ईश्वर मानते हैं कि नहीं मानते हैं ? उन्होंने कहा-हम जितना वैज्ञानिक तत्त्व जानते हैं, जितना विज्ञानका अनुसन्धान किया है हमको ऐसा मालूम पड़ता है कि इसके परे इसका कोई सञ्चालक है। वह अभी हमारी मशीनकी पकड़में नहीं आता है और हमारी बुद्धिकी पकड़में भी नहीं आता है, हमारे गणितके पकड़ेमें भी नहीं आता है। इस समग्र विश्वसृष्टिका सञ्चालक कोई-न-कोई इससे परे छिपा हुआ है।

श्रीमन्नारायण, जमनालाल बजाजके जमाई और गुजरातमें

राज्यपाल रहे थोड़े दिन, बड़े अच्छे, सज्जन पुरुष थे। गाँधीजीके सहयोगी तो वह बोले–कि मैं गया साइंटिस्टसे मिलने तो, मैंने उनसे पूछा कि विज्ञानका इतना उच्चकोटिका जो आपका अनुभव है, तो इसमें किससे प्रेरणा मिलती है ? बोले, अच्छा ले चलते हैं, बैठो। देखो, कहाँ सबसे परे रहनेवाला परमेश्वर उसके सामने सिर झुकाते हैं वह विज्ञानके यन्त्रोंके भीतर नहीं आता है। छोटे–छोटे डॉक्टर और वैज्ञानिक प्रायः नास्तिक हो जाते हैं। अब वह आइन्सटीन श्रीमन्नारायणको लेकर एक कमरेमें गये। वहाँ उस करमेमें दूसरी कोई चीज नहीं थी। केवल मरियमकी गोदमें ईसाका चित्र लगा हुआ था। अपनी माँकी गोदमें ईसा नन्हेंसे, मुन्नेसे, बच्चेसे उन्होंने सिर झुकाया और बोले कि सारी प्रेरणा हमको इसके मिलती है।

यह देखो, यह सामने जो है वह ध्यान है और जो पीछे छिपा हुआ है वह विश्वास है। द्रव्यके पीछे क्रिया, क्रियाके पीछे शक्ति, शक्तिके पीछे इच्छा और इच्छाके पीछे ज्ञान। और वह ज्ञानस्वरूप आत्मा है यह आप अनुभव करेंगे तो आप ही विमर्शके रूपमें, स्वादके रूपमें और आप ही इच्छाके रूपमें और आप ही शक्तिके रूपमें, आप ही क्रियाके रूपमें और आप ही द्रव्यके रूपमें प्रकट हो रहे हैं। यह आत्मविलास है यह सब बात आपको साक्षात् अपरोक्ष अनुभव हो जायेगी।

और, यदि आप अपनेको पहले ज्ञानस्वरूप अनुभव करें, फिर अपने विमर्शको देखें और उस विमर्शसे जनित इच्छाको देखे। और इच्छासे जनित शक्तिको देखें। और आपकी इच्छामें बड़ी भारी शक्ति है। जैसे यह पाँवको उठाकर चलाती है न! आपकी इच्छा ही पाँवमें चलनेकी शक्तिको सञ्चालित करती है। पाँव चलता है शक्तिसे, लकवा लग जाय तो शक्ति नहीं रहती न! इच्छा रहती है कि चलें और पाँव भी रहता है लेकिन शक्ति नहीं

रहती। और, जब आप समाधिस्थ हो जाते हैं या सो जाते हैं, तब पाँव भी रहता है, शक्ति भी रहती है लेकिन इच्छा ही नहीं रहती है। और, इच्छा कहाँ चलना चाहिए, कहाँसे लौटना चाहिए इसके लिए विमर्शपूर्वक ही इच्छा होती है। इसके लिये सोच-विचार कर लेते हैं। और, सोचना-विचारना कब होता है ? जब ज्ञान रहता है।

आप, देखो द्रव्यरूप शरीर, इसमें क्रिया, क्रियामें शक्ति, शक्तिमें इच्छा, और इच्छामें विमर्श। विमर्श तक परिच्छिन्न है, परन्तु विमर्शके पीछे जो ज्ञान है, वह अपरिच्छिन्न है। यह आत्मदेवका ही सारा-का-सारा विलास शरीर है। इसी प्रकार सृष्टि, स्थिति, संहार यह समग्र विश्वमें देखनेमें आते हैं। और, इनके पीछे क्रिया है, क्रियाके पीछे शक्ति है, शक्तिके पीछे इच्छा है, इच्छाके पीछे विमर्श है। विमर्शके पीछे ज्ञानस्वरूप भगवान् छिपे हुए हैं। वह कबतक छिपे रहेंगे ? वे तबतक छिपे रहेंगे जबतक तुम्हारा ज्ञान और उनका ज्ञान एक नहीं हो जायेगा। आत्मा नित्य ज्ञानस्वरूप है पर परिपूर्ण ज्ञानस्वरूपताका अनुभव नहीं होता है। और, परमात्मा परिपूर्ण ज्ञानस्वरूप है; परन्तु इसका नित्य अनुभव नहीं होता है। तो, जब ज्ञान (आत्मा) और ज्ञान (परमात्मा) दोनों दो नहीं रहेंगे इनकी एकताका अनुभव होगा तब यह देह (व्यष्टि) और यह सृष्टि (समष्टि) सब ज्ञानसे अभिन्न हो जायेगी। इस बातको प्रकट करनेके लिए, ज्ञानको प्रकट करनेके लिए ध्यानकी आवश्यकता होती है। एक ध्यान होता है मनको पकड़कर अपने साथ रखना और एक ध्यान होता है मनको छोड़कर अकेले हो जाना। भागवतमें दोनों ध्यानकी पद्धति है।

●



ध्यान-विज्ञान

सनातन सिद्धान्तमें ध्यानका अत्यथिक महत्व है। कोई भी कार्य ध्यानपूर्बक न किया जाय तो उसका परिणाम अपेक्षित नहीं आता। प्रमाद (असावधानी) से किये गये कार्यकि सामने सामान्यत: सुना ही जाता है-‘तुम्हारा ध्यान किधर है? भूमिका तो ध्यानपूर्वक पढ़ों!

ध्यान शब्दका अर्थ है-चिन्तनकी धारा। चिन्तन किसका? क्यों? कैसे? किसके ध्यान-चिन्तनसें हमको सुख मिलता है और किससे दू:ख? क्या कोई ऐसी भी ध्यान-विधि है जिससे हमें अमुतत्व प्रात तो?

परमपूज्य महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी द्वारा मुम्बईके तेजपाल हॉलमें ‘ध्यान का विज्ञान’ विषय पर प्रवचन हुए। परमपूज्य महाराजश्रीने वेद-उपनिषदों, पुराण-इतिहासों, सूत्र-दशनों-सहिताओं तथा विभिन्न सम्प्रदायोंमें वर्णित-प्रचलित ध्यान-विधियोंका सारगर्भित व रोचक दिग्दर्शन कराया।

आप देखेंगे कि योगमें, कर्मकाण्डमें और ज्ञानमें मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र, सोपाधिक-निरुपाधिकादि ध्यानके अनेक रूप हैं-सभी पर महाराजश्रीने इस ग्रम्थमे दृष्टिपात किया है।

शोधार्थियों-साधकों के लिए यह संकलन संग्रहणीय बन पढ़ा है, आप अवश्य लाभ लें।

आनन्द थामम येस